खंड 11, अंक 2, मई–अगस्त, 2025
ISSN: 0974-7702
(समकक्ष व्यक्ति समीक्षित शोध पत्रिका)

गुरुर्गुरुतमो धाम
NCTE

अन्वेषिका

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्

नई दिल्ली

अन्वेषिका

(अध्यापक शिक्षा की समकक्ष व्यक्ति समीक्षित शोध पत्रिका)

खंड 11, अंक 1, जनवरी-अप्रैल, 2025, ISSN: 0974-7702

परिचय एवं उद्देश्य

अन्वेषिका, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एनसीटीई-भारत सरकार का सांविधिक निकाय), नई दिल्ली द्वारा वर्ष में तीन बार, अर्थात अप्रैल, अगस्त तथा दिसंबर में प्रकाशित होने वाली हिंदी भाषा की एक समकक्ष व्यक्ति-समीक्षित राष्ट्रीय पत्रिका है। इस पत्रिका का उद्देश्य अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में हितधारकों के मध्य वैचारिकी, शैक्षिक नीतियों व नवाचारों के संबंध में विचार-विनिमय व विमर्श हेतु एक मंच प्रदान करता है। यह क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा के बहु-विषयक, तुलनात्मक और व्यावहारिक विश्लेषण को प्रोत्साहित करती है। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु, यह पत्रिका शिक्षकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों के व्यावसायिक विकास, शिक्षा-कर्मियों के अनुभवजन्य लेखों तथा अध्यापक शिक्षा में नैतिक और गुणवत्तापूर्ण सरोकारों से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक और समकालीन विषयों और चिन्ताओं पर चिंतनशील लेख, शोधपत्र, आलोचनात्मक समीक्षाएं, शिक्षा की अवधाराणाओं और सिद्धांतों का दार्शनिक विश्लेषण, पुस्तक समीक्षाएं और टिप्पणियाँ आमंत्रित करती है। मौलिक, अप्रकाशित, अकादमिक सत्यनिष्ठायुक्त तथा प्रस्तुतीकरण व नैतिक मानकों के अनुरूप लेखों की निष्पक्ष समीक्षा हेतु एक कठोर प्रक्रिया का पालन किया जाता है।

संपादकीय सलाहकार मंडल

प्रोफेसर उमा कांजीलाल, कुलपति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रोफेसर वाई. एस. रमेश, निदेशक, जयपुर परिसर, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर
प्रोफेसर सुनील कुमार सिंह, वरिष्ठ प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रोफेसर प्रेम नारायण सिंह, निदेशक, अंतर-विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र, वाराणसी
प्रोफेसर सुनील बाबू राव, निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
प्रोफेसर उषा शर्मा, वरिष्ठ प्रोफेसर, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली
प्रोफेसर रमेश सी. पटेल, कुलपति, भारतीय अध्यापक शिक्षा संस्थान, गांधीनगर, गुजरात

प्रकाशन समिति

मुख्य संरक्षक:
प्रोफेसर पंकज अरोड़ा, अध्यक्ष, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली
संरक्षक:
प्रोफेसर चान्द किरण सलूजा, निदेशक, संस्कृत संवर्धन प्रतिष्ठान, दिल्ली
अध्यक्ष: प्रोफेसर प्रवीण कुमार तिवारी, आचार्य, शिक्षा विभाग (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
सचिव: प्रोफेसर अमित कौत्स, अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, पंजाब
संयोजक: श्री पवन कुमार बैरागी, अनुभाग अधिकारी, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

संपादक

प्रोफेसर प्रवीण कुमार तिवारी, आचार्य, शिक्षा विभाग (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक मंडल

प्रोफेसर मधुसूदन जे. वी., अध्यक्ष, शिक्षा एवं शिक्षा प्रौद्योगिकी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना
प्रोफेसर जिग्नेश बी. पटेल, आचार्य, शिक्षा विभाग एवं कुलसचिव, बाल अनुसंधान विश्वविद्यालय, गाँधीनगर, गुजरात
प्रोफेसर भरत कुमार पांडा, अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, ओडिशा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट, ओडिशा
प्रोफेसर सुनीता मागरे, आचार्य, शिक्षा विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई, महाराष्ट्र
प्रोफेसर जे एन बालिया, आचार्य, शैक्षिक अध्ययन विभाग, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू
डॉ. अखिलेश कुमार, निदेशक, दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम

प्रकाशन संयोजन

श्री पवन कुमार बैरागी, अनुभाग अधिकारी, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

श्रीमती सुखगीत कौर, आईओएफएस, सदस्य सचिव, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित तथा दया प्रिंटर्स, कोटला मुबारकपुर द्वारा मुद्रित

अन्वेषिका में प्रकाशित विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति है। लेखों के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी हैं। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

खंड 11, अंक 2, मई–अगस्त, 2025 ISSN: 0974-7702
(समकक्ष व्यक्ति समीक्षित शोध पत्रिका)

अन्वेषिका

गुरुर्गुरुतमो धाम
NCTE

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्
नई दिल्ली

अध्यक्ष, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की कलम से ...

विशेष चिंतन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के आलोक में विकसित भारत @ 2047 के लक्ष्य को लेकर भारत में अध्यापक शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी)-2020, 21वीं सदी में भारत की शिक्षा प्रणाली में एक ऐतिहासिक बदलाव को चिह्नित करती है। यह नीति 2047 तक 'विकसित भारत' की दिशा में राष्ट्र की यात्रा को ले जाने के लक्ष्य के साथ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक सुधारों में से एक है। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के विज़न के अंतर्गत शिक्षक-शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है, जो 'राष्ट्र को विकसित भारत बनाने' के लिए शिक्षा प्रणाली में 'छोटे-छोटे परिवर्तनों' से 'समग्र परिवर्तन' की ओर बदलाव का प्रतीक है। चूंकि, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 अपने लागू होने के छठे वर्ष में है, इसलिए यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि किस प्रकार तात्त्विक सुदृढ़ता, अभिशासन में परिवर्तन और प्रौद्योगिकी में बदलाव, शिक्षक शिक्षा को प्रभावित कर रहे हैं और कैसे यह 'भारत' के लिए भविष्य में विकास की रूपरेखा को आकार दे रहे हैं। इस चिंतन पत्र में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, शिक्षक-शिक्षा, भारतीय सभ्यता के मूल्यों, अभिशासन संरचनाओं में आधुनिक परिवर्तनों, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास तथा शिक्षा पर इसके प्रभाव और विकसित भारत @ 2047 की दिशा में सामंजस्य बैठाते हुए इसके अनुवर्ती सामाजिक-आर्थिक परिणामों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का तात्त्विक आधार भारत के सांस्कृतिक दर्शन में निहित है, जो शिक्षा को बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक चरित्र के विकास की एक समग्र, बहु-विषयक तथा संपूर्ण प्रक्रिया मानता है। यह नीति इस दर्शन पर बल देती है कि शिक्षा का लक्ष्य, ज्ञान और तकनीकी कौशल के साथ-साथ गुणों, नैतिकता, सामाजिक प्रतिबद्धताओं और राष्ट्रीय जागरूकता का विकास करना है। इसका दार्शनिक आधार पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानवदर्शन के विचारों के अनुरूप है, जो सर्वांगीण विकास तथा उन्नति पर बल देता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 अटल बिहारी वाजपेयी, जैसे दूरदर्शी व्यक्तियों द्वारा व्यक्त शैक्षिक दृष्टिकोण को अपनाती है, जिन्होंने शिक्षा को एक आत्मनिर्भर, सुदृढ़ तथा गौरवशाली भारतीय राष्ट्र की नींव के रूप में परिकल्पित किया था। इस मानदंड के अंतर्गत, शिक्षक केवल शिक्षा प्रदान करने वाले नहीं हैं; बल्कि वे मार्गदर्शक, राष्ट्र-निर्माता हैं और उन्हें प्रबुद्ध तथा जिम्मेदार भारतीय नागरिकों को तैयार करने का कार्य सौंपा गया है।

इसके अतिरिक्त, यह नीति रचनात्मक अध्ययन पद्धति (कंस्ट्रक्टिविस्ट लर्निंग अप्रोच) पर निर्भर करती है, जो आलोचनात्मक चिंतन तथा प्रश्न पूछने, अभ्यास-आधारित अध्ययन आदि पर बल देती है। यह नीति प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के विज़न पर भी बल देती है कि भारत को एक सीखने वाला समाज बनना चाहिए, जहां शिक्षक भी मार्गदर्शन प्राप्त करके तथा ऑनलाइन मंचों के माध्यम से सीखकर स्वयं का विकास करें।

विकसित भारत @ 2047 तथा शिक्षक-शिक्षा की केंद्रीय भूमिका

स्वतंत्रता के सौ वर्षों के लक्ष्य के रूप में 'विकसित भारत @ 2047' के दृष्टिकोण ने समृद्धि तथा समानता, प्रौद्योगिकीगत नेतृत्व एवं अभिशासन के मूल्यों की रूपरेखा तैयार की है। शिक्षा को प्रस्तावित परिवर्तन के केंद्र में

रखा गया है और शिक्षक-शिक्षा को इसके सर्वाधिक आवश्यक स्तंभ के रूप में देखा जा रहा है। ध्यानपूर्वक विचार करें तो, यह देखा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 इस विषय के प्रति जागरूक है कि मात्र नीतिगत रूपरेखा और अवसंरचना के माध्यम से किसी राष्ट्र में परिवर्तन लाना संभव नहीं है। ऐसा परिवर्तन केवल कक्षा में ही होता है और यहीं पर शिक्षक, शिक्षार्थियों के मूल्यों, कौशल तथा आकांक्षाओं को प्रभावित कर सकते हैं। शिक्षक-शिक्षा सुधारों पर बल देकर, इस नीति ने शिक्षकों को मानव पूंजी के रूप में मानते हुए विकसित भारत के लिए इन्हें एक अभिनव तथा जिम्मेदार सामाजिक समूह के रूप में तैयार करने पर बल दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने एक बहु-विषयक तथा शोध-केंद्रित उच्च शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना की है, शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में भी इस दिशा में आवश्यक परिवर्धन की प्रक्रिया प्रस्तावित की गई है। शिक्षा नीति में 4-वर्षीय एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम (आईटीईपी) की शुरुआत करके इसे स्पष्ट किया गया है, जहाँ शिक्षक शिक्षा, किसी बहु-विषयक उच्च शिक्षा संस्थान का एक अभिन्न अंग बन जाएगी। इस बात पर विचार किया गया है कि किस प्रकार यह एकीकरण, शिक्षक-शिक्षा की शैक्षणिक साख और स्थिति को बेहतर बनाएगा। शिक्षक-शिक्षा का नवीन परिवेश उन शिक्षकों को प्रशिक्षित करने में सहायता करेगा, जो समस्या-आधारित शिक्षण, शोध तथा नवाचार में योगदान दे सकते हैं। इन घटकों के एक साथ आने से स्कूल और उच्च शिक्षा, दोनों में सुधार होगा तथा शिक्षक-शिक्षा, भारतीय ज्ञान प्रणाली के मुख्य घटकों में से एक बन जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अंतर्गत प्रस्तावित मुख्य अवसंरचना सुधारों में से एक, विकसित भारत शिक्षा अधिष्ठान बिल (वीबीएसए बिल), 2025 स्थापित करना है, ताकि विनियमन, मान्यता प्रदान करने, वित्त-पोषण करने तथा मानक निर्धारित करने के कार्यों को अलग-अलग करके एक तर्कसंगत अभिशासन अवसंरचना सुनिश्चित की जा सके। यह, वर्तमान सरकार के समग्र अभिशासन के दृष्टिकोण को दर्शाती है, जो 'न्यूनतम शासन, अधिकतम अभिशासन' की विचारधारा पर आधारित है।

जहाँ तक शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र का संबंध है, तो यह असंबद्ध और अनुपालन-आधारित नियामक आदर्शों से मानक-संबंधित तथा परिणाम-उन्मुखी नियामक आदर्शों की दिशा में शिक्षाविदों के लिए एक आमूल-चूल परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। एक नियामक निकाय के रूप में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, शनैः-शनैः नियंत्रक आदर्शों से ऐसे आदर्शों की ओर राह बना रही है, जिससे गुणवत्ता आश्वासन व शैक्षणिक मानकों व मानदंडों को स्थापित करने पर ध्यान केंद्रित किया जा सके। इस संबंध में गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए तो, यद्यपि अभिशासन में सुधार अनिवार्य एवं अपेक्षित है, परंतु यह राज्यों और स्वायत्त संस्थाओं के बीच संस्थात्मक क्षमता एवं सहयोगात्मक संघीय शासन व्यवस्था पर निर्भर करता है।

शिक्षक-शिक्षा में सुधार: प्रौद्योगिकीय, सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव

प्रौद्योगिकीय प्रगति के कारण तीव्रता से हो रहे शैक्षिक परिवर्तनों के फलस्वरूप, शिक्षक-शिक्षा में निरंतर बदलाव की आवश्यकता है। डिजिटल प्रौद्योगिकी के दौर में शिक्षार्थी की विविध आवश्यकताओं और शिक्षकों से बढ़ती अपेक्षाओं के क्रम में समसामयिक कक्षाएँ उन कक्षाओं से बहुत भिन्न दिखती हैं, जो अधिकांश शिक्षक अपने सेवाकालीन प्रशिक्षण से पूर्व एवं उसके दौरान अनुभव करते थे। शिक्षक-शिक्षा का पारंपरिक मॉडल आज भी अधिकांशतः सैद्धांतिक और परीक्षा-केंद्रित है; यह आज भी इन जटिल वास्तविकताओं के लिए पर्याप्त तैयारी नहीं कराता है।

अध्यापन सिद्धांतों तथा कक्षा पद्धति के बीच स्थायी अंतराल, चिंता का एक प्रमुख विषय है। नव-प्रशिक्षित अध्यापक अक्सर समावेशी शिक्षा एवं कक्षाओं और शिक्षार्थी की विविधता तथा संदर्भगत बाध्यताओं, व वास्तविक जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए संघर्षरत रहते हैं। अतः शिक्षक-शिक्षा अधिकाधिक अभ्यास-आधारित, विचारशील और स्कूल की वास्तविकताओं के प्रति संवेदनशील होनी चाहिए। इसके अलावा, इस आज के युग में डिजिटलाइज़ेशन के साथ, डेटा विश्लेषण तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में यह अपेक्षित है कि शिक्षक स्वयं को डिजिटल और नीतिपरक दक्षताओं से बेहतर रूप से लैस करें। अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रमों को वैकल्पिक कौशल के रूप में प्रस्तुत करने के स्थान पर शिक्षा-शास्त्र में ही प्रौद्योगिकी के साथ सम्मिलित करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही, मार्गदर्शक, प्रशिक्षक एवं जीवनपर्यंत शिक्षार्थी के रूप में शिक्षकों की निरंतर बदलती सामाजिक भूमिका भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। आजकल, शिक्षकों को छात्रों में आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, समानुभूति तथा सामाजिक-भावनात्मक कौशल विकसित करने की संस्तुति की जाती है। इसी कारण से, न केवल कक्षा में सुधार के लिए, अपितु शिक्षकों की व्यावसायिक पहचान बनाने और एक ऐसी शिक्षा प्रणाली, जो समावेशी और भविष्योन्मुखी, दोनों हो, को बढ़ावा देने के लिए भी शिक्षक-शिक्षा को सशक्त करना आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के माध्यम से शिक्षकों को राष्ट्रीय विकास की समावेशी मिसाल के रूप में सबसे आगे रखने के कारण होने वाले शिक्षक-शिक्षा की पुनर्संरचना के व्यापक सामाजिक-आर्थिक प्रभाव होंगे। उन्नत शिक्षक शिक्षा, समावेशी-शिक्षा दृष्टिकोण के क्रियान्वयन के माध्यम से, विशेष रूप से ग्रामीण, जनजातीय और हाशिए के समुदायों के लिए, समान शिक्षा उपलब्धियों में योगदान करती है। समान शैक्षिक उपलब्धियों में योगदान देने के अलावा, शिक्षक राष्ट्रीय एकता, लैंगिक समता तथा लोकतांत्रिक नागरिकता, जैसे संवैधानिक मूल्यों को विकसित करते हुए स्कूलों और समाज में सामाजिक परिवर्तकों के रूप में कार्य करते हैं। साथ ही साथ, शिक्षकों से संबंधित मानव पूंजी विकास हेतु निरंतर निवेश करके शिक्षक-शिक्षा को बेहतर बनाने से दीर्घावधि तक आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं। उन्नत शिक्षण से बेहतर अध्ययन उपलब्धियां, छात्रों की रोजगार-योग्यता और नवाचार-प्रेरित आर्थिक वृद्धि होती है, जो ज्ञान-अर्थव्यवस्था की दिशा में भारत की प्रगति के लिए अनिवार्य आवश्यकताएं हैं। 'विकसित भारत @ 2047' के लक्ष्य से विकास हेतु वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा में अग्रणी रहने की अपनी आकांक्षा के अनुरूप, शिक्षक-शिक्षा को न केवल 'समाज सेवा' के रूप में समझने की आवश्यकता है, वरन इसे सामाजिक एकता और आर्थिक स्थिरता में बहुक्रियाशील लाभांश के लिए भारत के रणनीतिक राष्ट्रीय निवेश पोर्टफोलियो में भी शामिल किया जाना आवश्यक है।

निष्कर्ष

जब राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का विश्लेषण 'विकसित भारत @ 2047' की सूक्ष्म दृष्टि से किया जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'शिक्षक-शिक्षा भारत के विकासात्मक दृष्टिकोण की मुख्य कड़ी है।' दार्शनिक आधार, वर्तमान राजनैतिक नेतृत्व के बोध, अभिशासन सुधारों की गति और प्रौद्योगिकीय प्रगति के साथ साहचर्य के कारण होने वाले शिक्षक-शिक्षा संबंधी सुधारों से देश के 'शैक्षिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिदृश्य को बदलने' में बड़ा सहयोग मिलेगा।

भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद, आगामी पहली सदी की समाप्ति पर, शिक्षकों के समक्ष केवल सुधारों को क्रियान्वित करने का काम नहीं होगा, बल्कि शिक्षक स्वयं बौद्धिक, नैतिक और आर्थिक विकास की नींव रखेंगे

और इस प्रकार, स्वयं महत्वाकांक्षी और योग्य शिक्षकों के समक्ष केवल शिक्षा प्राप्त करने का ही नहीं, अपितु एक विकसित भारत के निर्माण में निवेश करने का कार्य भी होगा।

प्रोफेसर पंकज अरोड़ा
अध्यक्ष, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.)

सम्पादकीय संदेश...

भारतीय प्रज्ञा के अनुरूप जीवन व शिक्षा दृष्टि

अन्वेषिका के इस अंक को प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। समकक्ष व्यक्ति समीक्षित यह शोध पत्रिका 'अन्वेषिका', अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में भारत की ज्ञान परम्परा व स्वत्व के अनुरूप वैचारिकी, शैक्षिक नीतियों, शिक्षणशास्त्रीय नवाचारों व अभिनव प्रयोगों तथा बदलते विश्व में शिक्षकों की भूमिका व उत्तरदायित्वों से संबंधित स्थानीय, राष्ट्रीय व वैश्विक विमर्शों को समर्पित है।

भारत की परम्परा में शिक्षा के लक्ष्य व जीवन के लक्ष्य अलग-अलग नहीं हैं। शिक्षा की भूमिका जीवन के लक्ष्यों, अभ्युदय व निःश्रेयस् दोनों की सिद्धि हेतु आवश्यक गुणों यथा, जिज्ञासा, श्रद्धा, विश्वास, संयतेन्द्रियता, अनुशासन, विनयशीलता, पात्रता, सामर्थ्य, तपश्चर्या, निरंतर अभ्यास, वैराग्य आदि का विकास कर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय कोशों का सम्यक बोध कराते हुए परम आनन्द व शान्ति प्रदान करने की है। श्रीमद्भगवद्गीता में संदर्भ आया है कि - श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:। ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। (श्रीमद्भगवद्गीता 4/39) अर्थात्, जो श्रद्धावान् हैं, जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है, वे ही ज्ञान को प्राप्त करते हैं। इस ज्ञान के द्वारा वे शीघ्र ही परम शांति को प्राप्त कर लेते हैं।

श्रद्धा से शान्ति की यात्रा कराने वाली युगयुगीन भारतीय सनातन प्रज्ञा व संस्कृति इस राष्ट्र के मूल तत्त्व हैं। विद्या और अविद्या दोनों की प्राप्ति के माध्यम से अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों की सिद्धि कराने वाला धर्म इस राष्ट्र का अधिष्ठान है। तैतिरीय आरण्यक में कहा गया है *"धर्मो विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा"* अर्थात धर्म सम्पूर्ण जगत का आधार है। यहाँ धर्म का अर्थ उपासना पद्धत्ति नहीं वरन् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध आदि को धारण करना है। भारत की संस्कृति अपने ज्ञान, विज्ञान, भाषा, कला, साहित्य, संगीत, नाट्य आदि के माध्यम से शास्त्र व लोक के रूप अभिव्यक्त होते हुए जीवन्त है। यह संस्कृति विराट है; विविधता को स्वीकार करने वाली सर्वसमावेशी व सर्वकल्याणकामी चिन्तन है। यह चिन्तन 'मूल' और 'गंतव्य' के ऐक्य के अतिरिक्त मध्य की सभी प्रकार की कल्याणकारी विविधता को स्वीकार करता है। इसका मूल 'धर्म' नित्य है, परन्तु इसका व्यक्त स्वरूप निरंतर देश-काल-परिस्थिति के अनुरूप उस मूल धर्म की रक्षा के लिए परिवर्तित हो सकता है। स्वरूप चाहे जितना परिवर्तित हो, परन्तु प्रत्येक स्थिति में इसका गंतव्य 'सर्वकल्याण' है। इतनी स्वीकार्यता व स्वतंत्रता से युक्त यह परंपरा एक राष्ट्र के रूप में भारत में अभिव्यक्त हुई है।

असहमतियाँ बौद्धिक परंपरा में संभाव्य हैं। इसीलिए सनातन परंपरा *'वादे वादे जायते तत्त्वबोध: (शुक-रम्भा संवाद, 3)'* की है। यह परंपरा प्रतिक्रियात्मक नहीं वरन् अनुक्रियात्मक है। असहमत होंगे तो हम संवाद करेंगे और उचित निष्कर्ष तक पहुंचेंगे।

भारत की सनातन जीवन दृष्टि यह है कि हम सभी उस एक ही ब्रह्म से उद्भूत हैं और उसी में समाहित हो जाएँगे। हम

सभी उसी अनन्त ऊर्जा के रूप हैं। *हिरण्यगर्भ सूक्त* बताता है कि कैसे परम ब्रह्म से इस सृष्टि की रचना हुई और फिर जीव की रचना हुई। यह परम्परा ब्रह्म, सृष्टि व जीव में एकात्म स्वरूप का दर्शन करती है। मैं ब्रह्म हूँ *(अहम् ब्रह्मास्मि - बृहदारण्यक उपनिषद 1/4/10)*, तू भी ब्रह्म है *(तत्त्वमसि- छांदोग्यउपनिषद् 6/8/7)*, यह जो कुछ भी है, वह ब्रह्म ही है *(सर्वं खलु इदं ब्रह्म- छांदोग्यउपनिषद् 3/14/1)*, जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है *(जीवो ब्रह्मैव नापर:)*, यह विश्व ब्रह्म ही है *(ब्रह्म एव इदं विश्वम्- मुंडकोपनिषद् 2/2/11)*, यह आत्मा ही ब्रह्म है *(अयमात्मा ब्रह्म- बृहदारण्यक उपनिषद् 2/5/19)* आदि अनेकानेक वेद-उपनिषद् वाक्य एकात्मता के स्वरूप का वर्णन करते हैं। भारतीय परम्परा *'जीव-जगत्-जगदीश में एकत्व'* का दर्शन करती है। ब्रह्म व ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में इस एकात्म चिन्तन के कारण ही हम भारतीय, पूरी वसुधा को ही कुटुंब मानते हैं *(वसुधैव कुटुम्बकम् - महोपनिषद् 4/71)* और वसुधा के अंतर्गत सिर्फ मनुष्य ही नहीं हैं, प्राणीमात्र भी हैं; नदी, पर्वत, वन सभी हमारे कुटुंब हैं।

भारत की परम्परा में वेद कहते हैं कि *"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋग्वेद 1/164/46)"* अर्थात् वह एक ही है जिसे विद्वान् लोग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। अतः उस एक की विविध व्याख्याओं की स्वीकार्यता हमारी संस्कृति की समावेशिता का सामर्थ्य है।

भारत की परंपरा संघर्ष की नहीं वरन् समन्वय की है। इस परंपरा में दूसरे को मिटाना नहीं है, बल्कि दूसरे को अपने जैसा समझते हुए संवाद करना है। भारत में उस परंपरा के प्रति श्रद्धा है जो सबको अपना मानती है, और इसी भावना से भारत की जीवन दृष्टि विकसित हुई है। समन्वय की दृष्टि से समरसता की दृष्टि विकसित हुई, साहचर्य एवं सहकार विकसित हुआ, सहयोग विकसित हुआ, संवाद विकसित हुआ और संवेदना विकसित हुई। इसीलिए भारत ने सहअस्तित्व से भी आगे बढ़कर सहजीवन के बारे में चिन्तन किया। भारतीय समाज सब को अपना मानता है। इसका भाव है कि जो विविधता दिखाई देती है वह बाह्य है, उसमें आंतरिक एकत्व है।

धर्म और सर्वहित के मंत्र के अनुरूप भारत में ज्ञान-विज्ञान का विकास हुआ। विविध विद्याओं, कलाओं व शिल्पों का प्रणयन लोक कल्याण के निमित्त हुआ। पश्चिम में विषयों का विकास भिन्न रूप से व भिन्न उद्देश्यों के लिए हुआ। अतः विविध विषयों के संबंध में भारतेत्तर चिंतन, भारतीय चिंतन से आधारभूत रूप से अलग है। उदाहरण के लिए सनातन गोस्वामी, बृहद्-भागवतमृत में इतिहास विषय के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "धर्मार्थ-काम-मोक्षणम् उपदेश-समन्वितम् पूर्व-वृत्तान्त-कथा-युक्तम् इतिहासं प्रचक्षते" (बृहद्-भागवतमृत, 2/1/110)। अतः भारत में इतिहास विषय घटनाओं से संबंधित तथ्यों तक ही सीमित नहीं है वरन् तथ्यों के पुरुषार्थ चतुष्टय संबंधी कथ्यों व उन कथ्यों की फलश्रुति तक विस्तारित है। आधुनिक लिटरेचर स्वतंत्र है, परंतु भारतीय साहित्य लोकहित के लिए प्रतिबद्ध है, यहाँ कहा जाता है कि "हितेन सहितम् इति साहित्यम्"; अर्थात् साहित्य भी वही है जो हित के साथ है। नॉलेज के प्रति प्रेम आधुनिक फ़िलासफ़ी है, वही भारतीय दर्शन बोध की परिघटना है। आधुनिक पॉलिटिकल साइंस सत्ता केंद्रित है, वहीं भारतीय राजशास्त्र प्रजा केन्द्रित है ('प्रजा-सुखे सुखम् राज्ञः प्रजानाम् तु हिते हितम्')।

औपनिवेशिक काल में भारतीय प्रज्ञा से युक्त विद्याओं व विषयों तथा उनकी शिक्षण पद्धतियों के क्रमिक उन्मूलन और शिक्षायी वातावरण में परकीय विषयों व पद्धतियों के आच्छादन के फलस्वरूप हम विषयों की भारतीय दृष्टि से दूर होते गए। आज जिन भी विषयों को हम पढ़ते-पढ़ाते हैं, अधिकांशतः वे आधारभूत रूप से अभारतीय प्रकृति के अनुरूप विकसित हुए हैं। अतः भारत के वैचारिक जगत् के भारतीयकरण हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने

अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है। नीति की अपेक्षा के अनुरूप हमें विविध विषयों में व्याप्त अभारतीय चिंतन के कारण उत्पन्न विमर्श को रेखांकित करना चाहिए; साथ ही उन विषयों के लिए भारतीय चिंतन के अनुरूप समुचित विमर्श की भी स्थापना करनी चाहिए। अभारतीय विमर्श भारतीय समाज की प्रकृति के अनुरूप नहीं है, अतः भारतीय समाज व प्रज्ञा के अनुरूप विमर्श का मण्डन शैक्षिक परिवेश व विशेष रूप से अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक है। यह पत्रिका राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की मूल भावना के अनुरूप उपर्युक्त विमर्श के लिए प्रति प्रतिबद्ध है। भारत की ज्ञान परंपरा, वर्तमान युग की तकनीकी दक्षताओं व वैश्विक आवश्यकताओं को समझते हुए यह पत्रिका प्रतीची-प्राची के विविध विमर्शों को स्थान देने के लिए भी संकल्पित है।

पत्रिका के इस अंक के प्रकाशन हेतु कई शिक्षकों व शोधार्थियों ने अपने शोध-पत्रों व लेखों को साझा किया। इन लेखों में से प्रकाशन हेतु लेखों का चयन कर पाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। इस हेतु कई विद्वत्जनों का समीक्षा व संपादन कार्य में महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला। उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। प्रस्तुत अंक में लेखों की प्रस्तुति की एक निर्धारित सीमा के कारण हम कुछ ही लेखों को प्रकाशन हेतु चयनित कर पाए।

पत्रिका के इस अंक के लिए योगदान देने वाले प्रबुद्ध लेखकों तथा प्रकाशन प्रक्रिया से सम्बद्ध सम्माननीय समीक्षकों, संपादक मण्डल, प्रकाशन समिति व परामर्शदात्री समिति के सदस्यों व विशेष रूप से इस पत्रिका के संरक्षक, प्रोफेसर चाँदकिरण सलूजा जी तथा प्रधान संरक्षक व राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के माननीय अध्यक्ष, प्रोफेसर पंकज अरोड़ा जी का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। आप सभी के समवेत सामर्थ्य व साधना से ही यह कार्य सम्पन्न हो सका।

विद्वत्जनों से विशेष आग्रह है कि आपकी शोध-साधना व तदनुरूप श्रेष्ठ लेखन से यह पत्रिका संवर्धित होती है। अतः आने वाले अंकों के लिए भी आपका निरंतर सहयोग मिलता रहे। मुझे पूरा विश्वास है कि आप सभी के सहयोग से यह पत्रिका अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक नए विमर्श को स्थापित कर पाने में समर्थ होगी।

शुभकामनाओं सहित

प्रो. प्रवीण कुमार तिवारी
संपादक, अन्वेषिका
(शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय)

अन्वेषिका

(अध्यापक शिक्षा की समकक्ष व्यक्ति समीक्षित शोध पत्रिका)

खंड 11, अंक 2, मई- अगस्त, 2025, ISSN: 0974-7702

विषय-सूची

शीर्षक	लेखक	पृष्ठ संख्या
भारतीय ज्ञान परंपरा में वाणिज्यिक संप्रत्यय: कौटिलीय अर्थशास्त्र के विशेष संदर्भ में	ओम प्रकाश डॉ. हरीश पांडे डॉ. गणेश दत्त	1-12
औपनिवेशिक काल में भारतीय शिक्षा: तथ्य, भ्रम और इतिहास	प्रो. गौरव सिंह	13-24
प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा: संदर्भ, विमर्श व संभावनाएँ	कुलदीप कुमार पाण्डेय प्रो. आशीष रंजन	25-36
शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली का एकीकरण: संभावनाएँ, चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ. सुनीता सिंह सर्वेश्वर त्रिपाठी प्रो. सुस्मिता लाख्यानी	37-51
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र के विविध आयाम	आलोक कुमार	52-62
भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा की अवधारणात्मक समझ का वितान	प्रो. उषा शर्मा	63-71
भारतीय शोध पद्धत्ति: एक परिचय	प्रो. नीरजा गुप्ता	72-81
भाषा, बहुभाषिकता और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक आलोचनात्मक विश्लेषण	प्रो. धनंजय जोशी अनिता शर्मा	82-93
पुस्तक समीक्षा: द एन्क्शस जेनरेशन - जॉनथन हाइट	प्रो. पतंजलि मिश्र	94-97

भारतीय ज्ञान परंपरा में वाणिज्यिक संप्रत्ययः कौटिलीय अर्थशास्त्र के विशेष संदर्भ में

ओम प्रकाश
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
govindop@gmail.com

डॉ. हरीश पांडे
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
harishpandey@hindivishwa.ac.in

डॉ. गणेश दत्त
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर (एनसीईआरटी)
rkdassg@gmail.com

सारांश

प्राचीन काल से ही भारत एक समृद्ध परंपरा वाला देश रहा है, जो ज्ञान-विज्ञान, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, खगोलशास्त्र, अर्थशास्त्र, अध्यात्म, शिक्षा, इत्यादि सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर राष्ट्र रहा है, जिसने शास्त्र हो या लोक, प्रत्येक विधा में अपनी मेधा को प्रस्तुत किया है, जिसका प्रमाण हमें प्राचीन भारतीय वांग्मय के साथ-साथ विभिन्न देशों में विद्यमान भारतीय कला संस्कृति के धरोहरों से मिलता है। यह शोध पत्र प्राचीन भारतीय वांग्मय में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्ययों की पड़ताल का एक सार्थक प्रयास है। प्रस्तुत शोध पत्र आचार्य कौटिल्य द्वारा विरचित ग्रंथ अर्थशास्त्र पर आधारित है, जिसमें सन्निहित वाणिज्यिक संप्रत्ययों के विस्तृत अध्ययन हेतु स्वनिर्मित चेकलिस्ट का उपयोग किया गया है, विश्लेषण हेतु संप्रत्यात्मक विषयवस्तु विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया गया है। परिणामतः कौटिल्य अर्थशास्त्र में विद्यमान समाहर्त-समुदाय, प्रस्थापन, अक्षपटल में गाणनिक्याधिकार, पण्याध्यक्ष, इत्यादि का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही प्रस्तुत शोध के परिणामों के आधार पर भारतीय ज्ञान परंपरा के वाणिज्यिक संप्रत्ययों के संवर्धन हेतु उपयुक्त शैक्षिक निहितार्थों को भी उद्धृत किया गया है।

मुख्य शब्दः *भारतीय ज्ञान परंपरा, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वाणिज्यिक संप्रत्यय*

पृष्ठभूमि

भारतीय ज्ञान परंपरा जड़ नहीं बल्कि सतत प्रवाहमान है, जिसमें विवेक के उपयोग की स्वतंत्रता है। इस ज्ञान परंपरा के अंतर्गत आध्यात्मिक, धार्मिक, पौराणिक ज्ञान-विज्ञान, आयुर्वेद, व्यापार, वास्तुकला, प्राचीनतम भाषा संस्कृत तथा योग आदि का अद्भुत संगम है। भारतीय ज्ञान परंपरा इस दृष्टि से भी विचारणीय है कि उसके तत्व आश्चर्यजनक रूप से मनुष्य और समग्र सृष्टि को संबोधित करते हैं। इसीलिए भारतीय ज्ञान परंपरा उत्तरवर्ती का उत्तरवर्ती, आगे के आगे या श्रेष्ठ से श्रेष्ठ परंपरा है, अर्थात् इसमें प्राचीनता का समावेश तो है ही उसमें नवीनता और अद्यतनता के साथ-साथ श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की ग्राह्यता भी है (मिश्र, 2022)। भूमण्डलीकरण के वर्तमान समय में जब परस्पर निर्भरता वैश्विक जीवन का मूलमंत्र बनती जा रही है, भारतीय जीवन दृष्टि और भी प्रासंगिक हो गयी है। स्मरणीय है कि भारतीय ज्ञान परंपरा मात्र शास्त्रीय नहीं है, जैसा कि प्रायः प्रचलित किया गया है। शास्त्र के साथ वह लोक व्यवहार में भी अवस्थित है (मिश्र, 2006)।

प्राचीन भारत में चौथी शताब्दी ईसा पूर्व आचार्य कौटिल्य ने एक महान कृति की रचना की जो अर्थशास्त्र के नाम से विख्यात है, जो 6000 सूत्रों के साथ 15 अधिकरणों, 150 अध्यायों और 180 प्रकरणों में विभक्त है, जिसमें आचार्य कौटिल्य ने मुख्यतः चार विद्याओं की स्थापना की है- *'आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः'* (अर्थशास्त्र 1/21/1/1) अर्थात् आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्त्ता (व्यापार और वाणिज्य) तथा दण्डनीति (लोक प्रशासन और राजनीतिशास्त्र)। इन चार विद्याओं में वार्ता (व्यापार एवं वाणिज्य) को एक प्रमुख विद्या शाखा के रूप में स्थापित किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र को आधार मानकर अनेक विद्वानों ने उस पर भाष्य, टीका, हिंदी एवं अंग्रेजी में अनुवाद किया है, जिसमें प्रमुख आचार्य उदयवीर शास्त्री का कौटिलीय अर्थशास्त्र है। अर्थशास्त्र में अर्थ और अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि *मनुष्याणां वृत्तिरर्थः॥1॥ मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः॥2॥ तस्या पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति॥3॥ (अर्थशास्त्र, 15/1/180)*। आचार्य कौटिल्य मनुष्यों के व्यवहार या जीविका को अर्थ मानते हैं, साथ ही मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ माना है और इस भूमि को प्राप्त करने और रक्षा (पालन-पोषण) करने के उपायों का निरूपण करने वाले शास्त्र को अर्थशास्त्र कहा है। आचार्य कौटिल्य ने अर्थ को समझाते हुए अर्थशास्त्र की इतनी सटीक और स्पष्ट परिभाषा दी है, जितना स्पष्ट आज तक किसी विद्वान ने नहीं दी है। पाश्चात्य विद्वान, जिनमें एडम स्मिथ, मार्शल, पीगू आते हैं, सभी ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान ही माना है और मनुष्य को आर्थिक मनुष्य या अर्थ-मानव, अर्थात् ऐसा मनुष्य जो आर्थिक कारकों से परिचालित होता है, के रूप में परिभाषित किया है। जैसे कोई व्यक्ति कोई कार्य करे या न करे इसका निर्णय किस आधार पर लें, तो इसका आधार होगा अमुक कार्य करने में यदि लाभ है तो कर लेना चाहिए अन्यथा नहीं करना चाहिए। कोई वस्तु बाजार में खरीदी जाए या नहीं, इसका निर्णय इस आधार पर कि यदि वह सस्ती है तो खरीदनी चाहिए, यदि महंगी है तो नहीं खरीदनी चाहिए। कोई व्यापारी कोई वस्तु बेचे की न बेचे, तो इसका निर्णय इस आधार पर कि जहां दाम अधिक मिले वहां बेचे, जहां कम मिले वहां न बेचे (गुप्त, 2014)। इसी तरह वर्तमान समाज में यही अवधारणा व्याप्त है और वर्तमान पाठ्यक्रमों में यही पढ़ाया भी जा रहा है। इसको बदलने की आवश्यकता है तथा इसके स्थान पर भारतीय मनीषियों द्वारा प्रतिपादित, जो सर्वांग मनुष्य की अवधारणा जहां एकात्मकता के साथ जिसमें सभी के कल्याण की बात निहित हो, ऐसे संप्रत्ययों और अवधारणाओं को पाठ्क्रम का अंग बनाना चाहिए।

वाणिज्य एक विस्तृत अर्थ वाला शब्द है, जिसमें उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित करते हैं जो उत्पादकों से माल खरीदकर उपभोक्ताओं तक ले जाने में सहायक होती हैं। जैसे बैंक से पूंजी उधार लेना, बीमा कम्पनी से माल के जोखिम का बीमा कराना, विज्ञापन करना, माल के स्थानान्तरण के लिए यातायात की सुविधा प्राप्त करना, माल के विक्रय के लिए मध्यस्थों (थोक व फुटकर व्यापारी) का सहयोग लेना आदि। इस प्रकार वाणिज्य शब्द के अन्तर्गत हम केवल क्रय-विक्रय को ही सम्मिलित नहीं करते, वरन् व्यापार के अन्य सहायक साधनों का भी समावेश करते हैं, जिनके द्वारा हम वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुंचाते हैं (जैन, 2013)।

संबंधित साहित्य की समीक्षा

सिहाग (2004, 2007, और 2009) ने वाणिज्य की विभिन्न अवधारणाओं जैसे, लेखांकन प्रविधियों, संगठनात्मक ढांचा एवं नैतिकता, सार्वजनिक वस्तुओं, कराधान के सिद्धांत, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार, नव-शास्त्रीय मूल्य सिद्धांत, बाजार और सरकार की विफलताओं को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2009 में कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर पांच अलग-अलग अध्ययन किए। सुंदर (2008) ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अध्ययन किया और पाया कि वाणिज्य, व्यापार, लेखा और लेखा परीक्षा पर उनके विचार बहुत ही जटिल अर्थव्यवस्थाओं के आधुनिक समय

में काफी प्रासंगिक थे। वाल्डॉयर, जहका और पाल (1996) ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अध्ययन किया और उन्हें शास्त्रीय अर्थशास्त्र के लिए एक उपेक्षित अग्रदूत के रूप में संबोधित किया और कहा कि कौटिल्य ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार, कराधान और मूल्य के श्रम सिद्धांत के क्षेत्रों में लगभग 2000 वर्षों तक शास्त्रीय आर्थिक विचार का अनुमान लगाया था। उनके सरकार के दर्शन के इस पहलू को आर्थिक विचार के इतिहासकारों ने नजरअंदाज कर दिया है और हम मानते हैं कि उनके योगदान को उचित और अतिदेय मान्यता मिलनी चाहिए। मणिअप्पन और दास (2008) ने अपने शोध पत्र में कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सी.एस.आर.) दर्शन का पता कौटिल्य के अर्थशास्त्र से लगाया और कहा कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र सी.एस.आर. के लिए एक अंदर-बाहर का दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो व्यक्तिगत नेता के आत्म-विवेक का विकास है, जो पश्चिमी दृष्टिकोण से विपरीत है तथा बाहरी परिप्रेक्ष्य लेता है। सी.एस.आर. हासिल करने के अंतिम उद्देश्य की दिशा में पारदर्शिता, अच्छा आचरण और प्रशासन सुनिश्चित करने में नेताओं और निगमों में उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

उद्देश्य

भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वाणिज्यिक संप्रत्यय का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध गुणात्मक प्रकृति का है, जिसमें ऐतिहासिक सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है। अध्ययन में आचार्य कौटिल्य विरचित ग्रंथ अर्थशास्त्र का आचार्य उदयवीर शास्त्री द्वारा हिन्दी में अनुवादित पुस्तक कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा डॉ. श्यामलेश कुमार तिवारी एवं जी.पी. शास्त्री द्वारा हिंदी टीका कौटिलीय अर्थशास्त्रम् के द्वितीय अधिकरण अध्यक्षप्रचार के अध्याय 6 समाहर्तृ-समुदय प्रस्थापन, अध्याय 7 अक्षपटल में गाणनिक्याधिकार, अध्याय 16 पण्याध्यक्ष, अध्याय 19 हलामानपौतवम् (तोल माप का संशोधन), अध्याय 21 शुल्काध्यक्ष एवं अध्याय 34 मुद्राध्यक्ष और विवताध्यक्ष के प्रकरण क्रमशः 24, 25, 34, 37, 39 एवं 52-53, तृतीय अधिकरण धर्मस्थीय के अध्याय 9 वास्तु विक्रय, अध्याय 11 ऋणादानम् (ऋण लेना), अध्याय 15 विक्रीतक्रीतानुशय के प्रकरण क्रमशः 61, 63, 67 एवं चतुर्थ अधिकरण कण्टकशोधन का अध्याय 2 वैदेहकरक्षणम के प्रकरण 77 इत्यादि में निहित वाणिज्यिक संदर्भों की पहचान स्वनिर्मित चेकलिस्ट के माध्यम से किया गया है। तदुपरान्त, जिसके विश्लेषण हेतु संप्रत्यात्मक विषयवस्तु विश्लेषण तकनीकी का उपयोग किया गया है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में वाणिज्यिक संप्रत्यय

माध्यमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश का वाणिज्य विषय का पाठ्यक्रम हो चाहे केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली का वाणिज्य विषय का पाठ्यक्रम हो, दोनों ही पाठ्यक्रमों में वाणिज्य से संबंधित जिन अवधारणाओं और संप्रत्ययों का अध्ययन एवं अध्यापन किया जाता है, उनमें वस्तु विनिमय, पुस्तपालन, बहीखाता, लेखाशास्त्र, व्यापार, मुद्रा, मूल्य, बैंक, आय-व्यय, ऋण, ब्याज, पूंजी, बचत, क्रय-विक्रय, विपणन, विज्ञापन, उत्पादन, उपभोग, उपभोक्ता, मांग, आपूर्ति इत्यादि सम्मिलित हैं, जिनके केन्द्र में अर्थ (मुद्रा=Money) और आर्थिक गतिविधियों की पहचान, उनका उचित पुस्तकों में विधिवत लेखा करने से है। उक्त सभी वाणिज्यिक गतिविधियां प्राचीन काल से भी घटित होती चली आ रही हैं, जिनका उल्लेख विविध रूपों में कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी मिलता है।

आचार्य कौटिल्य ने राज्य के समस्त क्रियाकलापों के सुचारू संचालन हेतु राजकीय कार्यों से संबंधित 18 विभागों का वर्णन किया है, जिनमें से एक विभाग समाहर्त्ता (सभी प्रकार के राजस्व एवं कर संग्रह करने वाला

अधिकारी, जिसे वर्तमान में कलेक्टर कहते हैं) का है, जिसके द्वारा किए जाने वाले राजस्व संग्रह के कार्यों का विस्तृत उल्लेख यहां पर किया गया है-

समाहर्त्ता दुर्ग राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वाणिक्पथं चावेक्षेत।। (अर्थशास्त्र, 2/6/24/1)

आचार्य कौटिल्य राजस्व के विभिन्न मदों का उल्लेख करते हैं, जो समाहर्त्ता संग्रहित करता है- उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क, गृह कर, दंड, व्यापारियों या कृषि समुदायों पर कर, खानों से रॉयल्टी, पशुधन के माध्यम से आय और सड़कों और समुद्री मार्गों पर चुंगी इत्यादि; और ये सभी राज्य के लिए आय के स्त्रोत के रूप में जाने जाते हैं। इनके साथ ही और कई मद इसमें शामिल हैं, जो इस प्रकार हैं-

शुल्कं दण्डः पोतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं तैलं घृतं क्षारं सौवर्णिकः पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारबाहिरिकादेयं च दुर्गम्।। (अर्थशास्त्र, 2/6/24/2)

शुल्क (चुंगी), दण्ड (प्रथम साहस आदि), पौतव (तराजू बाट आदि को ठीक करना) नगराध्यक्ष, लवणाध्यक्ष (खेत तथा बगीचे आदि की सीमा नापकर निश्चित करने वाला अधिकारी, पुरुष पटवारी, कानूनगो आदि), मुद्राध्यक्ष, मद्याध्यक्ष, प्राणिवधाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तैलविक्रयी, घृतविक्रयी, क्षारविक्रयी (गुड़ आदि को बेचने वाला), सौयणिक (सुवर्णाधिकारी पुरुष), पण्यसंस्था (दुकान), वेश्या, द्यूत, वास्तुक (गृह निर्माण करने वाले राजगीर आदि), बढ़ई, लुहार तथा सुनार और स्वर्णकारी आदि का बारीक काम करने वाले कारीगरों का समूह, देवालय का निरीक्षक, नगर आदि के द्वारपाल तथा नट नर्तक आदि से आदेय धन दुर्ग कहलाता है, अर्थात् चुंगी आदि बाइस उपायों से राजकर के रूप में लिए हुए धन को दुर्ग कहा है, जिसे राजकीय आय में जोड़ा जाता है।

सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम्। (अर्थशास्त्र, 2/6/24/3)

सीता (कृषि खेती), भाग (धान्य आदि का छठा हिस्सा), बलि (उपहार अथवा भिक्षा), कर (फल तथा वृक्ष आदि के संबंध में राजदेय धन), सर (नदी आदि पार होने का टैक्स), नाव (नौकाध्यक्ष के द्वारा लभ्य धन), पट्टन (क़स्बों से लभ्य धन), विवीत (चारागाह के द्वारा प्राप्तव्य धन), वर्तनी (सड़कों का टैक्स), रज्जू (विषयपाल भूमिनिरीक्षक पुरुषों के द्वारा प्राप्त धन) तथा श्चोररज्जू (चोरों को पकड़ने के लिए गांव से प्राप्त हुआ धन), ये सभी प्रकार के धन के स्त्रोत को आचार्य कौटिल्य ने राष्ट्र शब्द से संबोधित किया है।

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालङ्खलोहलवणभूमिप्रस्तररसधातवः खनिः।। पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः।। पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम्।। (अर्थशास्त्र, 2/6/24/4-6)

आचार्य कौटिल्य ने सुवर्ण, चांदी, हीरा, मरकत आदि, मणि, मोती, मूंगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर तथा रसधातु ये सब पदार्थ खान से प्राप्त होने के कारण इसे खनि शब्द से संबोधित किया है। फूल तथा फलों के बाग, केला सुपारी आदि, मक्कों के खेत, अदरक तथा हल्दी आदि वस्तुओं के उत्पत्ति स्थान, इन सबको यहां सेतु शब्द से संबोधित किया है। पशु, हरिण, द्रव्य भिन्न-भिन्न प्रकार की लकड़ी आदि तथा हाथियों के जंगल को वन शब्द से संबोधित किया है।

गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः।। स्थलपथो वारपथश्च वाणिक्पथः।। इत्यायशरीरम्।। (अर्थशास्त्र, 2/6/24/7-9)

गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊंट, घोड़े, खच्चर आदि को व्रज कहा है। स्थल मार्ग और जल मार्ग को ही यहां वणिक्पथ कहा है। इन सभी को आचार्य कौटिल्य ने आय का शरीर माना है, अर्थात् राजा को जिन-जिन मार्गों से आय हो सकती है, ये यही हैं। धन की आमदनी के यही स्थान हैं।

मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम्।। (अर्थशास्त्र, 2/6/24/10)

मूल (अन्न तथा फल आदि को बेचकर प्राप्त किया धन), भाग (अन्न आदि का छठा हिस्सा), ब्याजी (व्यापारियों से तुला मान आदि के न्यून होने पर, फिर न्यून न हों, इसलिए दण्ड रूप में लिया हुआ आमदनी का बीसवां हिस्सा, अर्थात् जिस द्रव्य का कोई वारिस न हो), क्लृप्त (नियत कर), रूपिक (नमक के व्यापारियों से लिया हुआ नमक का आठवां हिस्सा), अत्यय (धर्मस्मीय कण्टकशोधन आदि अधिकारियों के द्वारा अपराधियों पर किए गए जुर्माने का धन), ये सब आय के स्थान, आय का मुख कहा है, क्योंकि आमदनी के जितने द्वार बताए हैं, उन सबमें से आचार्य कौटिल्य ने इन्हें ही मुख्य कहा है।

तालिका सं. 1: राजस्व एवं उनके स्त्रोत

राजस्व	राजस्व के स्त्रोत
दुर्ग	शुल्क, दण्ड, पौतव, नगराध्यक्ष, लवणाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, मद्याध्यक्ष, प्राणिवधाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तैलविक्रयी, घृतविक्रयी, क्षारविक्रयी, सौयणिक, पण्यसंस्था, वेश्या, द्यूत, वास्तुक, बढ़ई, लुहार, देवालय का निरीक्षक, नगर आदि के द्वारपाल तथा नट नर्तक इत्यादि
राष्ट्र	सीता, भाग, बलि, कर, सर, नाव, पट्टन, विवीत, वर्तनी, रज्जू तथा श्चोररज्जू
खनि	सुवर्ण, चांदी, हीरा, मरकत आदि मणि, मोती, मूंगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर तथा रसधातु
सेतु	फूल तथा फलों के बाग, केला सुपारी आदि, मक्कों के खेत, अदरक तथा हल्दी आदि वस्तुओं के उत्पत्तिस्थान
वन	पशु, हरिण, द्रव्य भिन्न-भिन्न प्रकार की लकड़ी आदि तथा हाथियों के जंगल
वज्र	गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊंट, घोड़े, खच्चर आदि
वाणिक्यपथ	स्थल मार्ग और जल मार्ग
अन्य	मूल, भाग, ब्याजी, क्लृप्त, रूपिक, अत्यय इत्यादि

करणीयं सिद्वं शेषमायव्ययौ नीवी च।। संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डः संजातमेतत्करणीयम्।। (अर्थशास्त्र, 2/6/24/13-14)

आचार्य कौटिल्य समाहर्त्ता द्वारा एकत्र राजस्व के विविध रूपों को स्पष्ट करते हैं, जैसे- करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, तथा नीवी (सब तरह के व्यय से बचा हुआ आय और व्यय की अच्छी तरह गणना करके ठीक-ठीक निश्चित हुआ धन नीवी कहलाता है)। यह दो प्रकार का होता है। (प्राप्त- जो खजाने में जमा कर दिया गया हो, अनुवृत्त- जो खजाने में जमा करने के लिए तैयार रखा हो)। इसे ठीक-ठीक व्यवस्थित करने का आदेश करते हैं तथा उसका विस्तार करते हुए कहते हैं कि करणीय छः प्रकार का होता है- स्थान (अमुक ग्राम से इतना धन लेना चाहिए, ऐसा निर्णय), प्रचार (पृथक-पृथक देश के अवान्तर विभागों का ज्ञान), शरीरावस्थापन (जनपद और नगरों की इतनी आय है, इस प्रकार आय के शरीर का निश्चय), आदान (अन्न तथा हिरण्य आदि को ठीक समय पर ले लेना), सर्वसमुदयपिण्ड (प्रत्येक ग्राम तथा प्रत्येक नगर में उत्पन्न हुए धान्य आदि को एकत्रित करना तथा उसकी जानकारी रखना), सञ्जात (प्रत्येक उपाय से प्राप्त किए हुए धन के परिणाम का ज्ञान रखना) ये छः करणीय हैं। समाहर्त्ता के अवश्य करने योग्य कार्य होने के कारण इन्हें आचार्य ने करणीय शब्द से संबोधित किया है।

कोशार्पितं राजहारः पुरव्ययश्च प्रविष्ट परमसंवत्सरानुवृत्तं शासनमुक्तं मुखाज्ञप्तं चापातनीयमेतत्सिद्धम्।।
(अर्थशास्त्र, 2/6/24/15)

आचार्य कौटिल्य ने सिद्ध के भी छः प्रकार बताए हैं, कोशार्पित (खजाने में जमा कर दिया हुआ), राजहार (राजा द्वारा अपने निजी कार्य के लिये समाहर्त्ता से लिया हुआ) और पुरव्यय (नगर के शाला निर्माण आदि कार्यों में खर्च हुआ), यह तीनों प्रकार का धन प्रविष्ट शब्द से कहा जाता है। परमसंवत्सरानुवृत्त (पिछले साल का बचा हुआ धन, जो कि अभी प्रविष्ट नहीं हुआ, अर्थात् न खजाने में जमा किया गया है, न राजा ने अपने कार्य के लिए लिया है और न नगर के कार्यों में व्यय हुआ है), शासनमुक्त (जिस धन के संबंध में राजा ने अभी तक अपनी कोई लिखित आज्ञा नहीं दी) और मुखाक्षप्त (जिस धन के संबंध में राजा ने मौखिक आज्ञा दे दी है), यह तीन प्रकार का धन आपातनीय कहा जाता है। इस तरह तीन प्रकार का प्रविष्ट और तीन प्रकार का आपातनीय मिलकर कुल छः प्रकार का सिद्ध कहलाता है।

सिद्धिमकर्मयोग दण्डशेषमाहरणीयं बलात्कृतप्रतिस्तब्धमवसृष्टं च प्रशोध्यमेत्च्छेषमसारमल्पसारं च।।
(अर्थशास्त्र, 2/6/24/16)

आचार्य ने शेष के भी छः प्रकार बताएं हैं- सिद्धमकर्मयोग (धान्य आदि के मिल जाने पर उन्हें अपने अधीन न करने के लिये प्रवृत्त करना) तथा दण्ड शेष (सेना के उपयोग से बचा हुआ धन) सुखपूर्वक लिए जा सकने के कारण इन दोनों को आहरणीय से संबोधित किया है। राजा के प्रिय पुरुषों ने बलपूर्वक अपनी इच्छानुसार न दिया हुआ धन (तात्पर्य यह है कि जो पुरुष राजा के मुंह लगे हुए होते हैं, वे यह सोचकर कि समाहर्त्ता हमारा क्या कर सकता है, जान-बूझकर राजदेय धन समाहर्त्ता को नहीं देते। ऐसा उन लोगों से प्राप्त न हुआ धन) और अवसृष्ट अर्थात नगर के मुखिया लोगों द्वारा अपनी इच्छानुसार न दिया हुआ धन प्रशोध्य नाम से कहा जाता है, क्योंकि इन दोनों प्रकार के धनों को वसूल करना समाहर्त्ता के लिए बड़ा कठिन काम है, इसलिए इनको प्रशोध्य से संबोधित किया है। इस प्रकार दो तरह का आहरणीय, दो तरह का प्रशोध्य मिलकर चार तरह का और असार (निष्फल व्यय हुआ धन) तथा मल्पसार (बहुत व्यय करके भी, जिसका फल थोड़ा ही मिला हो), ये सब मिलाकर छः प्रकार का शेष होता है।

वर्तमानः पर्युपितो ऽन्यजातश्चायः।। दिवसानुवृत्तो वर्तमानः।। परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः।।
(अर्थशास्त्र 2/6/24/17-19)

आचार्य ने आय को तीन रूपों में विभक्त किया है- वर्तमान, पर्युपित और अन्यजात। जो आय प्रतिदिन हो, अर्थात दैनिक आय, वर्तमान आय कहलाता है। पिछले वर्ष का जो धन उस समय वसूल न हुआ हो, उसका अब वसूल होना अथवा पहले अध्यक्ष के समय में हिसाब आदि की गड़बड़ी से न मालूम हुए धन का मालूम हो जाना अथवा शत्रु के देश से आया हुआ धन, यह पर्युपित आय कहलाता है।

व्यय के संबंध में कौटिल्य के विचार

नित्यो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति व्ययः।। दिवसानुवृत्तो नित्यः।। पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः।। तयोरूत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति।। व्ययसंजातादायव्यविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति।।
(अर्थशास्त्र, 2/6/24/23-27)

आचार्य कौटिल्य ने व्यय के चार प्रकार बताए हैं- नित्य, नित्योत्पादिक, लाभ, लाभोत्पदिक। जो व्यय प्रतिदिन नियम पूर्वक होता हो, उसे नित्य कहा है। पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक लाभ के लिए जो धन व्यय किया जाता है, उस व्यय को लाभ कहते हैं। नित्यव्यय और लाभव्यय के साथ, जो और अधिक व्यय (व्यय के लिये नियमित निर्णीत धन से और अधिक धन, व्यय) हो जाए तो उसे यथासंख्य नित्योत्पादिक और लाभोत्पादिक कहा जाता है। सब तरह के व्यय से बचा हुआ, आय और व्यय की अच्छी तरह गणना करके ठीक-ठीक निश्चित हुआ धन नीवी कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है- प्राप्त (जो खजाने में जमा कर दिया गया हो) और अनुवृत्त (जो खजाने में जमा किए जाने के लिए तैयार रखा हो।

आकृति सं. 1: समाहर्त्ता द्वारा संरक्षित राजस्व

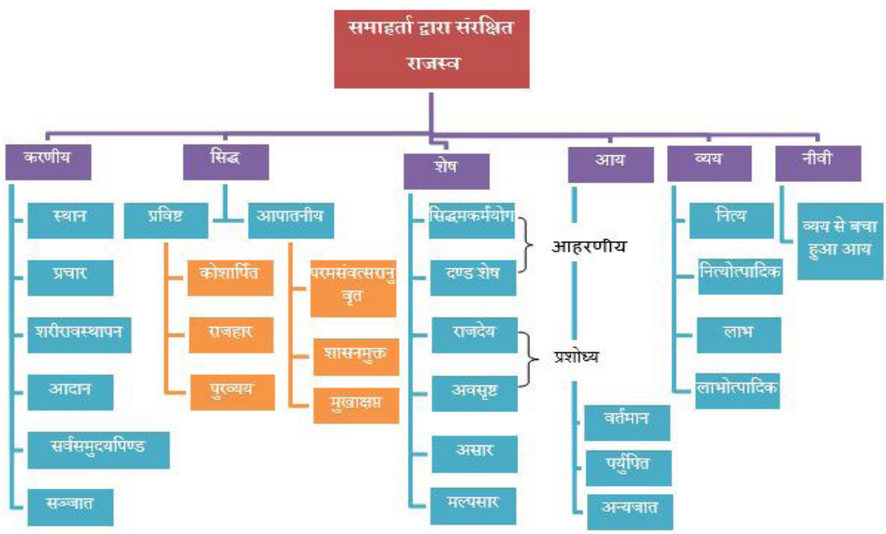

समस्त आय-व्यय का लेखा खाता-बहियों में लिखने हेतु प्रधान व्यापारिक कार्यालय का निर्माण तथा लेखांकन के नियम संबंधी विचार

अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तकस्थानं कारयेत्।। (अर्थशास्त्र, 2/7/25/1)

सभी प्रकार के आय-व्यय का लेखांकन तथा उसके रख-रखाव को ध्यान में रखते हुए आचार्य कौटिल्य ने अक्षपटलाध्यक्ष को संबोधित करते हुए कहा है कि अध्यक्ष (आय-व्यय का प्रधान निरीक्षक अधिकारी पुरुष), अक्षपटल (आय-व्यय के प्रधान कार्यालय) का निर्माण कराए। उसका दरवाजा पूरब-उत्तर की ओर होना चाहिए, प्रत्येक छोटे-बड़े लेखकों (क्लर्कों) के लिए पृथक-पृथक स्थान होने चाहिए, आय-व्यय के रजिस्टरों को रखने का उसमें नियमित तथा सुरक्षित प्रबन्ध होना चाहिए।

तत्राधिकरणानां संस्थाप्रचारसंचाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे वृद्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजीयोगस्थानवेतनविष् टिप्रमाणं रत्नसारफल्गुकुप्यानामर्घप्रतिवर्णकप्रतिमानमानोन्मानावमानभाण्डं देशग्रामजातिकुलसङ्घातनां धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानं राजोपजीविनां प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तवेतनलाभं राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां रत्नभूमिलाभं निर्देशोत्पातिकप्रतीकारलाभं मित्रामित्राणां च संधिविक्रमप्रदानादानि निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत्।।2।।

(अर्थशास्त्र, 2/7/25/2)

यहां पर आचार्य कौटिल्य के द्वारा अक्षपटल में होने वाले कार्यों का उल्लेख किया गया है- द्रव्यों के उत्पत्ति स्थानों के नाम निर्देशपूर्वक संख्या, जनपद तथा वहां की हर तरह की उपज को रजिस्टर में लिखा जाए, अर्थात अमुक जनपद में इतने-इतने स्थानों से इतना-इतना धन प्राप्त हुआ। खान तथा हर प्रकार के कारखानों के आय-व्यय के संबंध में वृद्धि (ब्याज) अक्ष (लेखा कर्मचारियों को नियुक्त करना), व्यय (धान्य हिरण्य आदि को कार्य में लगाना), प्रयाम (तैयार हुआ अक्ष आदि का समूह), ब्याजी, योग (अच्छे और बुरे द्रव्य की मिलावट), स्थान (ग्राम आदि), वेतन, विष्टि (वेगार) आदि सब कार्यों का उल्लेख रजिस्टर में किया जाए। रत्न, सार, फल्गु और कुप्य पदार्थों के मूल्य, प्रत्येक वस्तु का गुण, तोल, लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई तथा असली मूलधन का उल्लेख रजिस्टरों में किया जाना चाहिए। देश, ग्राम, जाति, कुल तथा सभा-सोसाइटियों के धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा विशेष परिस्थितियों का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। राजोपजीवी पुरुषों के प्रग्रह (पूजा, मन्त्री, पुरोहित आदि के प्रति किया हुआ विशेष सत्कार), निवास-स्थान, भोग (भेंट आदि), परिहार (कर आदि का न लेना), भक्त के घोड़े-हाथी आदि का खर्च देना तथा वेतन आदि का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। महारानी तथा राजपुत्रों के रत्न और भूमि आदि की प्राप्ति का भी उल्लेख किया जाए। राजा, महारानी और राजपुत्रों को नित्य दिए जाने वाले धन से अतिरिक्त दिया हुआ धन, विशेष उत्सव आदि से प्राप्त हुआ धन तथा रोगों को शान्त करने के लिए जनता से प्राप्त हुआ धन, इनको भी पुस्तकों में लिख लिया जाना चाहिए। मित्र तथा शत्रुओं के सन्धि-विग्रह और उनको दिए हुए तथा उनसे लिए हुए धन आदि का भी पुस्तकों में उल्लेख कर लिया जाना चाहिए। यह सभी राज कार्य हैं, जो कि अक्षपटल अर्थात् राजकीय कार्यालयों में होने चाहिए।

ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवीमुपस्थानं प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत्।। उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसु तज्जातिकमध्यक्षं कुर्यात्।। (अर्थशास्त्र, 2/7/25/3-4)

उपर्युक्त में अक्षपटलाध्यक्ष सभी अधिकरणों (उरपसिस्थानों या कार्य-स्थानों) के करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, नीवी, उपस्थान (कार्यकर्त्ताओं की उपस्थिति), प्रचार, चरित्र तथा संस्थान आदि सबको लिखकर राजा के समक्ष प्रस्तुत कर तथा उत्तम, मध्यम तथा नीच कार्यों पर उनके अनुकूल ही अलग-अलग अध्यक्ष नियुक्त किए जाने की ओर संकेत किया गया है।

त्रिंशतं चतुःपञ्चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः।। तमाषाढीपर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात् ।। करणाधिष्ठितमीधमासकं कुर्यात्।। (अर्थशास्त्र, 2/7/25/7-9)

कार्य दिवसों तथा वेतन के संबंध में आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि तीन सौ चौवन दिन का एक वर्ष समझा जाए, जिसमें सारा राज्य कार्य समाप्त कर देना चाहिए, जिसकी समाप्ति आषाढ़ मास की पूर्णमासी तक समाप्त होनी चाहिए। यदि कोई अध्यक्ष आदि बीच में ही कार्य पर नियुक्त किया गया हो, उसे उतने दिन को काटकर वेतन दिया जाए, जिसने पूरा काम किया हो, उसे पूरा वेतन दे दिया जाए। प्रतिमास में किस पुरुष ने कितना काम किया है, इस बात का पता उपस्थिति के गणक (हाजिरी का क्लर्क, अर्थात् सब कर्मचारियों की उपस्थिति का लेखक) से लेना चाहिए।

गाणनिक्यान्याषाढीमागच्छेयु।। आगतानां समुद्रपुस्तभाण्डनीवीकानामेकन संभाषानरोधं कारयेत्।।

(अर्थशास्त्र, 2/7/25/17-18)

वार्षिक लेखा और निधि जमा करने संबंधी नियमों को निर्धारित करते हुए कहा कि छोटे-छोटे सब कार्यालय के अध्यक्ष, अपना हिसाब दिखाने के लिए, प्रतिवर्ष अषाढ़ के महीने में प्रधान कार्यालय में आएँ। आए हुए उन लोगों का उस समय तक परस्पर भाषण न होने दें, जब तक कि उनके पास राजकीय मोहरे लगे हुए रजिस्टर तथा व्यय से बचा हुआ शेष धन विद्यमान रहे। (अर्थात् जब उनका हिसाब जांच लिया जाए और बाकी रकम ले ली जाए तब ही वे लोग आपस में मिल सकें)।

दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवतसरैश्च प्रतिसमानयेत्।। (अर्थशास्त्र, 2/7/25/31)

लेखांकन सुदृढ़ और विश्वसनीय हो, उसके लिए उन्होंने कहा कि प्रतिदिन, पांच दिन, पक्ष (पन्द्रह दिन), महीना, चार महीना और साल, इस प्रकार विभाग करके आय-व्यय तथा नीवी का लेखा करे। तात्पर्य यह है कि- जब वर्ष प्रारम्भ हो, एक-एक दिन की अलग-अलग आय आदि जोड़ता रहे, जब पांच दिन हो जाए तो उसे इकट्ठा जोड़कर रखे, इसी तरह पांच-पांच दिन तक के अंकों को इकट्ठा जोड़कर रखता रहे, जब पन्द्रह दिन हो जाए, तो उन पांच-पांच दिन के तीन अंकों को फिर इकट्ठा जोड़कर, इसी तरह महीने के बाद दो पक्ष के दो अंकों को, चार महीने के बाद एक-एक महीने के चार अंकों को और साल के बाद चार-चार महीने के तीन अंकों को आपस में जोड़कर इकट्ठा करे। इसी प्रकार सभी हिसाब साफ रखने चाहिए।

पण्याध्यक्ष के कार्य

आचार्य कौटिल्य ने बिक्री के योग्य राजद्रव्य को पण्य कहा है, उसके क्रय-विक्रय हेतु, जो पुरुष नियुक्त हो उसे पण्याध्यक्ष कहा है।

पण्याध्यक्षः स्थलजलजानां नानाविधानां पण्यानां स्थलपथवारिपथोपयातानां सारफल्वर्धान्तरं प्रियाप्रियतां च विद्यात्।।

तथा विक्षेपसंक्षेपक्रयविक्रयप्रयोगकालान्।। (अर्थशास्त्र, 2/16/34/1-2)

पण्याध्यक्ष को संबोधित करते हुए आचार्य कौटिल्य ने कहा है कि वह स्थल और जल में उत्पन्न होने वाले,

स्थल मार्ग तथा जलमार्ग से आए हुए नाना प्रकार के पण्यों के सार तथा फल्गु मूल्य के तारतम्य को और उनकी लोकप्रियता तथा अप्रियता को अच्छी तरह जाने (सार और फल्गु से तात्पर्य बहुमूल्य और अल्पमूल्य वस्तुओं से है, उनके मूल्य की न्यूनाधिकता के क्रम को अवश्य जाने। जिस पदार्थ का विक्रय अति शीघ्र हो जाए, वह लोकप्रिय और दूसरा अमिय समझना चाहिए)। इसी तरह पण्याध्यक्ष को यह भी आवश्यक है कि वह विक्षेप (संक्षिप्त द्रव्य का विस्तार), संक्षेप (विस्तृत द्रव्य का संक्षेप), क्रय (पण्य का संग्रह-खरीदना) और विक्रय (संगृहीत पण्य का व्यय कर देना- अर्थात बेच देना) के उचित प्रयोग काल को अच्छी तरह पहचाने।

शैक्षिक निहितार्थ

अर्थशास्त्र में विद्यमान वाणिज्यिक संप्रत्यय, वर्तमान में संचालित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) की पाठ्यपुस्तक लेखाशास्त्र एवं वित्तीय लेखांकन में देखने को मिलते हैं, जबकि यह सभी साक्ष्य माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश के वाणिज्य की 9वीं की पाठ्यपुस्तक वाणिज्य (हिंदी संस्करण) 2021 एवं कक्षा 10वीं की पाठ्यपुस्तक (हिंदी संस्करण) 2021 के साथ कक्षा 11वीं के बहीखाता तथा लेखाशास्त्र 2020 में भी देखने को मिलते हैं। अर्थशास्त्र में वर्णित वाणिज्य के सिद्धांत वर्तमान में भले ही पाठ्यक्रम का अंग न हो, लेकिन कुछ-कुछ सिद्धांत आज भी वैसे ही उपयोग में लाए जा रहे हैं तथा उनकी प्रासंगिकता बनी हुई है और वह पाठ्यक्रम का अंग भी हैं- जैसे समाहर्त्ता द्वारा संग्रहीत राजस्व में उत्पादन शुल्क, सीमा शुल्क, गृह कर, कृषि खानों से अधिकार शुल्क, सड़कों और समुद्री मार्गों पर चुंगी इत्यादि वाणिज्य के पाठ्यक्रम में देखने को मिलते हैं। वहीं लेखांकन के संदर्भ में भी अर्थशास्त्र में विस्तृत साक्ष्य उपलब्ध हैं, जैसे- दैनिक लेखा, पाक्षिक लेखा, मासिक लेखा और वार्षिक लेखा के नियम अक्षपटल के अंतर्गत उपलब्ध हैं, जिसे वर्तमान में वाणिज्य के सभी स्तर के पाठ्यक्रम में रोजनामचा, तलपट, लाभ-हानि खाता तथा अंतिम खाता के रूप लेखांकन किया जाता है। साथ ही अलग-अलग मदों का लेखांकन, जैसे आय खाता, व्यय खाता, शेष, बचत इत्यादि का लेखांकन और बहियों के रूप में भी लेखा करना शामिल है तथा कार्य दिवसों की गणना, वेतन, ऋण, ऋण पर ब्याज, विभिन्न पक्षों पर अलग-अलग ब्याज की दरों का विस्तृत विवरण भी प्राप्त होता है।

उक्त के अध्ययन से प्राप्त अंतर्दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जब शिक्षक अध्यापन के दौरान उक्त वाणिज्यिक संप्रत्ययों की चर्चा करें तो उनको चाहिए कि विद्यार्थियों का ध्यान वास्तविक स्रोत की ओर अवश्य आकृष्ट कराएं, जिससे विद्यार्थियों के समक्ष वर्तमान पाठ्यक्रम में, जो संप्रत्यय शामिल हैं, उनका प्रारंभ कैसे हुआ, प्रारंभ में उनका स्वरूप किस प्रकार का था तथा वह किस तरह से परिष्कृत होते हुए वर्तमान स्वरूप में आया। साथ ही संप्रत्ययों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने में भी इन सभी संप्रत्ययों का सीधे उपयोग किया जा सकता है, जिससे विद्यार्थियों में समालोचनात्मक चिंतन की क्षमता का विकास हो सकेगा तथा विद्यार्थियों में अपने गौरवशाली ऐतिहासिक परंपरा और प्राचीन भारतीय ग्रंथों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का प्रस्फुटन हो सकेगा। इससे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के लक्ष्यों की पूर्ति में सहायता मिलेगी तथा शिक्षा के भारतीयकरण के प्रयासों को भी बल मिलेगा।

निष्कर्ष

उक्त वाक्यांशों के विस्तृत अध्ययन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वाणिज्य संबंधी अनेकानेक अवधारणाएं निहित हैं। वाणिज्य एवं व्यापार से संबंधित जितनी अवधारणाओं की चर्चा यहां पर की गई है, उसके साथ ही साथ और भी अनेक अवधारणाएं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विद्यमान हैं, जैसे, मांग, आपूर्ति, मूल्य, उपभोक्ता संरक्षण, कराधान, कृषि कराधान, घरेलू व्यापार, विदेश व्यापार, उद्योग, सेवाएं, अर्थव्यवस्था,

आर्थिक विकास, लेखा, लेखापरीक्षा कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी, खानों से रॉयल्टी, उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क, राजस्व संग्रह, दंड, समुद्री मार्ग, धन, वन उपज, जमाखोरी, कृत्रिम कमी, वजन और माप, ऋण, ब्याज की दर, करों के प्रकार, बचत, राजा द्वारा विभागों का विभाजन, सार्वजनिक व्यय, दान आदि। अतः यह कहा जा सकता है कि आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में वाणिज्यिक संप्रत्ययों की विस्तृत विवेचना समकालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की थी, परन्तु वर्तमान परिदृश्य में देखें तो स्पष्ट होता है कि माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद के साथ-साथ उच्चतर शिक्षा के वाणिज्य पाठ्यक्रम में अधिकांश संप्रत्ययों का समावेश कमोबेश उसी रूप में देखने को मिलता है। अर्थशास्त्र में दिए गए समस्त प्रावधानों का केंद्र मानव कल्याण की भावना है, जिसमें राज्य के पोषण के साथ प्रजा का हित निहित हो, इस प्रकार की अवधारणा को आचार्य कौटिल्य ने प्रतिपादित किया है। इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माताओं को प्राचीन ग्रंथों में निहित संप्रत्ययों को पाठ्क्रम का अंग बनाना चाहिए तथा शिक्षण के दौरान उन पर विस्तृत चर्चा भी होनी चाहिए, तभी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में निहित भावनाओं को बल मिल सकेगा तथा देश का युवा विरासत पर गर्व करते हुए भविष्य को परिष्कृत कर सकेगा।

संदर्भ सूची

शास्त्री, उदयवीर (अनुवादक) (वि.संवत् 1982). *कौटलीय अर्थशास्त्र.* लाहौर: मेहरचंद्र लक्ष्मणदास संस्कृत पुस्तकालय

गुप्त, बी. एल. (2014). *हिन्दू अर्थ-चिंतन.* भारती प्रकाशन

जैन, के. सी. एस. (2013). *वाणिज्य शिक्षण.* राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी

तिवारी, एस. के. एण्ड शास्त्री, जी. पी. (2003). *कौटिलीय अर्थशास्त्रम्.* चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन

मनियप्पन, बी. एवं दास, एम. (2008). कॉर्पोरेट शोसल रिसपॉन्सिबिलिटीः ए फिलोसोफिकल एप्रोच एन एन्सियंट इण्डियन प्रस्पेक्टिव. *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ इण्डियन कल्चर एण्ड बिजिनेस मैनेजमेंट, 1*(4), 480-420. http://www.researchgate.net

शास्त्री, यू. (1925). *कौटिल्य अर्थशास्त्र.* डिजीटल लाइब्रेरी, जयज्ञान https://ia904708.us.archive.org/31/items/in.ernet.dli.2015.311986/2015.311986.Kowtliya-Arthashastra.pdf

सुन्दर, एस. (2008). ट्रेड, एकाउन्टिंग एण्ड गवर्नेंस इन कौटिल्याज अर्थशास्त्र http://faculty.som.yale.edu

सिहाग, बी. एस. (2009). कौटिल्यः ए फ़ॉरनर् ऑफ न्यू क्लाशिकल प्राइस थ्योरी *ह्यूमनॉमिक्स, 25*(1), 37-54. http://www.researchgate.net

सिहाग, बी. एस. (2009). कौटिल्य ऑन प्रिन्सिपल्स ऑफ टैक्सेसन *ह्यूमनॉमिक्स, 25*(1), 55-67. http://dx.doi.org/10.1108/08288660910934772

सिहाग, बी. एस. (2009). कौटिल्य ऑन मोरल, मार्केट एण्ड गवर्नमेंट फेल्यूर्स *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दू स्टडीज, 13*(1), 83-102. https://www.jstor.org/stable/40343807

सिहाग, बी. एस. (2009). कौटिल्य ऑन लॉ, इकोनामिक्स एण्ड एथिक्स *ह्यूमनॉमिक्स, 25*(1), 75-94. http://dx.doi.org/10.1108/08288660910934790

सिहाग, बी. एस. (2009). कौटिल्य ऑन इण्टरनेशनल ट्रेड पॉलिसीज *ह्यूमनॉमिक्स, 25*(1), 68-74. http://dx.doi.org/10.1108/08288660910934781

सिहाग, बी. एस. (2008). कौटिल्य ऑन पब्लिक गूड्स एण्ड टैक्सेसन *हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी, 37*(4), 723-753. http://citesearx.ist.psu.edu.

सिहाग, बी. एस. (2004). कौटिल्य ऑन द स्कोप एण्ड मैथेडोलॉजी ऑफ एकाउन्टिंग, ऑर्गेनाइजेशनल डिजाइन एण्ड द रोल ऑफ एथिक्स इन एनसिएंट इण्डिया द *एकाउन्टिंग हिस्टोरियन जर्नल्स, 31*(2), 125-148. https://www.jstor.org/stable/40698303

वालदौर, सी., जहका, डब्ल्यू. जे. एण्ड पाल, एस. (1996). कौटिल्यास अर्थशास्त्रः ए नेगलेक्टेड प्रेसर टू क्लाशिकल इकोनॉमिक्स. *इण्डियन इकोनॉमिक रिव्यू, 31*(1), 101-108. https://www.jstor.org/stable/29793735

औपनिवेशिक काल में भारतीय शिक्षा: तथ्य, भ्रम और इतिहास

प्रो. गौरव सिंह
आचार्य, केंद्रीय शैक्षणिक प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय शिक्षा अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली
gaurinedu@gmail.com

सारांश

ब्रिटिश भारत में शिक्षा का वर्तमान स्वरूप कैसे निर्मित हुआ? भले ही अधिकांश पुस्तकें इसके लिए केवल मैकाले को जिम्मेदार ठहराती हों परन्तु इस चर्चा में मैकाले से पूर्व व बाद के ब्रिटिश अधिकारियों और विशेष रूप से उन भारतीयों का जिक्र छूट जाता है, जो इस कार्य के लिए सहयोगी व अग्रदूत बने। बी. डी. बासु (1867) ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन इन इंडिया अंडर द रूल ऑफ़ द ईस्ट इंडिया कंपनी" में लिखा है कि "हमें इस बात से आँख नहीं चुराना चाहिए भारत में पश्चिमी शिक्षा को प्रस्तुत करने के अग्रदूत भारतीय ही थे"। ट्रेवलिन की पुस्तक के वो शब्द भी भूलने योग्य नहीं हैं, जो कहते हैं कि "हमारा कार्य उन्हें (भारतीयों को) शिक्षित करना नहीं वरन् जो उन्होंने सीखा है, वो भुलाना है (Our duty is not to teach, but to unteach them...)"। मैकाले ने यह स्पष्ट तौर स्वीकार किया है कि वे भारत में अपनी इच्छा से नहीं वरन् वहाँ के लोगों के अनुरोध पर जा रहे हैं। ऐसे में हमें उन दस्तावेजों का विश्लेषण करने की आवश्यकता है, जो मैकाले के काल के आस-पास भारत की शिक्षा व्यवस्था को उजागर करते हैं। यह आलेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ पत्रों और अभिलेखों के पुनरावलोकन के आधार पर ब्रिटिशकालीन भारत में शिक्षा की स्थिति के निरपेक्ष चित्रण का एक प्रयास है।

मुख्य शब्द: *मैकाले, भारतीय शिक्षा, भारतीय शिक्षा के संदर्भ में भ्रम*

आधुनिक शिक्षा का अभ्युदय

काल गणना की पाश्चात्य परंपरा के अनुसार यदि मानें तो भारत में आधुनिक युग का आरम्भ उस काल से लगाया जाता है, जब भारत में मुग़ल काल पतन की ओर था और पश्चिमी मिशनरियों का भारत में आगमन प्रारम्भ हो चुका था। ईस्ट इंडिया कंपनी अपने पांव पसारना प्रारम्भ कर चुकी थी और भारतीय व्यवस्था को समझने के प्रयास होने लगे थे। उस दौर के भारत में समाज आधारित शिक्षा व्यवस्था थी और पाठशालाएं, गुरुकुल और मदरसों की एक मजबूत शिक्षण व्यवस्था हर जगह विद्यमान थी। यह कितनी सघन व्यवस्था थी, इसका परिचय 'धर्मपाल जी' की पुस्तक "The Beautiful Tree" में दिया गया है, जो 19वीं शताब्दी के कुछ सर्वेक्षणों पर आधारित है।

"भारतीय शिक्षा व्यवस्था कैसी थी, इसका परिचय 1820-1840 के आस-पास किए गए सर्वेक्षणों में मिलता है। विलियम एडम ने अपने सर्वेक्षण में लिखा है कि 1830-38 के वर्षों में बिहार और बंगाल के गाँवों में लगभग 1,00,000 पाठशालाएं थीं, मद्रास के लिए ऐसा ही थॉमस मुनरो ने लिखा है कि "यहाँ प्रत्येक गाँव में एक पाठशाला थी।" मुंबई प्रेसिडेंसी के लिए जी. एल. प्रेंडरगास्ट ने लिखा है, "शायद कि कोई ऐसा गाँव हो ,जहाँ कम से कम एक पाठशाला न हो, कुछ बड़े गाँवों में तो एक से अधिक पाठशालाएं थीं" लगभग ऐसे ही विचार पंजाब प्रान्त के लिए डॉ. डब्ल्यू. जी. लिट्नर के थे।"

उपर्युक्त उद्धरण एक बात स्पष्ट करता है कि जिस दौर में तथाकथित आधुनिकता के पैरोकार विद्यालय जैसी संस्था का औचित्य अपने देशों में तलाश रहे थे, तब भारत की व्यवस्था उनकी सोच से बहुत आगे थी। हाँ, इसमें ज्ञान, विद्या या तालीम को महत्त्व दिया जा रहा था, न कि धर्म-प्रचार और बाजारवाद को, जो आधुनिक शिक्षा के अभ्युदय के मूल आधार बने।

18वीं शताब्दी में शिक्षा का प्रसार

18वीं सदी के भारत में शिक्षा को प्रभावित करने के, जो संगठित प्रयास लगभग 60-70 वर्षों तक कम्पनी के शासनकाल में हुए, उनपर बहुत कम प्रकाश डाला जाता है। शिक्षाशास्त्र की पुस्तकों में भी ज्यादा से ज्यादा 1813 के महाधिकार-पत्र तक की बात हो पाती है। आदिकाल से भारत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में गुरु और गुरुकुल के महत्व को हमारे सभी ग्रन्थों में रेखांकित किया गया है। शिक्षा भारत में कोई आधुनिक युग की खोज नहीं है और न ही संगठित शिक्षण संस्थाएं भारत में कोई नवीन संरचना है। जब विश्व के बहुत से क्षेत्रों में विद्यालय जैसी संस्था पर विचार और उसका अभ्युदय हो रहा था, तब भारत के प्रत्येक ग्राम में ऐसी संस्थाओं की सुसंगठित व्यवस्था विद्यमान थी।

प्रख्यात इतिहासकार सी. ए. बायली (1996) लिखते हैं कि "अपने स्थापना के दौर में ब्रिटिश राज को तात्कालिक राजनैतिक संस्थानों, सामाजिक रिवाजों और सांस्कृतिक चिह्नों के कुटिल रूपांतरण और कुशल हथकंडों (चालबाजी) के रूप में पहचाना जा सकता है (The British raj was characterised in its founding period by shrewd adaptation to, and skilful manipulation of, existing political institutions, social customs, and cultural symbols.)"

प्राच्यवाद (Orientalism) की अवधारणा

भारत की शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी हस्तक्षेप के संकेत सबसे पहले वारेन हेस्टिंग्स (1773-1785) के दौर में मिलते हैं, जब उन्होंने 'प्राच्यवाद (orientalism)' को बंगाल की सरकार का एक आधार बनाते हुए चतुराईपूर्वक स्वयं को भारतीय प्रशासकों, नियमों, मान्यताओं और कार्य-व्यवहार के संरक्षक के रूप में स्थापित किया। हेस्टिंग्स ने बहुत से शैक्षणिक कार्यों, जैसे ऑक्सफ़ोर्ड में फारसी प्रोफेसर की नियुक्ति, अरबी और संस्कृत कानूनी पुस्तकों का फारसी और अंग्रेजी में अनुवाद, बंगाली व्याकरण का निर्माण, आदि को प्रोत्साहित किया परन्तु उसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा की उन्नति नहीं वरन् तात्कालिक परिस्थितियों में कुछ लोगों को खुश रखकर अपने राज्य का विस्तार करना था।

यह भी सर्वविदित तथ्य है कि अंग्रेजों ने कुछ स्थानों पर संस्कृत और मुस्लिम शिक्षा पद्धतियों की तुलना करते हुए जानबूझ कर मुस्लिम शिक्षा पद्धति को यूरोपियन के ज्यादा करीब बताया गया और अलगाव के बीज बोए गए। वर्ष 1780 में जब लगभग 8000 मुस्लिमों ने वारेन हेस्टिंग्स से इस्लामी कानून को समझने के लिए एक मदरसे की स्थापना करने की मांग की तो इसके पीछे के कारण बड़े रोचक थे। यद्यपि वारेन हेस्टिंग्स ने अपने मिनट्स (1781) में लिखा है कि कलकत्ता मदरसा की स्थापना का खर्च काफी दिनों तक हेस्टिंग्स ने अपने आप दिया और इसका कारण यह बताया कि सामान्य जन में यह अवधारणा बनती जा रही है कि नई नीति का मूल उद्देश्य लोगों का ईसाईकरण करना है, जो इस देश में हमारी सम्भावनाओं को समाप्त कर देगी। इसलिए हमें इन्हें बनाए रखना चाहिए और कंपनी को इसका खर्च भी देना चाहिए। वर्ष 1780 के आसपास कलकत्ता मदरसा और कुछ अन्य मदरसों की स्थापना के पीछे यही कारण था। इस प्रकार समाज आधारित व्यवस्था को राज्यपोषित बनाने का कार्य आरम्भ हुआ।

मुस्लिमों के इस कदम के तुरंत बाद संस्कृत कॉलेज हेतु कलकत्ता के 76 विद्यार्थियों ने भी एक याचिका वारेन हेस्टिंग्स के समक्ष रखी, जिसमें उन्होंने कहा कि भारत की सच्ची प्राचीन विरासत का प्रतिनिधित्व संस्कृत ही करती है और भारतीय सांस्कृतिक जीवन में इसका बहुत महत्व है।

वारेन हेस्टिंग्स को यह समझ आ गया था किस प्रकार अलग-अलग समूहों को प्रलोभन और तुष्टिकरण से अपने साथ रखा जा सकता है या उन्हें आपस में लड़ाया जा सकता है। यद्यपि माना ये भी जाता है कि हेस्टिंग्स को यह उम्मीद थी कि मदरसा की स्थापना से भारतीय मुस्लिमों को साथ जोड़ने से ब्रिटिश राज के तीव्र प्रसार में मदद मिलेगी।

जोनाथन डंकन (1792) भी वारेन हेस्टिंग्स को सलाह दे चुके थे कि दुनिया की सबसे श्रेष्ठ विरासत को सम्भालने के लिए थोड़ा खर्च करना चाहिए। जोनाथन डंकन ने यही प्रयास दोहराते हुए उत्तर में हिन्दुओं को खुश करने के लिए बनारस के संस्कृत कॉलेज की स्थापना में मदद की। यद्यपि डंकन ने इसका कारण स्पष्ट करते हुए कहा है कि ऐसा करने से हमें अपने चिकित्सकों और न्यायाधीशों के लिए आसानी से सहायक मिल जाएँगे।

डंकन ने लॉर्ड कार्नवालिस को 01 जनवरी, 1792 को लिखे अपने पत्र में बनारस के संस्कृत कॉलेज की स्थापना से जुड़े दो लाभ बताए। एक तो भारतीय धर्म, नियमों, कला और विज्ञान को समझने में हमें मदद करने वाले लोग तैयार होंगे और दूसरे एक राज्यपोषित संस्था जन्म लेगी, जो हमें (यूरोपीय) व हमारे न्यायाधीशों को मदद करेगी।

ग्रांट के विचार उतने उदारवादी नहीं थे। इसका कारण यह था कि वह उस विचारधारा का समर्थक था, जो राज्य विस्तार के साथ धर्म-प्रचार और धर्मान्तरण को जोड़े रखना चाहता था और ईसाइयत को सर्वोपरि सिद्ध करने की लालसा उसमें भरी हुई थी। ग्रांट की यह बड़ी सफलता थी कि उसने अवलोकनों को न केवल संसद में छपवाया, साथ ही कंपनी चार्टर में ये शर्त जुड़वा दी कि अब मिशनरियाँ ब्रिटिश भारत में कार्य करने के लिए स्वतंत्र होंगी।

18वीं सदी के शिक्षा के प्रयासों को यदि सारांश रूप में देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि वारेन हास्टिंग्स, जोनाथन डंकन, चार्ल्स ग्रांट ने भारत में शिक्षा को राज्य प्रसार या धर्म प्रसार के उपकरण के रूप में प्रयोग किया, जिसका परिणाम हुआ कि शिक्षा समाज से राज्य आश्रित होने लगी और इसके लिए उन्होंने समाज के दोनों वर्गों (हिंदू और मुस्लिम) का प्रयोग किया।

19वीं शताब्दी के प्रारंभिक प्रयास (मैकाले से पूर्व)

अंग्रेज विद्यार्थियों को कम्पनी की भारतीय शासन व्यवस्था में मदद के लिए तैयार करने के लिए लार्ड वेल्लेस्ली ने कलकत्ता में सन 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। यह वही संस्थान था, जहाँ से अगले दो दशकों में (1800-1820) में H. T. Colebrooke, William Carvey और H. H. Wilson ने अली इब्राहीम और उनसे जुड़े मुंशियों की सहायता से तत्कालीन भारतीय व्यवस्था को समझने का प्रयास किया। इसी दौर में एक नए चिंतन ने आकार लेना प्रारंभ किया कि "भारत को हमें बहुत कुछ सिखाना है पर उससे हमें बहुत कम सीखना है (They had much to teach and little to learn from India) ।" Charles Grant के विचारों से इनको आधार मिला, जिसका मानना था कि भारतीय जन-मानस में सुधार के लिए ईसाईयत और पश्चिमी ज्ञान को प्रस्तुत करना आवश्यक कदम होगा। इसी का परिणाम था कि वर्ष 1813 के चार्टर एक्ट में मिशनरीज को ब्रिटिश भारत में काम करने की खुली छूट मिल गई (McCully, English Education, पृ. 11-16)। ज़स्तौपिल और मोइर (1999) लिखते हैं कि "विलियम विल्बेर्फोर्स और चार्ल्स ग्रांट के लिए पश्चिमी शिक्षा का भारत में प्रवेश न केवल अपेक्षित

था वरन् भारत में ईसाईयत के प्रोत्साहन की उनकी योजना का एक अभिन्न अंग था (पृ. 90)।"

यहाँ चार्ल्स ग्रांट ने उदाहरण देकर कहा कि जैसे मुगलों का शासन आने पर सत्ता के निकट रहने की इच्छा वाले हिन्दुओं ने फारसी भाषा सीखी, जो धीरे-धीरे उच्च वर्ग के भारतीयों की भाषा बन गई, उसी तरह अंग्रेजी को भी सरकार की भाषा बना देना चाहिए और हमें अपने 'पूर्ववर्ती मुगलों' के बताए रास्ते पर चलना चाहिए।

यह सर्वविदित तथ्य है कि वर्ष 1813 के एक्ट में हेस्टिंग्स और ग्रांट, दोनों के विचारों को जगह देते हुए दो विरोधाभासी लक्ष्यों को स्थान दिया गया, अर्थात परंपरागत ज्ञान को प्रोत्साहन और पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान का प्रसार।

वर्ष 1813 के एक्ट की धारा 43 में स्पष्ट तौर पर लिखा गया कि प्रत्येक वर्ष एक लाख रुपए का प्रावधान भारतीय परम्परागत साहित्य और ज्ञान के संरक्षण और सुधार के लिए किया जाएगा। साथ ही ब्रिटिश भारत के अधीन विद्यालयों में आधुनिक विज्ञान को भी प्रारम्भ किया जाएगा।

इस एक्ट में विद्यालयों में होने वाली सभी नियुक्तियों को सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया, जो शिक्षा व्यवस्था में राज्य का सीधा हस्तक्षेप था और धीरे-धीरे यह और प्रबल होता गया, जो आज तक चल रहा है।

इसके बाद एक और विचार ने जन्म लिया, जिसे इतिहासकार 'रोपण नीति (policy of engraftment)' का नाम देते हैं। वर्ष 1920 के आसपास इस पर ध्यान दिया जाने लगा कि धीरे-धीरे कैसे संस्कृत और फारसी सीखने वालों को सत्ता के नजदीक आने के अवसर और छात्रवृत्ति, जैसे उपायों से पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की ओर मोड़ा जाए।

जेम्स मिल ने पुणे कॉलेज के परंपरागत संस्कृत आधारित पाठ्यक्रम का खुला विरोध किया, वहीं Mountstuart Elphinstone, जिन्हें मूलतः प्राच्यवादी माना जाता है, उन्होंने भी स्थानीय लोगों को ब्रिटिश शासन में इस्तेमाल करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा की जरूरत महसूस की। 1820 और शुरुआती 1830 के दौरान कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स, जेम्स और जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा लिखे गए संदेशों में, परंपरागत भारतीय तरीके से शिक्षा फैलाने की पहल की आलोचना की जा रही थी, (पृ. 229)। 19वीं सदी के आरम्भ में अंग्रेजों ने यह महसूस करना प्रारंभ कर दिया था कि 'भद्रलोक' अंग्रेजी शिक्षा को अपने सुन्दर भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण मानने लगे हैं।

11 फरवरी, 1823 के राजा राममोहन रॉय ने लॉर्ड एमहर्स्ट को, जो पत्र लिखा वह भारत में शिक्षा व्यवस्था का क्षरण-निमंत्रण कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अपने पत्र में लिखी अँग्रेजी के कारण Treveleyan जैसे लोगों ने उनका उपहास भी उड़ाया ।

राजा राममोहन रॉय का लॉर्ड एमहर्स्ट को पत्र

भारत में अँग्रेजी शिक्षा के अभ्युदय में इस पत्र का बहुत महत्त्व है। उस पत्र के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं, जो यह समझने के लिए पर्याप्त हैं कि कैसे एक पत्र ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था में क्षरण का सूत्रपात किया।

अपने पत्र का प्रारम्भ उन्होंने बहुत ही चापलूसी भरी भाषा से किया और जब भारतीय शिक्षा पद्धति, संस्कृत और फारसी के उत्थान के लिए कुछ धन की व्यवस्था की गई तो राममोहन रॉय ने उसका विरोध करते हुए अपने पत्र में विनती की कि उस धनराशि का सदुपयोग विद्वान यूरोपीय भद्रजनों की नियुक्ति में किया जाए, जो यहाँ आकर

गणित, प्राकृतिक फ़िलासफ़ी, रसायन, जैसे अन्य उपयोगी विज्ञान भारतीयों को उसी कुशलता से पढ़ा सकें, जिस प्रकार उन्होंने पूरे विश्व में किया है।

उन्होंने लिखा कि यदि संस्कृत विद्यालय को बढ़ावा दिया गया तो ये आपके लक्ष्यों को प्राप्त करने में मददगार नहीं होगा क्योंकि संस्कृत विद्यालय बच्चों को केवल कठिन व्याकरण और दार्शनिक चिंतन सिखाते हैं, जो समाज के लिए नितांत अनुपयोगी है। उन्होंने अपने पत्र में संस्कृत और अँग्रेजी व्याकरण की तुलना करने के साथ-साथ वेदान्त, मीमांसा और न्यायशास्त्र के अध्ययन पर भी प्रश्नचिह्न लगाए और इसे 'काल्पनिक ज्ञान (imaginary learning)' कहकर संबोधित किया। उन्होंने लिखा कि ये व्यवस्था इस देश को गहरे अंधकार की ओर ले जाएगी, इसलिए यह धन ऐसे विद्यालयों की स्थापना पर खर्च किया जाए, जिससे यूरोप के शिक्षक नियुक्त हों और वहाँ आवश्यक पुस्तकें, उपकरण और जरूरी समान हो।

यहाँ यह एक विचारणीय प्रश्न है कि क्या वास्तव में भारतीय शिक्षा व्यवस्था इतनी दयनीय थी, जिसका चित्रण राजा राममोहन रॉय ने अपने पत्र में किया था या इस पत्र के माध्यम से वे अपने कुछ तात्कालिक निहित उद्देश्य प्राप्त करना चाहते थे।

जिन पाश्चात्य संस्थानों को आदर्श मानकर आधुनिक काल में पूरी भारतीय शिक्षा व्यवस्था को ही बदल दिया गया, उनकी तत्कालीन स्थिति को रेखांकित करने के लिए आदरणीय धर्मपाल जी की रचना "The Beautiful Tree" में स्पष्ट चित्रण दिया गया है। विलियम एडम्स में 1830-1838 के अपने सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि बंगाल के प्रत्येक जिले में उच्च शिक्षा के लगभग 100 संस्थान थे, आज जब हम इस पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि इतनी विशाल और संगठित शिक्षा व्यवस्था को किस प्रकार सुनियोजित रूप से समाप्त किया गया और मैकाले जनित व्यवस्था ने इसका स्थान ले लिया पर इसके दोषी कुछ भारतीय भी हैं।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था कितनी व्यवस्थित, विस्तृत और व्यापक थी। हमारे लिए शिक्षा मात्र पठन, लेखन और गिनना, तक सीमित नहीं थी, वरन् हमारे लिए शिक्षा व्यक्तित्व निर्माण और चरित्र निर्माण का आधार रही है। भारतीय शिक्षा की अवधारणा, प्रज्ञा, शील और समाधि के विचारों को समाहित करने वाली रही है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में क्षरण कोई अकस्मात घटने वाली घटना नहीं थी, वरन् सुनियोजित रूप से इसके प्रयास किए गए। यदि तत्कालीन इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम पाएंगे कि कैसे 19वीं सदी में प्रारम्भ से ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था में बदलाव प्रारम्भ हुआ।

Charles E. Treveleyan ने 1838 में लिखी अपनी पुस्तक में तत्कालीन परिस्थिति का रोचक चित्रण किया है। अपनी पुस्तक "On the Education of the People of India" में वे लिखते हैं कि "ऑक्सफोर्ड भले ही अरस्तू का भौतिक विज्ञान पढ़ाने में गर्व अनुभव करे परंतु जब मैं बनारस गया तो मैंने देखा कि वहाँ एक प्रोफेसर Ptolemy और Albunazar से उन्नत नक्षत्रविज्ञान पढ़ा रहे थे। वहाँ अधिकांश बच्चे संस्कृत व्याकरण के साथ आनंद ले रहे थे। मैंने देखा कि बहुत से बच्चे सुन्दर फारसी लिख रहे थे और उनके गणित का ज्ञान उच्च स्तर का था।"

अंग्रेजों ने इस काल से ही शिक्षण संस्थाओं को धार्मिक आधार पर अलग-अलग मदद करना प्रारंभ कर दिया

और इसका राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग प्रारम्भ किया। कुछ स्थानों पर संस्कृत और मुस्लिम शिक्षा पद्धतियों की तुलना करते हुए जानबूझ कर मुस्लिम शिक्षा पद्धति को यूरोपियन के ज्यादा करीब बताया गया और अलगाव के बीज बोए गए। जिस दौर में राममोहन रॉय ने पत्र लिखा, उसी समय, 1823 में ही Holt Mackenzie को General Committee of Public Instruction (GCPI) में लाया गया, जिन्होंने पुनः रोपण नीति (Grafting Policy) पर काम करना शुरू किया। इनका साथ दिया विल्सन ने, जिनका उद्देश्य "दक्षिण एशिया के विभिन्न क्षेत्रों के इतिहास का पश्चिमी रीति से लेखन" था। उस समय इस समिति ने राममोहन रॉय के पत्र को महत्त्व नहीं दिया, क्योंकि उनका मानना था कि रॉय का पत्र एक व्यक्ति विशेष की आकांक्षा प्रदर्शित करता है, न कि पूरे हिन्दू समाज की, पर बहुत से सदस्य इस बाद से खुश भी थे कि अब अंग्रेजी शिक्षा के मांग भारतीय भी करने लगे हैं, इससे उनकी आगे की राह आसान हो जाएगी।

जेम्स मिल इस रोपण नीति से खुश नहीं थे, मिल और उनके साथियों के विचारों को सबसे ज्यादा प्रश्रय तब मिला, जब विलियम बेंटिंक गवर्नर-जनरल बने। उनके समय में अलेक्सेंडर डफ़ (1830) भारत आए और उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों को अंग्रेजी की ओर आकर्षित करने के लिए अंग्रेजी भाषा के नए पाठ्यक्रम का निर्माण किया। डफ़ की इसमें सबसे ज्यादा मदद राजा राममोहन रॉय ने की। रॉय ने ही स्कॉटलैंड के चर्च को इस बात के लिए राजी किया कि वो किसी को बंगाल में इंग्लिश स्कूल खोलने के लिए भेजे। दोनों ने मिलाकर 1830 में कलकत्ता के बाहर एक इंग्लिश स्कूल खोला। धीरे-धीरे दोनों ने मिलकर दो और स्कूल खोले, जिसमें रॉय के कुछ मित्रों ने भी मदद की। यद्यपि यह पहला विद्यालय नहीं था, पहला विद्यालय तो 1806 में ही खोला जा चुका था।

1833 एक महत्त्वपूर्ण वर्ष है, जब H. H. wilson के सेवानिवृत्त होने पर बेंटिंक ने चार्ल्स ट्रेवलिन को नियुक्त किया। ट्रेवलिन का डफ़ और ग्रांट की तरह यह स्पष्ट तौर पर मानना था कि "अंग्रेजी भाषा का प्रसार उपमहाद्वीप को नैतिक और बौद्धिक रूप से परिवर्तित कर देगा (Spreading of English language would morally and intellectually transform the subcontinent)।" 1834 में ट्रेवलिन ने कलकत्ता प्रेस में सभी भारतीय लिपियों को रोमन लिपि से प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया। ट्रेवलिन की एक खूबी यह थी कि वह निरंतर बेंटिंक के साथ निजी पत्राचार करता रहता था, जिसके कारण वह उनका विश्वासपात्र था। मैकाले भी ट्रेवलिन के सतत संपर्क में था और उसके विचारों से सहमत भी था। मैकाले ट्रेवलिन से इतना प्रभावित था कि उसे अपने भविष्य के बहनोई के रूप में देखता था। बेंटिंक और ट्रेवलिन बहुत से 'भारतीय भद्रजनों' से निरंतर संपर्क में रहने लगे। 1835 में राधाकांत देव और रासमोय दत्त, बेंटिंक के कहने पर मैकाले के साथ GCPI का हिस्सा बने। मैकाले की 1835 की नीति पर सभी मित्रों, खासकर रॉय के पत्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, क्योंकि मैकाले ने रॉय के 1823 के पत्र में दिए गए दो उदाहरण अच्छी तरह प्रयोग किए। ट्रेवलिन ने अंग्रेजी व्यवस्था के मंतव्य को और स्पष्ट करते हुए लिखा है, "हमारी जिम्मेदारी उन्हें सिखाना नहीं, वरन् सीखा हुआ भुलाना है (*Our duty is not to teach, but to unteach them)" (ट्रेवलिन, 1838, पृ*. 85)।

इस विवेचन से एक बात तो स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षा के अंग्रेजीकरण में जहाँ ग्रांट, ट्रेवलिन और मैकाले ने सफल प्रयास किए, वहीं उनके इन प्रयासों को एक ठोस आधार कई भारतीयों ने प्रदान किया। यह मान लिया जाना चाहिए कि यदि भारतीयों ने उन्हें एक ठोस आधार नहीं दिया होता तो शायद वे प्रचलित व्यवस्था पर करारी चोट नहीं कर पाते।

मैकाले की शिक्षा नीति का आधार

मैकाले की शिक्षा नीति को जानने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह जानना है कि वे कौन से कारण थे, जिन्होंने मैकाले को भारत आने पर विवश किया और उसने ऐसी शिक्षा नीति प्रस्तुत की।

3 जून, 1814 के कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स पब्लिक डिपार्टमेंट डिस्पैच के अनुच्छेद 12 में ये संशय प्रस्तुत किया गया है कि 1813 के चार्टर एक्ट में दो विरोधाभासी योजनाएँ प्रस्तुत की गई थीं। इसके अनुच्छेद 22 में भारतीय परंपरागत ज्ञान की बहुत प्रशंसा की गई है। इसमें लिखा है *"संस्कृत भाषा में बहुत से उत्तम कोटि के नीति तंत्रों का जिक्र है। लोगों के प्रत्येक वर्ग के लिए नियमों का संग्रह है, इनका अध्ययन हमारे लिए बहुत उपयोगी है। उसमें भारतीय आयुर्वेद, पादप शास्त्र और औषधियों के गुणों की जानकारी हमारे (पश्चिमी) चिकित्सा तंत्र के लिए उपयोगी हो सकता है। उनमें खगोल शास्त्र और गणित, जिसमें रेखागणित और ज्यामिति सम्मिलित है, का अकूत खज़ाना है, जो यूरोपीय विज्ञान को नयी रौशनी देगा।"*

ऐसे बहुत से उदाहरण उस समय के दस्तावेजों और पुस्तकों में मिलते हैं, जो भारतीय ज्ञान परम्परा को तत्कालीन यूरोपियन शिक्षा से उन्नत और श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। धर्मपाल जी की 'द ब्यूटीफुल ट्री' और बी. डी. बासु की पुस्तक भी इसी ओर इशारा करती है। बासु भी लिखते हैं, *"पूर्व-ब्रिटिश काल में भारत एक अनपढ़ देश नहीं था, पश्चिम के कई ईसाई देशों की तुलना में इस भूमि पर शिक्षा अत्यंत उन्नत थी।"* तत्कालीन परिस्थितियाँ इस ओर सोचने पर विवश करती हैं कि शायद मैकाले काफी हद तक चार्ल्स ग्रांट, बिल्वफोर्स, जैसे धर्म प्रचारकों से और कुछ हद तक राममोहन राय, जैसे भारतीयों की मांग से सहमत था और अंग्रेजी राज्य का भविष्य पश्चिमी शिक्षा-व्यवस्था में ही देखता था। उसके भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रति दुर्भावनापूर्ण विचार किसी से छुपे नहीं हैं।

भले ही लार्ड एमहर्स्ट ने राममोहन रॉय के पत्र को तत्काल महत्त्व नहीं दिया, पर जनरल कमेटी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन का 18 अगस्त, 1824 को लिखा पत्र यह स्पष्ट करता है कि उस समय बहुत से सदस्य उन निर्णयों से सहमत नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि बनारस में हिन्दू कॉलेज और कलकत्ता में मुस्लिम कॉलेज स्थापित करने का निर्णय मूल और तथ्यपरक गलती '(originally and fundamentally erroneous)' थी। इस समिति के अधिकांश सदस्य यह मानते थे कि यूरोपीय साहित्य और विज्ञान को काफी लम्बे समय से नकारा जा रहा है। कम से कम जिन संस्थाओं की स्थापना या वित्तीय मदद सरकार कर रही है, वहां तो अनुदेशन का माध्यम अंग्रेजी कर ही देना चाहिए, जिनमें भारत के प्रभावी वर्ग के बच्चे सामान्य शिक्षा के लिए आते हैं।

उनका मानना था कि अंग्रेजी का थोड़ा ज्ञान उन्हें रोजगार के कुछ अवसर प्रदान करके, यूरोपियन परिवारों में उन्हें काम करने के कुछ अवसर देकर, अपने मालिकों से बातचीत करने का उनका सलीका सिखाकर उपयोगी भूमिका निभाएगा और भारतीय भी यह सब सीखने के लिए तत्पर हो जाएँगे।

हमें जो धन यहाँ खर्च करना है, उसका प्रयोग शिक्षकों को तैयार करने में, पुस्तकें प्रदान करने में और उन लोगों के लिए करना चाहिए, जो अनुवाद और टयूशन के व्यवसाय से जुड़े हैं। जब तक ये सब सुविधाएँ प्रदान नहीं की जाती, उनके परिणामों की बात करना जल्दबाजी होगी। अतः हमें अपने भविष्य के अंग्रेजी भाषा के अनुवादकों और शिक्षकों पर यह खर्च करना चाहिए।

चार्टर एक्ट में लिखी गई बातों के उलट यहाँ कहा गया *कि प्राच्य विद्या पर किया जाने वाला खर्च समय और धन दोनों की बर्बादी है। संस्कृत में लिखा दर्शन अन्य भाषाओं में लिखे दर्शनों के समान ही है, हिन्दुओं का अंकगणित और बीजगणित भी वही परिणाम देता है, जो यूरोप का, मदरसों में पढ़ाए जाने वाले गणितीय विज्ञान वैसे ही हैं, जैसे यूक्लिड के, इसलिए इस सब पर हो रहा खर्च 'waste of money' है। यदि वहां की भाषा में कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज हैं तो उन्हें यूरोपीय विद्वानों द्वारा अनुवादित करा लेना चाहिए। इसके बाद वहाँ बचा क्या? मात्र पद्य और मात्र पद्य के विकास के लिए कॉलेज खोलना कोई समझदारी नहीं है।*

उपर्युक्त दृष्टान्त कुछ बातें बहुत स्पष्ट रूप से इंगित करता है। एक तो अधिकांश सदस्य मदरसा और संस्कृत कॉलेज खोले जाने से खुश नहीं थे, दूसरे वे शिक्षा में ऐसी व्यवस्थाओं के पक्षधर थे, जो आज की बाजारवादी शिक्षा की आधारशिला बनीं, चाहे पुस्तकों पर निर्भरता हो या टयूशन का बढ़ता प्रचलन।

इसके बाद जॉन स्टुअर्ट मिल (1830) ने मद्रास सरकार के गाँव में स्थानीय पाठ्यपुस्तकों और शिक्षक-प्रशिक्षण द्वारा गुणवत्ता सुधार के उपायों का विरोध किया। इन्होंने लिखा कि "मद्रास का वास्तविक शैक्षिक विकास गाँवों के स्कूलों से नहीं, वरन् अधिक विकसित शिक्षा जो अंग्रेजी भाषा में दी जाएगी, उससे होगा। उच्च सामाजिक वर्गों में (जो परंपरागत सामुदायिक नेतृत्वकर्त्ता हैं) विशेष रूप से अंग्रेजी, पश्चिमी साहित्य और विज्ञान पढ़ाया जाना चाहिए।" मैकाले उस समय ये सब देख, पढ़ और सुन रहा था और उसके शिक्षा सम्बन्धी विचार अपना स्वरूप लेने लगे थे।

21 जनवरी, 1835 को जे.सी.सी. सदरलैंड ने भी भारत सरकार के तत्कालीन सचिव को लिखे पत्र में आगरा कॉलेज में संस्कृत और अरबी को दी जाने वाली सहायता को वापस लेकर सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान को स्थापित करने की वकालत की। उसने लिखा कि "इंग्लैंड का भारत की ओर एक प्रमुख दायित्व यह है कि भारतीय लोगों के मस्तिष्क को सुधारा जाए और चरित्र को उन्नत किया जाए (पैरा 15)।"

22 जनवरी, 1835 के लिखे एक अन्य पत्र में सदरलैंड ने सबसे पहले भारत के शिक्षित और प्रभावी वर्ग का विश्वास जीतने की आवश्यकता बताई और सीमित संसाधनों को प्राथमिक शिक्षा की बजाय उच्च शिक्षा पर खर्च करने का सुझाव दिया।

यदि राममोहन रॉय तथा जनरल कमेटी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के पत्रों, जॉन स्टुअर्ट मिल की टिप्पणियों और सदरलैंड के दोनों पत्रों व अन्य तात्कालिक परिस्थितियों का आंकलन करें तो ये अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि मैकाले की नीति को आधार कैसे मिला और उन्होंने क्यों कहा कि मैं स्वयं भारत नहीं जा रहा हूँ, भारतीयों की मांग पर और आवश्यकता होने के कारण मैं वहां जा रहा हूँ।

मैकाले की शिक्षा नीति

02 फरवरी, 1835 के मैकाले मिनट्स वह ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसने भारत में शिक्षा व्यवस्था पर एक ऐसी चोट की, जिससे यह देश आज तक उबर नहीं पाया। मैकाले ने प्राच्यवादियों और आंग्लवादियों के बीच 1813 से चले आ रहे विवाद को सुलझाने का एक ऐसा रास्ता सुझाया, जो उसके बाद इस देश में शिक्षा का एकमात्र मार्ग बनकर रह गया। मैकाले के प्रभाव को रेखांकित करते हुए राव (2020) लिखती हैं कि टी. बी. मैकॉले का उपनिवेशीय शिक्षा नीति का प्रतीक के रूप में प्रभाव दशकों से भारत में शैक्षणिक चर्चा का विषय रहा है। लगभग 200 वर्षों के

उपनिवेशीय शिक्षा नीति के प्रभाव को भारत में मैकॉले की तीन और आधे साल की उपस्थिति ने बहुत हद तक निर्धारित किया। उन्होंने लगभग 42 शिक्षा मिनट लिखे, लेकिन उनमें से एक इतना प्रभावशाली रहा कि इसे उस समय की पूरी शिक्षा विमर्श को समझाने के लिए उपयोग किया गया।

मैकाले ने मूलतः 1813 के चार्टर एक्ट के शब्दों की व्याख्या प्रस्तुत की। उसने कहा कि इसमें किसी भाषा विशेष या विज्ञान की बात नहीं की गई है। रखी गई धनराशि का उद्देश्य भारतीयों का शैक्षिक उत्थान है। एक 'शिक्षित स्थानीय' क्या वो नहीं है, जिसे मिल्टन की कविताएँ, लॉक का दर्शन और न्यूटन का भौतिकशास्त्र आता हो। एक लाख रुपए केवल भारत के साहित्य के संरक्षण के लिए नहीं रखे गए। ये गवर्नर जनरल की इच्छा से होने चाहिए। मुझे आजतक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिसने पूरे भारत और अरब के स्थानीय साहित्य को एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी से अधिक मूल्यवान पाया हो। हमें ऐसे लोगों को तैयार करना है, जो केवल रंगरूप में भारतीय हों, परन्तु रुचि, चिंतन, नैतिकता और बुद्धि में अंग्रेज हों। और ऐसा करने का माध्यम उनकी देशज भाषा तो हो नहीं सकती, वो केवल अंग्रेजी ही हो सकती है। अंग्रेजी शासक वर्ग की भाषा है और भारतीय अभिजात्य वर्ग की भी, भविष्य में यही व्यापार की भाषा भी होगी, अतः हमें यह धनराशि केवल इसके लिए ही खर्च करनी चाहिए।

मैकाले के बताए मार्ग पर चलकर तत्कालीन शिक्षण संस्थाएँ (जो मुख्यतः कलकत्ता, बनारस, आगरा, पंजाब और मुंबई में थीं) अंग्रेजी भाषा और साहित्य को प्रसारित करने लगीं और भारत का ऐसा वर्ग, जो खुद को सत्ता के नजदीक देखना चाहता था, इसका प्रथम लाभार्थी बना। मैकाले के इस प्रस्तुतिकरण के बाद एच. टी. प्रिन्सेप, जे. जे. सदरलैंड और एच.एच. विल्सन ने मैकाले के विचारों की भिन्न-भिन्न प्रकार से विवेचना की। एच.एच. विल्सन के प्राच्यवादियों के समर्थन में लिखे पत्र का कड़ा प्रति उत्तर चार्ल्स ट्रैवलिन ने 1838 में लिखी अपनी पुस्तक में दिया। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार में इस पुस्तक का अप्रतिम योगदान है।

बासु (1874) ने मैकाले के मंतव्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उसका मुख्य उद्देश्य यह दिखाना था कि पश्चिमी शिक्षा ने किस प्रकार एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया, जिसने राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व किया। हालांकि, नई शिक्षा का प्रभाव कहीं अधिक गहरा, सूक्ष्म और जटिल था। शिक्षा के विकास की भिन्न दरों ने राजनीतिक विकास को न केवल प्रभावित किया, बल्कि भारतीय समाज में तनाव भी उत्पन्न किया। यद्यपि अंग्रेजी-शिक्षित भारतीय कई क्षेत्रों में अग्रणी थे, यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें मिली शिक्षा ने उनकी दृष्टि को सीमित कर दिया और उनकी लोकप्रियता को संकुचित कर दिया। विदेशी माध्यम से शिक्षित, अपने ही लोगों से अलग-थलग, वे एक व्यापक जन-आंदोलन खड़ा करने में विफल रहे।

चार्ल्स ट्रैवलिन का मैकाले की शिक्षा नीति पर अवलोकन

चार्ल्स ट्रैवलिन ने 1838 में लिखी अपनी पुस्तक 'ऑन द एजुकेशन ऑफ द पीपल ऑफ़ इंडिया' में विल्सन के विचारों का विरोध करते हुए मैकाले के समर्थन में तर्क प्रस्तुत किए, जिन्होंने लार्ड ऑकलैंड को बाद में बहुत प्रभावित किया। ट्रैवलिन ने अंग्रेजी, संस्कृत और फारसी भाषाओं की तुलना करते हुए भारतीयों के लिए अंग्रेजी को ही श्रेष्ठ बताया और बहुत से रास्ते सुझाए, जिससे अंग्रेजी जन-मानस की भाषा बन सके। ट्रैवलिन ने मैकाले के अधोगामी निस्यन्दन सिद्धांत का भी समर्थन किया, जो सबसे पहले उच्च वर्ग को शिक्षा देने का हिमायती था।

उसने लिखा है कि *"भारतीय लोगों में अंग्रेजी सीखने का रुझान बदल रहा है, युवा अपना मानसिक और*

बौद्धिक विकास चाहते हैं, इसके लिए सबसे पहले अंग्रेजी को उच्च शिक्षा की भाषा बनाने का केंद्रीय कार्यक्रम बनाना होगा।"

भारतीय भाषाओं के शब्दों को अंग्रेजी भाषा में सम्मिलित करना होगा और देशज भाषाओं और अंग्रेजी के बीच की दूरी मिटानी होगी। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका उन भारतीयों को निभानी होगी, जो अंग्रेजी शिक्षित समूह है और उच्च और मध्यम वर्ग से आता है। धीरे-धीरे भारतीयों का एक नया 'राष्ट्रीय चरित्र' विकसित होगा, जो ब्रिटिश शासकों को मजबूत होने में सहायता देगा।

उन्होंने देशज भाषाओं को सीखने वालों को वजीफ़ा देने का विरोध किया और कहा कि संस्कृत मृतप्राय भाषा है और अरबी भारत में बोली नहीं जाती, ऐसे में हमें अंग्रेजी सीखने वालों पर ध्यान देना चाहिए। ट्रैवलिन (1838) ने लिखा कि "हमें यूरोपीय ज्ञान को बढ़ावा देना चाहिए, जिसकी जड़ें मजबूत हो चुकी हैं और शाखाएँ बढ़नी शुरू हो गयी हैं, पुराने तंत्र (संस्कृत और अरबी) के तने को बिना छेड़े प्राकृतिक रूप से समाप्त होने देना चाहिए (we ought to cherish European learning, which has already taken deep rot and begun to throw out vigorous shoots, leaving the trunk of the old system to a natural and undisturbed decay)।"

मैकाले के बाद कम्पनी के अधीन भारतीय शिक्षा

वर्ष 1839 में जब लार्ड ऑकलैंड भारत के गवर्नर जनरल बनकर आए तो उनके सामने भी प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का समाधान खोजना बड़ी चुनौती थी, जिसका समाधान उन्होंने बड़ी चतुराई से निकाला। उन्होंने प्राच्यवादियों को संतुष्ट करने के लिए एक चार-सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया, साथ ही अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों को सरकारी नौकरियों में अधिक अवसरों की व्यवस्था की। उच्च शिक्षा के प्रसार में अंग्रेजी माध्यम को बढ़ावा दिया और शिक्षा के अधोगामी निस्यन्दन को पूरी तरह से अपनाया। इसके बाद में भारत में अंग्रेजी आधारित उच्च शिक्षा के प्रसार में तेजी आ गई।

वर्ष 1853 में एक अन्य घोषणापत्र आया, जिसके आधार पर 19 जुलाई, 1854 को एक नई शिक्षा नीति प्रस्तुत की गई, जिसे वुड डिस्पैच कहा जाता है। बहुत से शिक्षाविद इसे *'अंग्रेजी शिक्षा का महाधिकारपत्र'* भी कहते हैं। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि *"हम यह घोषणा करते हैं कि हम उस शिक्षा को भारत में विकसित करेंगे जो यूरोप के कला, साहित्य, विज्ञान, व दर्शन का प्रसार करे।"*

वुड के घोषणापत्र में शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकार का माना गया, प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक क्रमबद्ध विकास को प्रस्तावित किया गया, सहायता-अनुदान प्रणाली को अपनाने का निश्चय किया गया, लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज पर कलकत्ता और बम्बई में विश्वविद्यालय की स्थापना प्रस्तावित की गई। अध्यापकों के प्रशिक्षण और वेतन प्रस्तावित किए गए और यह स्पष्ट रूप से लिखा गया कि जब सरकारी नौकरियों में समान योग्यता के युवक आएं तो ऐसे युवकों को वरीयता दी जाए, जिसने अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त की हो। आज भी यही व्यवस्था हर ओर दिखाई देती है, अंग्रेजी को बुद्धिजीविता का दूसरा पैमाना मान लिया गया है। इसके बाद वर्ष 1857 का स्वतंत्रता संग्राम हुआ और उसके बाद भारत की सत्ता कंपनी से छिनकर सीधे ब्रिटेन की महारानी के अधीन आ गई पर शिक्षा के सम्बन्ध में न तो विचार बदले और न प्रक्रिया।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि मैकाले ने जो वर्ष 1835 में किया, उसके लिए संगठित प्रयास वर्ष 1773 से प्रारंभ हो गए थे, जो पहले प्रलोभन पर आधारित थे, फिर जरूरत पर और 1835 आते-आते वो बाध्यकारी हो गए। अंग्रेजों ने लगभग 60 वर्षों तक, जो प्रयास किए वो 1835 में फलीभूत हुए और उनका दंश हम आज तक झेल रहे हैं। महात्मा गांधी ने मैकाले की नीति के भारतीय शिक्षा पर प्रभाव को स्पष्ट रूप से पहचानते हुए 20 अक्तूबर, 1931 को लंदन में रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स को दिए एक लंबे भाषण में तर्क दिया कि "*भारत में साक्षरता पिछले 50 से 100 वर्षों में घट गई है, और इसकी जिम्मेदार ब्रिटिश शिक्षा नीति है*"। उन्होंने 18 सितंबर, 1937 को हरिजन में कहा कि "*वर्तमान प्राथमिक शिक्षा एक जाल और भ्रांति है*" (पृ. 13)। समाज आधारित शिक्षा व्यवस्था राज्य सत्ता और बाजार आश्रित व्यवस्था बन गई। परंपरागत विधियों का स्थान पुस्तकों, कापियों, कलम, श्यामपट, चाक-डस्टर से होते हुए स्मार्ट-बोर्ड तक आ चुका। बदलते भारत को ब्रिटिश शिक्षा नीति के कुप्रभावों से मुक्त करने में प्रत्येक भारतवासी के योगदान की आवश्यकता है, इसलिए भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी (2025) ने कहा है कि "मैकॉले द्वारा भारत की सांस्कृतिक और शैक्षिक आधारों के खिलाफ किया गया अपराध 2035 में 200 वर्षों का हो जाएगा। श्री मोदी ने राष्ट्र का आह्वान किया, नागरिकों से अगले दस वर्षों में एक प्रतिज्ञा लेने का आग्रह किया कि वे मैकॉले द्वारा डाली गई गुलामी की मानसिकता से खुद को मुक्त करें। उन्होंने जोर देकर कहा कि मैकॉले द्वारा प्रस्तुत की गई बुराईयों और सामाजिक कष्टों को आने वाले दशक में समाप्त करना चाहिए।" भारतीय शिक्षा के इतिहास पर की गई इस विवेचना का उद्देश्य यह है कि हम अपने गौरवशाली अतीत का बोध कर सकें, जिससे शिक्षा के भारतीयकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो सके। इस अध्ययन की प्रासंगिकता तभी सिद्ध होगी।

सन्दर्भ सूची

एडम, डब्ल्यू. (1835–1838). रिपोर्ट्स ऑन द स्टेट ऑफ एजुकेशन इन बंगाल, https://www.studocu.com/in/document/banaras-hindu-university/indian-history/william-adams-report-of-the-indian-education-system/

अम्बिराजन, एस. (1999). जॉन स्टुअर्ट मिल एंड इंडिया, इन मार्टिन आई. मोइर, डगलस एम. पीयर्स, एंड लिन जैस्टूपिल, जे. एस. मिल्स एनकाउंटर विद इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ टोरोंटो प्रेस, पृ. 229

बार्तोलोमियो, बी. एफ. पी. (1796). राइटिंग्स ऑन द एजुकेशन ऑफ चिल्ड्रेन इन इंडिया, इन धरमपाल (1983) द ब्यूटीफुल ट्री: इंडिजिनस रूट्स ऑफ इंडियन एजुकेशन। बिब्लिया इम्पेक्स। https://cpsindia.org/wp-content/uploads/2023/07/The-Beautiful-Tree.pdf

बसु, ए. (1974). द ग्रोथ ऑफ एजुकेशन एंड पॉलिटिकल डेवलपमेंट इन इंडिया, 1898–1920। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

बसु, ए. (1982). एसेज़ इन द हिस्ट्री ऑफ इंडियन एजुकेशन। नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग, पृ. 105

बसु, बी. डी. (1922). हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इंडिया अंडर द रूल ऑफ द ईस्ट इंडिया कंपनी, कलकत्ता: द मॉडर्न रिव्यू ऑफिस।

बेली, सी. ए. (1996). एम्पायर एंड इन्फॉर्मेशन: इंटेलिजेंट गैदरिंग एंड सोशल कम्युनिकेशन इन इंडिया, 1780–1870. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस

बिस्वार, डी. के. (सम्पा.). (1992). द कॉरस्पॉन्डेन्स ऑफ राजा राममोहन रॉय, खण्ड 1, कलकत्ता: सरस्वत, पृ. 190–195

धरमपाल (1983). द ब्यूटीफुल ट्री: इंडिजिनस इंडियन एजुकेशन इन द एटीन्थ सेंचुरी, नई दिल्ली: बिब्लिया इम्पेक्स प्राइवेट

गांधी, एम. (20 अक्टूबर 1931). स्पीच एट द रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स, लंदन।

गांधी, एम. (18 सितम्बर 1937). हरिजन, पृ. 13

मैककली, बी. (1966). इंग्लिश एजुकेशन एंड द ओरिजिन ऑफ इंडियन नेशनलिज़्म, ग्लॉसेस्टर, मैसाचुसेट्स: पीटर स्मिथ

मैकॉले, टी. बी. (1835). मिनट ऑन इंडियन एजुकेशन. आई.ओ.आर.: इंडिया जनरल कंसल्टेशन्स, संख्या 15, 7 मार्च 1835, पी/186/66, एफ.एफ. 267–274, https://courses.nus.edu.sg/course/elltankw/history/Macaulay.htm

मार्शल, पी. जे. (1964). नोबकिस्सेन वर्सेस हेस्टिंग्स। बुलेटिन ऑफ द स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़, 27(02), यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन, पृ. 382–396, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस

मोदी, एन. (17 नवम्बर 2025). https://www.pmindia.gov.in/en/news_updates/pm-delivers-the-sixth-ramnath-goenka-lecture/

नाइक, जे. पी. एवं नोरेल्लाह, एस. (1996). ए स्टूडेंट्स हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इंडिया. दिल्ली: मैकमिलन इंडिया लिमिटेड

नारायण, वी. ए. (1959). जोनाथन डंकन एंड वाराणसी. कलकत्ता: के. एल. मुखोपाध्याय

राय, बी. सी. (1965). हिस्ट्री ऑफ इंडियन एजुकेशन. आगरा: राम प्रकाश एंड संस

राव, पी. वी. (2020). बियॉन्ड मैकॉले: एजुकेशन इन इंडिया, 1780–1860. रूटलेज

शार्प, एच. (1920). ब्यूरो ऑफ एजुकेशन, इंडिया. सेलेक्शन्स फ्रॉम एजुकेशनल रिकॉर्ड्स. पार्ट–I, 1781–1839. कलकत्ता: सुपरिन्टेन्डेन्ट, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, इंडिया

सदरलैंड, जे. सी. सी. (1835). आई.ओ.आर.: इंडिया जनरल कंसल्टेशन्स, संख्या 7, 7 मार्च 1835, पी/186/66, एफ.एफ. 227–238

ट्रेवलिन, सी. ई. (1838). ऑन द एजुकेशन ऑफ द पीपल ऑफ इंडिया. मैकमिलन. https://www.cambridge.org/core/books/on-the-education-of-the-people-of-india/493839A2D7A2AC5EB110E7D523D1F385

वॉकर, सी. ए. (1820). लिटरेरी अकाउंट्स ऑन इंडियन एजुकेशन, साइटेड इन धरमपाल (1983). द ब्यूटीफुल ट्री: इंडिजिनस रूट्स ऑफ इंडियन एजुकेशन. बिब्लिया इम्पेक्स. https://cpsindia.org/wp-content/uploads/2023/07/The-Beautiful-Tree.pdf

जैस्टूपिल, एल. एवं मोइर, एम. (1999). द ग्रेट इंडियन एजुकेशन डिबेट: डॉक्यूमेंट्स रिलेटिंग टू द ओरिएंटलिस्ट–एंग्लिसिस्ट कंट्रोवर्सी, 1781–1843. कर्ज़न प्रेस

व्हाइटहेड, सी. (2003). कोलोनियल एजुकेटर्स: द ब्रिटिश इंडियन एंड कोलोनियल एजुकेशन सर्विस, 1858–1983. आई.बी. टॉरिस एंड कम्पनी लिमिटेड

प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा: संदर्भ, विमर्श व संभावनाएँ

कुलदीप कुमार पाण्डेय
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
kuldeeppandeyajad@cie.du.ac.in

प्रो. आशीष रंजन
प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
aranjan@cie.du.ac.in

सारांश

भाषा विचारों का पहिया है, जिसके माध्यम से बच्चे अपने सहज भावों का आदान-प्रदान करते हैं। बच्चे अपने घर तथा आस-पास की भाषा से अपनी समझ विकसित करते हैं और विद्यालय में अपनी सम्पूर्ण अस्मिता लेकर आते हैं। बच्चों की दुनिया के समझ की भाषा को अस्वीकार करना न केवल मातृभाषा को अस्वीकार करना है अपितु उनकी बुनियादी समझ को अस्वीकार करना है। अतः प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में शिक्षा के माध्यम की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जो भाषा बच्चे जानते हैं, उसमें पढ़ना-लिखना, बातों को समझना तथा विचारों को अभिव्यक्ति करना आसान होता है अतः बच्चों की घर की भाषा/मातृभाषा तथा स्कूल की भाषा के बीच जुड़ाव आवश्यक है। अभिभावक प्रायः कई कारणों (व्यावसायिक, वैश्वीकरण, सामाजिक प्रस्थिति आदि) से मातृभाषा माध्यम से शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं, तब शिक्षकों व नीति-निर्माताओं का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा के उपयोग पर नीति-निर्माताओं, शिक्षकों व अभिभावकों के दृष्टिकोणों के समालोचनात्मक अध्ययन पर केंद्रित है। इसमें गैर-संभावित नमूनाकरण द्वारा 48 प्रतिभागियों का उद्देश्यपूर्ण चयन कर, उनके विचारों और अनुभवों को समझने के लिए कथात्मक शोध डिजाइन अपनाया गया। मुख्य शोध प्रश्नों में यह जानने का प्रयास किया गया कि मातृभाषा के उपयोग के प्रति प्रतिभागियों के दृष्टिकोण कैसे हैं और इसके प्रयोग के खिलाफ कौन-कौन से कारक मौजूद हैं। अर्ध-संरचित साक्षात्कार, अनौपचारिक विचार-विमर्श और अवलोकन के माध्यम से प्रदत्त संकलित किए गए। शोध के निष्कर्ष को स्पष्ट रूप से पहचानी गई थीम के अंदर स्पष्ट व व्यवस्थित रूप से विश्लेषित किया गया है। इस अध्ययन निष्कर्ष से प्रकट होता है कि भारत जैसे भाषाई विविधता वाले देश में मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग करने में अनेक चुनौतियाँ हैं, जैसे मातृभाषा की समझ में भिन्नता, वैश्वीकरण का प्रभाव, समाज में शिक्षा माध्यम का अभिभावकों व शिक्षकों के सामाजिक प्रस्थिति से जोड़कर देखा जाना। निष्कर्षों के आधार पर, अध्ययन में सुझाव दिया गया है कि अभिभावकों व शिक्षकों में मातृभाषा के प्रति सम्मान विकसित करना, स्थिर भाषाई नीतियों का जमीनी स्तर पर क्रियान्वयन तथा सरकारी व निजी दोनों क्षेत्रों में अवसरों को बढ़ाना चाहिए।

मुख्य शब्द: *शिक्षा का माध्यम, मातृभाषा, दृष्टिकोण, अस्मिता बोध, सामाजिक समता*

पृष्ठभूमि

अनौपचारिक शिक्षा जन्म के समय से ही निरंतर चलती रहती है। कोई भी बच्चा, जिस भी परिवेश में जन्म लेता है उससे ही वह प्रारम्भिक ज्ञान अर्जित करना व खोजना प्रारंभ कर देता है (भाषा शिक्षण हिन्दी, पृ. 24)। फिर

वह उस परिवेश की भाषा को सहज भाव से ही सीखता है और उसके माध्यम से दुनिया की समझ बनाने लगता है। पहली कक्षा में आने वाले बच्चे समृद्ध और विकसित मातृभाषा ज्ञान के साथ आते हैं। वह अपनी भावनाओं और ज़रूरतों को भाषा के माध्यम से बखूबी अभिव्यक्त कर लेते हैं (रिमझिम 1)। इससे यह पता चलता है कि सामान्यतः एक बच्चा एक सामान्य भाषाई जगत से संपर्क के अतिरिक्त अंतर्निहित भाषायी क्षमता के साथ ही जन्म लेता है (चॉम्स्की,1957)। यद्यपि बच्चे जन्मजात भाषिक क्षमता के साथ जन्म लेते हैं, तथापि भाषाओं को सीख जाना खास सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनैतिक संदर्भों में होता है (भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, पृ. 3)। यहाँ मातृभाषा का प्रयोग बच्चे के स्कूल आने से पहले घर, पड़ोस एवं साथियों की भाषा के रूप में किया गया है। यह वह भाषा है, जो जन्म से ही बच्चे की दुनिया, संस्कृति और भावनात्मक समझ को आकार देती है। छत्रिया (1968) ने इसे माँ से ग्रहण की हुई भाषा, स्कुटनैब-कंगास (1984) ने जन्म से ही अर्जित 'मूल भाषा' तथा वूलार्ड (1998) ने मातृभाषा को पहली और वास्तविक भाषा कहा है, अर्थात बच्चा मातृभाषा को बाह्य परिवेश से अर्जित करता है, न कि सीखता है। क्रेशन (1982) अर्जन व सीखने में अंतर की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि अर्जन का तात्पर्य सहज भाषाई विकास की प्रक्रिया से है। बच्चा बाह्य परिवेश से अर्जित अनुभवों को भाषा के माध्यम से ही अर्थवान बनाता है। यह प्रक्रिया उसकी मातृभाषा में ही सबसे अच्छी हो सकती है। अतः अर्थ सृजन करने का पहला प्रयास अपनी भाषा में ही प्रारंभ होता है, क्योंकि बच्चे भावात्मक और आत्मीय शब्दों को अपनी भाषा में ही सहजता से व्यक्त कर पाते हैं। "बच्चे जब पहली बार अपने घर से विद्यालय आते हैं तो अपने साथ एक विशाल भाषिक संक्रियात्मक संरचना लेकर आते हैं, जिसके मध्यम से वो अपनी समझ बनाते हैं। परंतु विद्यालय में उसे यह सिखाया जाता है कि उसे अपनी भाषा में नहीं बोलना है, उसको एक ऐसी भाषा में बोलना है, जो शिक्षाविदों द्वारा निर्धारित की गई है। हमें ध्यान देना होगा कि बच्चा अपने आपको मातृभाषा में ही सर्जित करता है और अपने अनुभवों की व्याख्या भी इसी भाषा में करता है। इसको शिक्षा में नकारना केवल बच्चे को नकारना नहीं है बल्कि यह सामाजिक समता, सामाजिक न्याय और आजादी को नकारना है" (समझ का माध्यम, पृ. 11)। हमें यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि नई तकनीकें विकसित करना, नया शोध करना, अपने और समाज के बारे में नए ढंग से सोचना तभी संभव होगा, जब हमें अपनी भाषा माध्यम में पढ़ने का अवसर मिलेगा, जिससे हम अपनी भाषा में सोच पाएंगे (भाषा शिक्षण हिन्दी, पृ. 22)।

प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा माध्यम की भूमिका

मातृभाषा शिक्षा माध्यम बालकों में संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा सामाजिक कौशलों का विकास कर उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है। यह भारत की समृद्ध भाषाई विविधता को अपनाते हुए आलोचनात्मक सोच और समस्या-समाधान को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा प्रणाली मातृभाषा माध्यम को बढ़ावा देकर बालकों के लिए अधिक समावेशी, प्रभावी और सशक्त शिक्षण वातावरण बना सकती है (सुंदरराजन, 2024)। शोध दर्शाते हैं कि बच्चे सबसे अच्छा तब सीखते हैं, जब उन्हें मातृभाषा माध्यम में पढ़ाया जाता है (निशांति, 2020; मान्योनी और अन्य, 2016; ट्रुजिलो, 2020)। इससे उन्हें बुनियादी अवधारणाओं को अधिक आसानी से समझने, खुद को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने और सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल होने का माहौल बनता है, जो जिज्ञासा और रचनात्मकता को बढ़ावा देता है। इसके अलावा, यह उन्हें अपनी मातृभाषा माध्यम में सीखे गए कौशल को अन्य भाषाओं में स्थानांतरित करने में भी सक्षम बनाता है, जिससे बाद में दूसरी भाषा सीखना आसान हो जाता है। कमिंस (1981) के भाषा हस्तांतरण के सिद्धांत से पता चलता है कि जब छात्र अपनी पहली भाषा में दक्षता विकसित करते हैं, तो वे जो संज्ञानात्मक कौशल हासिल करते हैं, जिसे दूसरी भाषा सीखने में स्थानांतरित किया जा सकता

है। अतएव मातृभाषा में अवधारणाओं में महारत हासिल करना आसान और अधिक प्रभावी दूसरी भाषा अधिग्रहण का मार्ग प्रशस्त करता है। कई मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों ने मातृभाषा शिक्षा माध्यम की भूमिका को रेखांकित किया है। वायगोत्स्की (1978) के अनुसार, निकटतम विकास का क्षेत्र (ZPD) उस अंतर को दर्शाता है, जो बच्चे अपनी क्षमता से स्वयं कर सकते हैं और वह जो वे किसी अनुभवी व्यक्ति के सहयोग या मार्गदर्शन से कर पाने में सक्षम होते हैं। इसे बच्चे की अपनी भाषा का उपयोग करके सबसे अच्छी तरह से पाटा जा सकता है। जीन पियाजे (1954) के अनुसार पूर्व-संक्रियात्मक चरण और मूर्त संक्रियात्मक चरण में, बच्चे परिचित अवधारणाओं और भाषा के माध्यम से सबसे अच्छा सीखते हैं। यद्यपि पियाजे ने अपने सिद्धांतों में मातृभाषा का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं किया है, फिर भी मातृभाषा के माध्यम से सीखना, बच्चों को उनके पूर्व विद्यमान स्कीमा पर आधारित होकर नई जानकारी को अधिक सहजता से आत्मसात करने और उसका एकीकरण करने का अवसर प्रदान करता है। नोम चॉम्स्की (1957) का सार्वभौमिक व्याकरण का सिद्धांत कहता है कि सभी मनुष्य भाषा सीखने की जन्मजात क्षमता के साथ पैदा होते हैं (पृ. 13)। बच्चे की स्वाभाविक भाषाई प्रवृत्तियों को सर्वश्रेष्ठ समर्थन तब मिलता है, जब उसकी शिक्षा मातृभाषा में आरंभ की जाती है, क्योंकि यह उसकी जन्मजात भाषाई संरचनाओं से सीधे मेल खाती है। संज्ञानात्मक लाभों से परे, शिक्षा में मातृभाषा का उपयोग बच्चे की पहचान और सांस्कृतिक गौरव की भावना को भी मजबूत करता है। महात्मा गांधी का शैक्षिक दर्शन, विशेष रूप से शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा के उपयोग के संबंध में, समग्र शिक्षा और सांस्कृतिक प्रासंगिकता के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है (शाह, 2017)।

प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा माध्यम पर नीतिगत अनुशंसा

प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के चयन पर स्वतंत्रता पूर्व से ही एक चर्चा का विषय रहा है। अनेक शिक्षाविदों व नीति-निर्माताओं ने इसपर अपने विचार प्रस्तुत किए, जिसके आधार पर अनेक नीतियाँ प्रकाश में आई। वर्धा शिक्षा योजना (1937) में प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से देने की वकालत की गई (सिन्हा, पृ. 729)। स्वतंत्रता के बाद गठित राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1948-49) ने माध्यमिक विद्यालयों में सामान्य शिक्षा के संबंध में उल्लेख किया कि "कक्षा एक से पाँच तक विद्यार्थियों को केवल मातृभाषा ही सिखाई जानी चाहिए, जबकि कक्षा छः से आठ तक मातृभाषा के साथ संघीय भाषा पर भी विशेष बल दिया जाना चाहिए" (पृ. 109)। कोठारी आयोग (1964-66) ने भी प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए अध्याय 1.51 में रवींद्रनाथ टैगोर के कलकत्ता विश्वविद्यालय में उनके दीक्षांत भाषण को उद्धृत किया गया, जिसमें उन्होंने शिक्षा की भाषा को छात्र की भाषा से अलग होने की कठोर आलोचना करते हुए सांस्कृतिक, राष्ट्रीय विकास तथा छात्रों की सृजनशीलता के लिए मूल भाषा में शिक्षा आवश्यक को आवश्यक बताया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में त्रिभाषा सूत्र में मातृभाषा शिक्षा माध्यम पर ज़ोर दिया गया, जिसे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में स्वीकार कर लिया गया (समझ का माध्यम, पृ. 3)। शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) की धारा 29(2)(एफ) में जहाँ तक संभव हो, शिक्षा का माध्यम बच्चे की मातृभाषा में रखने की अनुशंसा दी गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अध्याय 4.11 में मातृभाषा के महत्त्व को बताते हुए लिखा गया है कि "यह सर्वविदित है कि छोटे बच्चे अपनी घरेलू भाषा या मातृभाषा में जटिल विचारों को अधिक आसानी से समझ लेते हैं। भले ही घरेलू भाषा या मातृभाषा में पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध न हों, फिर भी जब संभव हो, तो छात्रों के साथ संवाद करने के लिए शिक्षकों द्वारा उपयोग की जाने वाली भाषा घरेलू भाषा या मातृभाषा ही होनी चाहिए।" अतः प्रारंभ से ही इन सभी आयोगों व नीतियों का उद्देश्य मातृभाषा शिक्षा को प्राथमिकता देकर भारत में सभी छात्रों के लिए एक अधिक न्यायसंगत और प्रभावी शिक्षा प्रणाली बनाने का प्रयास रहा है।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा पर संबंधित साहित्य के पुनरावलोकन के अंतर्गत अरविंद व अन्य (2024) ने वार्षिक शिक्षा स्थिति रिपोर्ट (Annual Status of Education Report - ASER) के सर्वेक्षण में पाया कि ग्रामीण भारत में केवल लगभग 42% बच्चों की घर की भाषा और स्कूल में शिक्षा का माध्यम समान था, जो परोक्ष रूप से दर्शाता है कि गैर-मातृभाषा माध्यम चुनने का रुझान अधिक व्यापक है। इथियोपिया के शिक्षा मंत्रालय द्वारा शिक्षा के माध्यम से संबंधित सिफारिशों के लिए गठित आयोग ह्यू एवं अन्य (2007) ने उल्लेख किया कि यद्यपि वर्तमान शिक्षा नीति में मातृभाषा को प्राथमिक शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया गया है, फिर भी अधिकांश अभिभावकों का दृष्टिकोण इसके विपरीत है। नाओम और सारा (2014) के अध्ययन में यह पाया गया कि यद्यपि अभिभावक मातृभाषा में शिक्षा देने से बच्चों में संस्कृति, इतिहास और पहचान के संरक्षण की भूमिका को स्वीकार करते हैं, फिर भी वे भविष्य में रोजगार तथा जीवन की सफलता को देखते हुए इसके प्रति मुख्यतः विरोधी दृष्टिकोण रखते हैं। शिक्षकों ने भी यह स्वीकार किया कि अंग्रेजी को प्रतिष्ठा और सफेद कॉलर वाली नौकरियों से जुड़े होने के कारण सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाता है। मेगनाथन (2011) द्वारा अधिकांश अभिभावकों का मातृभाषा शिक्षा माध्यम की अपेक्षा अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रबलता देने का प्रमुख कारण अंग्रेजी को बेहतर जीवन, गरीबी और उत्पीड़न से बाहर निकलने का मार्ग तथा प्रगति के शक्तिशाली साधन के रूप में देखने से है। चाकमा (2012) ने अध्ययन में पाया कि अभिभावकों तथा शिक्षकों का मातृभाषा आधारित शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। हालांकि, अभिभावकों का एक बड़ा समूह (58.33%) मानता है कि मातृभाषा आधारित शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं। शिक्षक भी प्रशिक्षण की कमी व उचित शिक्षण सामग्री की कमी महसूस करते हैं। एज़िओकोली तथा उग्वू (2019) ने शोध में पाया कि अभिभावक और शिक्षक मातृभाषा के शैक्षणिक महत्त्व में दृढ़ता से विश्वास करते हैं। अधिकांश शिक्षकों ने छात्रों को सभी विषय मातृभाषा में पढ़ाए जाने को प्राथमिकता दी। हालांकि, अभिभावकों में सभी विषयों के लिए अंग्रेजी को प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति देखी गई है। विल्लाल्बा (2013) ने पाया कि अधिकांश अभिभावक मातृभाषा शिक्षा माध्यम से भाषा विरासत पर गर्व, साक्षरता विकास के लिए सकारात्मक परिणाम को स्वीकार करने के बाद भी अंग्रेजी को सामाजिक और वित्तीय प्रगति की भाषा मानते हुए इसकी दक्षता को लेकर चिंतित हैं। मान्योनी और अन्य (2016) ने केन्या के शोध अध्ययन में पाया कि अधिकांश (60.2%) शिक्षक निचले प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम होना पर असहमत थे। ट्रुजिलो (2020) ने तीन लगातार शैक्षणिक वर्षों के दौरान छात्रों के प्रदर्शन का निर्धारण करने के लिए यह अध्ययन किया, जिसमें उन्होंने पाया कि मातृभाषा शिक्षा माध्यम से विद्यार्थी बेहतर ढंग से तर्क करने, समझने व सक्रिय रूप से कक्षा चर्चा में भाग लेने में सक्षम होते हैं। किन्याडुका एंड किवारा (2013) ने बताया कि अभिभावक और शिक्षक, दोनों ही शिक्षा में मातृभाषा के लाभों की सराहना करते हैं, फिर भी मातृभाषा में शिक्षिक संसाधनों की अनुपलब्धता के कारण शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को प्राथमिकता देते हैं। झिंगरन (2009) के शोध अध्ययन में यह पाया गया कि भले ही घर या आस-पड़ोस में अंग्रेज़ी बोलने का वातावरण न हो, फिर भी आर्थिक रूप से कमजोर परिवार अपने बच्चों को निजी अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालयों में भेजने की प्रबल इच्छा रखते हैं। मैबिलिसा व अन्य (2020) ने अध्ययन में पाया कि अधिकांश शिक्षक मातृभाषा शिक्षा माध्यम के प्रभावी उपयोग के विरोध में हैं। शिक्षकों का मानना है कि मातृभाषा मानकीकृत नहीं है, जिससे शब्दों की अलग-अलग व्याख्या हो सकती है। जबकि अंग्रेजी भविष्य के रोजगार के लिए महत्त्वपूर्ण एक वैश्विक भाषा है, जिसके बिना उच्च शिक्षा में संक्रमण के समय समस्या आ सकती है। टैकी-ओफोसु एवं अन्य (2015) के अध्ययन में यह निष्कर्ष निकला कि अधिकांश अभिभावक मातृभाषा को सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण, अवधारणाओं की सहज समझ और प्रभावी संचार को प्रोत्साहित करने वाला मानते

हैं। तथापि, कुछ अभिभावक मातृभाषा शिक्षा माध्यम के रूप में अपनाने पर स्थानीय भाषाओं में शिक्षण सामग्री की अपर्याप्तता को लेकर चिंता व्यक्त करते हैं।

शोध औचित्य

इस शोध की आवश्यकता ऐसे शोध समूह से संबंधित साहित्य में एक अंतर से उभरी, जो भारत जैसे बहुभाषी समाजों में मातृभाषा शिक्षा माध्यम की वकालत करता है परंतु नीतिगत सिफारिशों के बावजूद, बच्चों की शैक्षणिक और व्यावसायिक संभावनाओं पर दीर्घकालिक प्रभाव के बारे में चिंताओं के कारण सामाजिक प्रतिरोध बना हुआ है। यह शोध प्राथमिक शिक्षा के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह वह आधारभूत चरण है, जहाँ संज्ञानात्मक और भाषाई कौशल विकसित होते हैं। समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने और नीति को वास्तविक कक्षा प्रथाओं के साथ संरेखित करने के लिए अभिभावकों, शिक्षकों व नीति-निर्माताओं की धारणाओं की खोज करना महत्त्वपूर्ण है।

शोध उद्देश्य

इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

1. अभिभावकों, शिक्षकों व नीति-निर्माताओं के दृष्टिकोण से मातृभाषा के संप्रत्यय को समझना।
2. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा शिक्षा माध्यम के प्रयोग के प्रति अभिभावकों, शिक्षकों व नीति-निर्माताओं के दृष्टिकोणों का विश्लेषण करना।
3. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा शिक्षा माध्यम के प्रयोग में आने वाली बाधाओं व संभावित संभावनाओं की समीक्षा करना।

शोध का परिसीमन

प्रस्तुत शोध कार्य को दिल्ली क्षेत्र तक सीमित किया गया है। शोध में केवल प्राथमिक विद्यालय के अभिभावकों व शिक्षकों का चयन किया गया है। साथ ही दिल्ली में कार्यरत नीति-निर्माताओं ने ही इस अध्ययन में भाग लिया है।

शोध प्रविधि

यह गुणात्मक शोध अभिभावकों, शिक्षकों और नीति-निर्माताओं के व्यक्तिपरक अर्थों और अनुभवों को समझने पर केंद्रित है, जिसके लिए व्याख्यावादी प्रतिमान को आधार बनाया गया। यह प्रतिमान वस्तुनिष्ठ सत्य को अस्वीकार करता है और मानता है कि वास्तविकता सामाजिक रूप से निर्मित है, जिसे केवल उन व्यक्तियों के दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, जो इसे अनुभव कर रहे हैं। इस दृष्टिकोण के साथ संरेखित कथात्मक जांच शोध डिजाइन का चयन किया गया। शोध में प्रदत्त संकलन हेतु 48 प्रतिभागियों (बीस शिक्षक, बीस अभिभावक, और आठ नीति-निर्माता) का चयन उद्देश्यपूर्ण नमूनाकरण तकनीक का उपयोग करके किया गया। सामाजिक-आर्थिक विविधता को दर्शाने के लिए सरकारी और निजी दोनों स्कूलों के अभिभावकों व शिक्षकों को समान अनुपात में सम्मिलित किया गया। प्रदत्त संकलन छः माह की अवधि में किया गया, जिसमें प्रतिभागियों से दो चरण में साक्षात्कार लिया गया। प्रथम चरण में शिक्षकों, अभिभावकों और नीति-निर्माताओं से साक्षात्कार सम्पन्न हुआ। द्वितीय चरण में सम्पन्न हुए साक्षात्कार के समय अन्य प्रतिभागियों के लिए जो नए प्रश्न उभरे, उन्हें शामिल करते हुए उसके

अनुसार प्रतिभागियों से पुनः साक्षात्कार किया गया। शोध में शामिल प्रदत्त के त्रिकोणीय सर्वेक्षण (ट्रायंगुलेशन) हेतु प्रतिभागियों के कथन को पुनः उनसे सत्यापित कराया गया। प्राथमिक प्रदत्त संकलन उपकरण के रूप में अर्ध-संरचित साक्षात्कार का उपयोग किया गया, जिसने शोधकर्ताओं को लचीलेपन के साथ प्रतिभागियों की धारणाओं को गहराई से जानने की अनुमति दी। इसके अतिरिक्त, अनौपचारिक विचार-विमर्श और अवलोकन भी शोध उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया, जिसका विश्लेषण प्रदत्त द्वारा स्पष्ट रूप से पहचानी गई थीम के अंतर्गत किया गया है।

प्रदत्त विश्लेषण व व्याख्या

शोध में प्रदत्त की समृद्धि ने न्यादर्शों द्वारा देखे गए प्रभावों के सापेक्ष विषयों की पहचान और उद्भव को सक्षम किया। सभी थीम शोध उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्रतिभागियों से एकत्रित किए गए प्रत्यक्ष कथनों और अनुभवों से स्वाभाविक रूप से उभरे हैं।

मातृभाषा के संप्रत्यय के प्रति दृष्टिकोण

मातृभाषा की अवधारणा पर शिक्षकों, अभिभावकों तथा नीति-निर्माताओं के मध्य विविधता स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है। सर्वाधिक प्रतिभागियों ने मातृभाषा को घर की भाषा के रूप में स्वीकार किया, जिसे बच्चा अपने परिवार से सबसे पहले सहज स्वभाव से अर्जित करता है, न कि उसे सीखता है। एक अभिभावक ने कहा कि *"माँ से सीखी गई भाषा मातृभाषा है।"* क्षत्रिया (1968); स्कुटनैब-कंगास (1984) ने मातृभाषा के इसी अर्थ की बात की है। इसके अतिरिक्त, एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण भी उभरता है, जिसमें प्रतिभागियों ने मातृभाषा को शैक्षिक व नीतिगत दृष्टिकोण से वातावरण/क्षेत्र की भाषा से जोड़ा है, जिसके अनुसार क्षेत्रीय भाषा को शिक्षण के माध्यम के रूप में देखा जाना चाहिए। कुछ प्रतिभागियों ने मातृभाषा को सहजता की भाषा के रूप में देखा है, जहाँ अन्तरक्रिया और अभिव्यक्ति की सरलता केंद्र में होती है। इस संदर्भ में, एक शिक्षक ने कहा कि *"बच्चा जिस भाषा में अपनी भावनाओं, अपने विचारों, अपनी बातों को स्पष्ट रूप से सहजता के साथ अभिव्यक्त कर पता है, वही उसकी मातृभाषा है।"* कुछ प्रतिभागियों ने अन्य दृष्टिकोण रखते हुए मातृभाषा को सर्वाधिक संवाद की भाषा बताया। इस बात को एक शिक्षक ने कहा कि *"घर की भाषा से नहीं होता, जैसे मैं मैथिली जानता हूँ लेकिन बच्चों से हिन्दी में बोलता हूँ तो उनकी मातृभाषा हिन्दी हो गई।"* एक नीति-निर्माता ने सबसे अलग दृष्टिकोण रखते हुए कहा कि, *"एक से ज्यादा मातृभाषाएं हो सकती हैं।"* यद्यपि मातृभाषा को घर की भाषा मानने का दृष्टिकोण प्रबल है परंतु प्रतिभागियों ने इसे वातावरण, सर्वाधिक संवाद, व्यक्तिगत सहजता की भाषा तथा एक से अधिक मातृभाषा के रूप में भी स्वीकार किया है।

अकादमिक प्रदर्शन पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति दृष्टिकोण

अधिकांश शिक्षकों, अभिभावकों और नीति-निर्माताओं ने इस बात को स्वीकार किया है कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होने पर सबसे बालक अधिक सरलता से सीखते हैं, जिससे उनका अकादमिक प्रदर्शन अच्छा होता है। इसके पीछे मूलभूत तर्क यह है कि जब घर की भाषा और विद्यालय की भाषा समान होती है तो शब्दावलियों में अंतर न होने के कारण बच्चे पर अनावश्यक मानसिक तनाव नहीं होता है। इसी तरह का परिणाम विल्लाल्बा (2013) ने अपने शोध अध्ययन में पाया है। इस विषय पर नीति-निर्माताओं का भी मानना है कि मातृभाषा में शिक्षा देने से बच्चा संप्रत्ययों को आसानी से सीख लेता है। इस प्रभाव को स्पष्ट करते हुए एक नीति-निर्माता का कथन है: *"मातृभाषा में शिक्षा देने पर सहजता होती है, जो बच्चे की ऊर्जा का बड़ा हिस्सा, जो संप्रत्यय*

सीखने में लगाता है, उसे भाषा सीखने में लगाने से बचाता है, जिससे बच्चे को विषय सीखने की अपेक्षा भाषा सीखने के संघर्ष से बचाता है।'' ट्रुजिलो (2020) तथा चाकमा (2012) के शोध अध्ययन भी इससे सरेखित होते हैं। अधिकांश प्रतिभागियों ने अकादमिक प्रदर्शन के लिए मातृभाषा शिक्षा माध्यम को महत्त्वपूर्ण बताते हुए मानसिक और सामाजिक विकास को भी सुगम और सशक्त बनाने की भूमिका को स्वीकार किया। परंतु एक शिक्षक और दो अभिभावकों ने इनसे विपरीत दृष्टिकोण रखते हुए कहा कि *''बालमन को जिस तरह का वातावरण मिलेगा, वह उसी में ढल जाएगा। उसे प्रारंभ से जिस माध्यम से पढ़ाएंगे, वह उसी में सहज हो जाएगा। मातृभाषा माध्यम में ही बच्चे का प्रदर्शन अच्छा हो, यह आवश्यक नहीं।''* ह्यू तथा अन्य (2007) और अरविंद व अन्य (2024) ने भी अपने शोध में पाया अभिभावकों का दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं पाया है।

व्यवसाय की संभावनाओं के प्रति दृष्टिकोण

सभी प्रतिभागियों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करने पर, अपनी मातृभाषा में शिक्षित बच्चों के भविष्य के व्यवसाय के अवसरों के बारे में उनकी धारणाओं में स्पष्ट विभाजन उभर कर आता है। अधिकांश अभिभावक इस बात को लेकर आशंका व्यक्त करते हैं कि अगर बच्चे मातृभाषा माध्यम में शिक्षित होते हैं, तो उन्हें नौकरी व रोजगार में समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इसी तरह का परिणाम ह्यू व अन्य (2007) तथा एज़िओकोली व उग्वू (2019) ने अपने अध्ययन में पाया है। एक अभिभावक ने भावुक होकर कहा कि *''मैं अपना ही उदाहरण देख रहा हूँ कि मातृभाषा शिक्षण के माध्यम के रूप में पढ़ने पर भविष्य में नौकरी खासकर प्राइवेट क्षेत्र में दिक्कत आती है।''* एक अन्य अभिभावक ने बच्चों को मातृभाषा माध्यम से पढ़ाने को विवशता के रूप में देखते हुए कहा कि *''बजट न होने के कारण मुझे बच्चों को मातृभाषा माध्यम से पढ़ाना पड़ता है, नहीं तो मेरा भी मन होता है कि मेरे बच्चे अच्छे स्कूल में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ें।''* मेगनाथन (2011); किन्याडुका एंड किवारा (2013) और मैबिलिसा व अन्य (2020) के शोध अध्ययन भी इसी तरह के परिणाम अपने शोध में पाए हैं। मातृभाषा शिक्षा माध्यम पर शिक्षकों का मिश्रित दृष्टिकोण दिखाई देता है। कुछ शिक्षक मातृभाषा माध्यम को भविष्य की व्यवसाय की संभावनाओं के लिए सहयोगी, तो कुछ इसे बाधक के रूप में देखते हैं। एक शिक्षक अपने विचारों को व्यक्त करता है कि *''बच्चे को भविष्य में सहकारी या निजी क्षेत्र में व्यवसाय के अवसरों में समस्याओं का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि हम अपनी मातृभाषा को नीची नज़र से देखते हैं... उदाहरण के लिए, यदि हम सर्वोच्च न्यायालय में मातृभाषा को लागू करते हैं, तो वकील मातृभाषा में अध्ययन करेंगे और व्यवसाय में वृद्धि होगी।''* नाओम और सारा (2014); मान्योनी और अन्य (2016) तथा मैबिलिसा व अन्य (2020) के अध्ययन भी इसी तरह का परिणाम दिखते हैं। एक नीति-निर्माता ने निराशा व्यक्त करते हुए कहा कि *''ये तो स्पष्ट है कि भविष्य की संभावना पढ़ाई-लिखाई व कैरियर मातृभाषा में कम है। इसमें तो कोई रिसर्च की भी आवश्यकता नहीं है।''* जबकि एक अन्य शिक्षक इसके विपरीत तर्क देता है कि *''प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा शिक्षा माध्यम से बच्चों का आधार बन जाता है, इसलिए उनके व्यवसाय पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।''* अधिकांश नीति-निर्माता मातृभाषा शिक्षा माध्यम से बच्चों के सर्वांगीण विकास की बात करते हैं, जो उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग करेगा। एक नीति-निर्माता ने मातृभाषा में व्यवसाय की व्यापकता बताते हुए कहा कि *''ये सब मिथ पर आधारित है कि अंग्रेजी सीख लिए, तब आप सफल होंगे। मार्केट में कौन दुकानदार अंग्रेजी बोलता है! 99% मार्केट का हिस्सा लोकल लैंग्वेज प्रयोग करता है। अगर मार्केट की भाषा अंग्रेजी होती, तो सारी फिल्में अंग्रेजी में बन रही होतीं।''*

सामाजिक प्रस्थिति से संबंध के प्रति दृष्टिकोण

शिक्षक, अभिभावक और नीति-निर्माताओं ने एक मत से स्वीकार किया है कि समाज में मातृभाषा के माध्यम के विपरीत अंग्रेजी माध्यम को सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है। यह देखा गया है कि अभिभावक अपनी सामाजिक प्रस्थिति को बढ़ा कर दिखने के लिए अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाते हैं, भले ही इस प्रक्रिया में बच्चे की समझ प्रभावित हो रही हो। झिंगरन (2009) के अध्ययन भी इसी तरह का परिणाम दिखाते हैं। कुछ शिक्षकों ने बताया कि यह सामाजिक-आर्थिक मूल्य संबद्धता केवल छात्रों व अभिभावकों तक ही सीमित नहीं है, जो शिक्षक मातृभाषा माध्यम में पढ़ाते हैं, उन्हें समाज में निम्न दृष्टिकोण से देखा जाता है, जबकि अंग्रेजी में पढ़ाने वाले शिक्षकों को अधिक ज्ञानवान मानकर 'पूजा' जाता है। मैबिलिसा व अन्य (2020); नाओम और सारा (2014) के शोध परिणाम भी इससे सरेखित होते हैं। एक अभिभावक के अनुसार, *''पैरेंट्स अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाने में गर्व महसूस करते हैं, वो गर्व से बोलते हैं कि मेरा बच्चा उस स्कूल में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ रहा है।''* यह दृष्टिकोण इसलिए भी प्रबल होता है, क्योंकि अभिभावकों को यह विश्वास है कि अंग्रेजी सीख लेने से बच्चों को भविष्य में अच्छी नौकरी प्राप्त होगी और उनका समाज में सम्मान होगा। एक शिक्षक ने शिक्षा माध्यम के नाम पर इस बाजारीकरण की प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए कहा कि *''समाज में प्रचलित विशेष दृष्टिकोण के कारण अभिभावक शिक्षा के इस बाजारीकरण से पूर्णतः जागरूक होते हुए भी अपनी आर्थिक क्षमतानुसार बच्चों को अंग्रेजी माध्यम वाले विद्यालयों में पढ़ाना चाहते हैं।''* एक अभिभावक का कथन शिक्षण माध्यम के प्रस्थिति से जुड़ाव की गहनता को स्पष्ट करता है: *''मुझे पता है कि प्राइवेट स्कूल में किस प्रकार की पढ़ाई होती है, लेकिन मुझे भी चाहिए उस स्कूल का ठप्पा, क्योंकि वह भविष्य में मेरे बच्चे को सभी क्षेत्र में सहयोग करेगा। इस ठप्पे के साथ जब वह कहीं भी जाएगा, तो उसे उच्च नज़र से देखा जाएगा।''* अरविंद व अन्य (2024) तथा मेगनाथन (2011) भी अपने अध्ययनों में इसी प्रकार का परिणाम पाते हैं। अतः जब कोई भाषा किसी समाज के आर्थिक मूल्यों से जुड़ जाती है, तो उस समाज में उसे देखने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण बन जाता है, जो अभिभावकों तथा शिक्षकों की सामाजिक प्रस्थिति से प्रत्यक्ष रूप से जुड़कर शिक्षा माध्यम के चयन को प्रभावित करता है।

सांस्कृतिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति दृष्टिकोण

मातृभाषा माध्यम से शिक्षा देने पर इसका सांस्कृतिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति प्रतिभागियों के दृष्टिकोण जानने के लिए उनसे यह प्रश्न पूछा गया। अधिकांश प्रतिभागियों ने यह माना कि मातृभाषा शिक्षण माध्यम से पढ़ने वाला बच्चा अपनी संस्कृति से अधिक जुड़ाव महसूस करेगा और अपने पारिवारिक परंपराओं का सम्मान करेगा। एक नीति-निर्माता ने कहा कि *''मातृभाषा शिक्षण माध्यम में पढ़ने वाला बच्चा अपनी संस्कृति पर अवश्य गर्व करेगा और अपनी पारिवारिक परंपराओं का सम्मान करेगा, क्योंकि वह घर की भाषा में जुड़ाव महसूस करेगा''*। विल्लाल्बा (2013) तथा किन्याडुका एंड किवारा (2013) ने भी शोध में इसी प्रकार का परिणाम पाया है। कुछ शिक्षकों व अभिभावकों ने भी इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि *''मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाने से परिवार की परम्पराएं और सांस्कृतिक मूल्य अच्छी तरह सुरक्षित होंगे।''* इसी दृष्टिकोण को टैकी-ओफोसु एवं अन्य (2015); नाओम और सारा (2014) तथा चकमा (2012) अपने अध्ययन में भी दर्शाते हैं, जबकि तीन अभिभावकों और दो शिक्षकों का यह दृष्टिकोण था कि शिक्षण माध्यम का सांस्कृतिक व पारिवारिक परंपराओं से कोई संबंध नहीं है। इनका मानना था कि यह पूरी तरह परिवार के माहौल पर निर्भर करता है। इसी बात को एक शिक्षक ने कहा कि *''बच्चा परिवार की परंपराओं तथा संस्कृति को तो सीख ही रहा है, इसपर माध्यम का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह परिवार पर निर्भर करता है कि वह अपने बच्चे को संस्कृति और पारिवारिक मान्यताओं के बारे में कितना सिखाता*

है।" अतः अधिकांश प्रतिभागियों का शिक्षा माध्यम के सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ाव को स्वीकारना इस विषय को अत्यंत व्यापक व प्रासंगिक बनाता है।

मातृभाषा शिक्षा-माध्यम के क्रियान्वयन में चुनौतियाँ

भारत में प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा को शिक्षा माध्यम के रूप में उपयोग करने में कई बुनियादी चुनौतियाँ मौजूद हैं। विशाल भाषाई विविधता दिल्ली, जैसे बहुभाषी क्षेत्रों में शिक्षण के लिए एक ही मातृभाषा का चयन करना मुश्किल बना देती है, जिससे छात्रों को उनकी पहली भाषा से अलग भाषा में पढ़ाए जाने पर कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस प्रयास में स्थानीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण पाठ्यपुस्तकों और शैक्षिक संसाधनों की भारी कमी भी एक प्रमुख चुनौती है, जिसके विकास में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बाद भारतीय भाषा समिति के गठन से तेजी अवश्य आई है। इसके अतिरिक्त, एक बड़ी बाधा अभिभावकों का नकारात्मक दृष्टिकोण है, जो अंग्रेजी को सामाजिक गतिशीलता और बेहतर नौकरी की संभावनाओं की भाषा मानते हैं और उन्हें डर है कि मातृभाषा शिक्षा माध्यम उनके बच्चों के भविष्य के अवसरों को सीमित कर देगा। यह प्राथमिकता वैश्वीकरण के प्रभाव से भी प्रेरित होती है, जहाँ वैश्विक सफलता और संचार के लिए अंग्रेजी दक्षता की बढ़ती मांग है, जिसके कारण सामाजिक और आर्थिक दबावों के चलते अंग्रेजी का प्रभुत्व बना रहता है। समाज में अभिभावकों व शिक्षकों के सामाजिक प्रस्थिति को शिक्षा माध्यम से जोड़ कर देखना एक प्रमुख कारक है। जमीनी स्तर पर, पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों की, जो क्षेत्रीय भाषाओं में प्रभावी ढंग से पढ़ा सकें, इस चुनौती की और अधिक बढ़ा देती है। अंत में, सबसे अधिक चिंता का विषय यह है कि मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को उच्च शिक्षा में संक्रमण के दौरान चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, क्योंकि उच्च शिक्षा प्रायः अंग्रेजी माध्यम में संचालित होती है।

मातृभाषा शिक्षा माध्यम में संभावनाएँ

मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने की दिशा में व्यापक संभावनाएँ निहित हैं। सर्वप्रथम, मातृभाषा के अर्थ और संप्रत्यय को स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है, क्योंकि यह केवल संप्रेषण का साधन नहीं बल्कि विचार, संस्कृति और सामाजिक पहचान का आधार है। इस दिशा में संस्थागत स्तर पर कदम उठाते हुए सभी शासकीय एवं शैक्षणिक कार्यालयों में प्रशासनिक निर्देशों और सूचनाओं को मातृभाषा में प्रसारित करने की व्यवस्था की जा सकती है, जिससे मातृभाषा केवल विद्यालयों तक सीमित न रहकर सार्वजनिक जीवन का स्वाभाविक अंग बन सके। शिक्षकों की तैयारी के संदर्भ में बहुभाषिक प्रशिक्षण व्यवस्था विकसित की जा सकती है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भाषाई संक्रमण की चुनौती को कम करने हेतु मातृभाषा में मूल पुस्तकों की रचना तथा अन्य भाषाओं से अनुवाद को प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे न केवल ज्ञान का लोकतंत्रीकरण होगा, अपितु इससे संबंधित रोजगार अवसरों में भी वृद्धि होगी। तथापि, इन सभी प्रयासों की सफलता सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन पर निर्भर करती है। अतः अभिभावकों व शिक्षकों को इस बात के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए कि शिक्षा का माध्यम सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक नहीं, बल्कि बच्चे के बौद्धिक, भाषिक और भावनात्मक विकास का आधार है। जब अभिभावक मातृभाषा को अपने बच्चों की सीखने की प्रक्रिया से जोड़ेंगे, तब समाज में मातृभाषा के प्रति सम्मान, गर्व और स्वीकृति का वातावरण विकसित होगा।

निष्कर्ष

प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यंत सहायक

है। इससे न केवल सीखने के लिए सुगम वातावरण बनता है, बल्कि यह बालकों को संज्ञानात्मक, भावात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की आधारशिला भी प्रदान करता है। बच्चे अपनी घर की भाषा में प्रभावी तरीके से सोच-समझ व विचारों को अभिव्यक्त कर पाते हैं, जिससे आत्मविश्वास, सृजनशीलता और आलोचनात्मक चिंतन विकसित होता है। किन्तु वर्तमान समय में इसका सफल कार्यान्वयन बहुआयामी चुनौतियों से घिरा हुआ है। इसमें भाषाओं की विविधता से उत्पन्न जटिलताएँ, शैक्षिक संसाधनों की अपर्याप्तता, उचित प्रशिक्षण का अभाव, वैश्वीकरण का प्रभाव, सामाजिक प्रस्थिति से जोड़ कर देखना तथा उच्च शिक्षा में संक्रमण से जुड़ी चुनौतियाँ सम्मिलित हैं। अभिभावकों द्वारा मातृभाषा शिक्षा माध्यम की प्रासंगिकता को स्वीकार करने के बाद भी प्राथमिकता न मिलना, उनके कथित सामाजिक-आर्थिक हितों को दर्शाता है। मातृभाषा आधारित शिक्षा की प्रभावशीलता के लिए आवश्यक है कि नीति-निर्माता, शिक्षक और अभिभावक एक समन्वित प्रयास करें, जिससे शिक्षा नीति में भाषाई विविधता का सम्मान, शिक्षण सामग्री की उपलब्धता और संसाधनों की समानता सुनिश्चित की जा सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने मातृभाषा शिक्षा माध्यम की व्यापकता को स्वीकार किया है, जिसके द्वारा समावेशी और प्रभावी शैक्षिक वातावरण निर्मित किया जा सकता है। अतः यह एक शैक्षिक विकल्प नहीं, बल्कि एक सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

रा.शै.अ.प्र.प. 2018. भाषा शिक्षण हिन्दी भाग 1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनसुंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

शिक्षा मंत्रालय. 2020. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार, नई दिल्ली

शिक्षा मंत्रालय. 1966. रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन 1964-66: एजुकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट. पृ.सं.13. भारत सरकार, नई दिल्ली

रा.शै.अ.प्र.प. 2006. रिमझिम 1. पुनर्मुद्रण संस्करण 2021. राष्ट्रीय शैक्षिक अनसुंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

चॉम्स्की, एन. 1957. सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स. पुनर्मुद्रण संस्करण 2002. परिचय पृ.सं. 13. मौनेट, न्यूयार्क

रा.शै.अ.प्र.प. 2009. भारतीय भाषाओं का शिक्षण. राष्ट्रीय फोकस समूह का आधारपत्र. पृ.सं. 3. राष्ट्रीय शैक्षिक अनसुंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

क्रेशन, एस. डी. 1982. प्रिंसिपल्स एण्ड प्रेक्टिस इन सैकेंड लैंग्वेज एक्विजिशन.पहला इंटरनेट संस्करण जुलाई 2009. पृ.सं. 15-16.पर्गमान, ऑक्सफोर्ड

रा.शै.अ.प्र.प. 2010. समझ का माध्यम. पुनर्मुद्रण संस्करण जून-2021. राष्ट्रीय शैक्षिक अनसुंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

सुंदरराजन, जी. 2024. व्हाय मदर टंग एजुकेशन होल्ड्स द की टू अनलॉकिंग एवरी चाइल्ड्स पोटेंशियल,यूनेस्को

वूलार्ड, के. (1998). *इंट्रोडक्शन: लैंग्वेज आइडियोलॉजी ऐज अ फील्ड ऑफ इन्क्वायरी*. इन बी. शीफेलिन, के. वूलार्ड, & पी. क्रॉस्क्रिटी (संपादक), *लैंग्वेज आइडियोलॉजीज़: प्रैक्टिस एंड थ्योरी* (पृ. 3–50). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

छत्रिया, के. (1968). *मातृभाषा शिक्षण*. पृष्ठ सं. 5.विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

स्कूटनाब-कैंगस, टी. (1984). *बाइलिंग्वलिज़्म ऑर नॉट: द एजुकेशन ऑफ माइनॉरिटीज*. क्लेवेडन: एजुकेशनल मैटर्स

मान्योनी, जे., मबोरी, बी., & ओकवाको, ई. (2016). एटीट्यूड ऑफ टीचर्स टुवर्ड्स यूज ऑफ मदर टंग ऐज मीडियम ऑफ इन्स्ट्रक्शन इन लोअर प्राइमरी स्कूल्स इन बुंगोमा साउथ सब-काउंटी, केन्या. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड रिसर्च.4(8), पृ. 315-334

शाह, पी. के. 2017. गांधीजीज़ व्यूज़ ऑन बेसिक एजुकेशन एंड इट्स रिलिवेंस. पुणे रिसर्च: एन इंटरनेशनल जर्नल इन इंग्लिश 3(4)

वायगोत्स्की, एल. एस. 1978. माइंड इन सोसाइटी: द डेवलपमेंट ऑफ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेसज. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

पियाजे, जे. 1954. द कंस्ट्रक्शन ऑफ रियलिटी इन द चाइल्ड. पृ. 357. बेसिक बुक्स, न्यूयार्क

चॉम्स्की, एन. 1957. सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स. पुनर्मुद्रण संस्करण 2002. परिचय पृ.सं. 13. मौनेट, न्यूयार्क

सिन्हा, बी. के. 1939. द वर्धा एजुकेशन स्कीम. जर्नल ऑफ द रॉयल सोसाइटी ऑफ आर्ट्स 87(4514), पृ. 729

इंडिया. यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन. 1951. द रिपोर्ट ऑफ द यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन.पुनर्मुद्रण संस्करण 1963. मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, सिविल लाइन्स, पृष्ठ सं. 109

कोठारी, डी. एस. (1966). *रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमिशन (1964–66): एजुकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट*. मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया

किन्याडुका, बी. डी. एंड किवारा, जे. एफ. (2013). लैंग्वेज ऑफ़ इंस्ट्रक्शन एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन क्वालिटी ऑफ़ एजुकेशन इन सेकेंडरी स्कूल्स: एक्सपीरियंसेज़ फ्रॉम मोरोगोरो रीजन, टैंज़ानिया. जर्नल ऑफ़ एजुकेशन एंड प्रैक्टिस, 4(9), 90–95

एज़िओकोली, एफ. ओ. तथा उग्वू. 2019. पेरेंट्स, टीचर्स एंड स्टूडेंट्स बिलीफ्स अबाउट द यूज़ एंड स्टडी ऑफ मदर-टंग इन द सेकेंडरी स्कूल्स इन अकिन्येले लोकल गवर्नमेंट एरिया, ओयो स्टेट, नाइजीरिया. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड लिटरेसी स्टडीज़, 7(2), 82–93

चाकमा, जे. 2012. पर्सेप्शन ऑफ पेरेंट्स एंड टीचर्स ऑफ चाकमा कम्युनिटी टुवर्ड्स मदर टंग-बेस्ड मल्टीलिंग्वल एजुकेशन एट अर्ली प्राइमरी लेवल (डॉक्टोरल डिज़र्टेशन, बीआरएसी यूनिवर्सिटी)

नाओम, एन. और सारा, ए. 2014. मदर टंग इन इन्स्ट्रक्शन: द रोल ऑफ एटिट्यूड इन द इम्प्लीमेंटेशन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन सोशल साइंसेज़, 4(1), 77-87

झिंगरन, डी. 2009. हंड्रेड्स ऑफ होम लैंग्वेजेस इन द कंट्री एंड मैनी इन मोस्ट क्लासरूम्स: कोपिंग विद डाइवर्सिटी इन प्राइमरी एजुकेशन इन इंडिया. सोशल जस्टिस थ्रू मल्टीलिंगुअल एजुकेशन, 250, 267

मेगनाथन, आर. 2011. लैंग्वेज पॉलिसी इन एजुकेशन एंड द रोल ऑफ इंग्लिश इन इंडिया: फ्रॉम लाइब्रेरी लैंग्वेज टू लैंग्वेज ऑफ एम्पावरमेंट. ऑनलाइन सबमिशन

ट्रुजिलो, जे. एस. (2020), द *यूज ऑफ मदर टंग इन इन्स्ट्रक्शन: प्यूपिल्स परफॉर्मेंस अक्रॉस द इयर्स*. ग्लोबस जर्नल

ऑफ प्रोग्रेसिव एजुकेशन. 10(1). पृ. 59-67

मबिलिसा व अन्य (2020). टीचर्स' पर्सेप्शन्स ऑन यूज़िंग द मदर टंग ऐज अ मीडियम ऑफ इंस्ट्रक्शन इन द लोअर लेवल्स ऑफ प्राइमरी स्कूल इन द मन्ज़िनी रीजन ऑफ द किंगडम ऑफ इस्वातिनी. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च, 7(10), 227–248

मन्योन्यी व अन्य (2016). *एटिट्यूड ऑफ टीचर्स टुवर्ड्स यूज़ ऑफ मदर टंग ऐज मीडियम ऑफ इंस्ट्रक्शन इन लोअर प्राइमरी स्कूल्स इन बोंगोमा साउथ सब-काउंटी, केन्या*. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड रिसर्च, 4(8), 315–334

विल्लाल्बा, वी. एल. 2013. मदर टंग ऐज़ मीडियम ऑफ इन्स्ट्रक्शन: पेरेंट्स एंड टीचर्स एटिट्यूड्स एंड प्यूपिल्स' लिसनिंग कॉम्प्रिहेन्शन. अनपब्लिश्ड मास्टर्स थीसिस

शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली का एकीकरण: संभावनाएँ, चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. सुनीता सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
nitivasudev@gmail.com

सर्वेश्वर त्रिपाठी
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
tiwariankit0746@gmail.com

प्रो. सुस्मिता लाख्यानी
प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष व संकायाध्यक्ष, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
susmitalakhyani@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत विश्लेषणात्मक शोध पत्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों के अंतर्गत भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण की संभावनाओं, अंतर्निहित चुनौतियों और उनके व्यावहारिक समाधानों का गहन अन्वेषण करता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भावी शिक्षकों (बी.एड. एवं एम.एड. प्रशिक्षुओं) में भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति विद्यमान अवधारणात्मक समझ और इसके शैक्षणिक अनुप्रयोगों के प्रति उनके दृष्टिकोण का मूल्यांकन करना है। गुणात्मक अनुसंधान विधि का अनुसरण करते हुए, इस अध्ययन में 70 भावी शिक्षकों से अर्ध-संरचित साक्षात्कारों और प्रश्नावली के माध्यम से अनुभवजन्य आंकड़े एकत्रित किए गए हैं। आंकड़ों का विश्लेषण यह उद्घाटित करता है कि यद्यपि नीतिगत स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा का समावेशन अनिवार्य किया गया है, तथापि कार्यान्वयन के स्तर पर गंभीर संरचनात्मक एवं व्यावहारिक चुनौतियां विद्यमान हैं। अध्ययन के निष्कर्ष यह इंगित करते हैं कि अधिकांश प्रशिक्षुओं में भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति समझ अत्यंत सीमित है और वे प्रासंगिक शिक्षण सामग्री, मानकीकृत पाठ्यपुस्तकों तथा स्वदेशी शोधों की अनुपलब्धता के कारण इसे आत्मसात करने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, आधुनिक पश्चिमी पाठ्यक्रम के साथ पारंपरिक ज्ञान का सामंजस्य स्थापित करना एक बड़ी बाधा के रूप में उभरा है। यह शोध पत्र अनुशंसा करता है कि 'ज्ञानमीमांसीय न्याय' की पुनर्स्थापना हेतु केवल पाठ्यक्रम में बदलाव पर्याप्त नहीं है, अपितु 'सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र' का विकास और शिक्षकों के लिए व्यापक क्षमता निर्माण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन अनिवार्य है, ताकि भावी शिक्षक औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त होकर एक समग्र, मूल्य-आधारित और राष्ट्र-केंद्रित शिक्षा प्रदान करने में सक्षम हो सकें।

मुख्य शब्द: *भारतीय ज्ञान प्रणाली, शिक्षक-शिक्षा, एकीकरण, संभावना, चुनौतियाँ, समाधान*

पृष्ठभूमि

भारतीय परंपरा में विकसित भारतीय ज्ञान प्रणाली हज़ारों वर्षों के चिंतन और अनुभवों से परिष्कृत हुई है। यह केवल दर्शन और आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं है, अपितु यह एक व्यापक संरचना है, जो 'परा' (आध्यात्मिक/आत्मिक ज्ञान) और 'अपरा' (लौकिक/भौतिक ज्ञान) के बीच एक अद्वितीय संतुलन स्थापित करती है। जैसा कि चटर्जी (2025) रेखांकित करते हैं, यह प्रणाली दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, कृषि,

वास्तुकला, और राजनीति शास्त्र, जैसे विविध विषयों से समृद्ध है, जो मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। भारतीय मनीषा में ज्ञान को मुक्ति का साधन मानते हुए *"सा विद्या या विमुक्तये"* कहा गया है, जिसका अर्थ है विद्या वही है, जो संकीर्णताओं से मुक्त करे।

भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल सूचनाओं का ऐतिहासिक संग्रह मात्र नहीं है, अपितु यह एक जीवंत और सतत प्रवाह है, जो अपनी समृद्धि, गहनता और व्यापकता के साथ न केवल भारतीय बल्कि वैश्विक जीवन शैली को दिशा देने में सक्षम है। यह प्रणाली *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* की उस उदात्त भावना को उद्घाटित करती है, जो प्रत्येक प्राणी में एक ही ईश्वरीय सत्ता का दर्शन करती है। भारतीय मनीषा में ज्ञान को कभी भी जीवन से पृथक एक अमूर्त अवधारणा के रूप में नहीं देखा गया; इसके विपरीत, यह सैद्धांतिक ज्ञान और व्यावहारिक अनुप्रयोगों का एक ऐसा अद्भुत संगम है, जो व्यक्ति के सतत अनुभवों और जीवन के विभिन्न पहलुओं की गहराई से जुड़ा हुआ है। शिक्षक-शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में, इस प्रणाली की समग्रता, 'स्व' की प्राप्ति, व्यवहारिकता और सांस्कृतिक पहचान का निर्माण आधारभूत स्तंभ हैं। जब हम शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण की बात करते हैं, तो हमारा उद्देश्य भावी शिक्षकों को केवल एक पाठ्यक्रम पढ़ाना नहीं होता, बल्कि उन्हें उस दृष्टि से संपन्न करना होता है, जहाँ ज्ञान साध्य बन सके।

भारतीय ज्ञान परंपरा की ज्ञानमीमांसा को समझने के लिए हमें इसके मूल स्रोतों की ओर देखना होगा। महर्षि पतंजलि ने ज्ञान प्राप्ति के साधनों की अत्यंत सूक्ष्म व्याख्या की है। योगसूत्र के प्रथम अध्याय में वे स्पष्ट करते हैं कि केवल शास्त्रों (श्रुति) या तर्क (अनुमान) से प्राप्त ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, अपितु समाधि और प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त 'प्रज्ञा' सर्वोच्च है। वे कहते हैं: *«श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया...»* (पतंजलि योगसूत्र, 1/49)। इसका अर्थ है कि प्रत्यक्ष अनुभव (प्रज्ञा) सीधे विषय की विशिष्टता को स्पष्ट करता है, जो सामान्य शब्दों या अनुमानों से परे है। इसी प्रकार, श्रीमद्भगवद्गीता में भी ज्ञान की पवित्रता और उसके अनुभवजन्य पक्ष पर बल दिया गया है। भगवान कृष्ण कहते हैं: *«न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते»* (श्रीमद्भगवद्गीता, 4/38), जिसका तात्पर्य है कि इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है और यह ज्ञान समय के साथ कर्मयोग द्वारा शुद्ध हुए अंतःकरण में स्वयं प्रकाशित होता है। यह दार्शनिक आधार शिक्षक-शिक्षा के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह स्थापित करता है कि शिक्षक का कार्य केवल सूचना का हस्तांतरण नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों के भीतर उस अंतर्निहित ज्ञान को जागृत करना है, जो उसे पवित्र और मुक्त करता है।

इस प्रक्रिया को भाषाई और तकनीकी रूप से समझने के लिए महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी एक स्पष्ट मार्गदर्शिका है। पाणिनि ने शिक्षा, विद्या और ज्ञान के भेद को धातुओं के माध्यम से वैज्ञानिक रूप से स्थापित किया है। उन्होंने 'शिक्ष्' धातु (शिक्ष् विद्योपादाने, धातु-संख्या 605) से 'शिक्षा' शब्द की व्युत्पत्ति को उद्धृत किया, जो सीखने और सिखाने की प्रक्रिया को दर्शाता है। वहीं, 'विद्' धातु (विद् ज्ञाने, धातु-संख्या 1064) से 'विद्या' शब्द बना, जो उस विषयवस्तु को संदर्भित करता है, जिसका ज्ञान दिया जाना है। अंततः, 'ज्ञा' धातु (ज्ञा अवबोधने, धातु-संख्या 1508) से 'ज्ञान' शब्द बना, जो अवबोधन या समझ की वह अवस्था है, जहाँ विषय आत्मसात हो जाता है (पाणिनि, अष्टाध्यायी)। इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दृष्टि में शिक्षा एक प्रक्रिया है और विद्या एक माध्यम है, किन्तु 'ज्ञान' वह अंतिम साध्य है जहाँ पहुंचना ही शिक्षा का लक्ष्य है। आधुनिक शिक्षक-शिक्षा में प्रायः हम प्रक्रिया पर तो ध्यान देते हैं, लेकिन उस अंतिम 'ज्ञान' या आत्म-बोध को विस्मृत कर देते हैं, जो शिक्षा का मूल उद्देश्य है। भारतीय ज्ञान प्रणाली इस अंतर्विषयकता को बनाए रखती है, जहाँ ज्ञान को अलग-अलग टुकड़ों में न बांटकर समाज, संस्कृति, धर्म और दर्शन के एक एकीकृत रूप में देखा जाता है, जो अंततः 'पंचकोशीय व्यक्तित्व'

के विकास और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है।

किन्तु, ऐतिहासिक कालक्रम में इस उन्नत परंपरा को एक गहरे संकट का सामना करना पड़ा। धर्मपाल (1983) ने अपनी कालजयी कृति *'द ब्यूटीफुल ट्री'* में ब्रिटिश अभिलेखों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि 18वीं शताब्दी तक भारत में एक अत्यंत उन्नत देशज शिक्षा प्रणाली विद्यमान थी, जो समाज के हर वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करती थी। परन्तु औपनिवेशिक नीतियों ने इस 'रमणीय वृक्ष' की जड़ों को सुखा दिया। मिश्र एवं पांडेय (2025) इसे 'ज्ञानमीमांसीय अन्याय' के रूप में परिभाषित करते हैं। उनका तर्क है कि औपनिवेशिक काल में भारतीय ज्ञान, भाषाओं और शिक्षण पद्धतियों की जो उपेक्षा हुई, वह केवल एक राजनीतिक घटना नहीं थी, बल्कि एक सुनियोजित 'संज्ञानात्मक साम्राज्य' की स्थापना थी। इसके कारण, हमारी अपनी ज्ञान परंपराओं को 'अवैज्ञानिक' और 'पुराना' मानकर हाशिये पर धकेल दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी शिक्षा के इस औपनिवेशीकरण का प्रभाव बना रहा, जहाँ औपचारिक पाठ्यचर्या और शिक्षण पद्धतियों में स्व-भाषा और भारतीय ज्ञान की अनदेखी की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि आज के शिक्षार्थियों और भावी शिक्षकों में अपनी सांस्कृतिक पहचान, राष्ट्र और निज भाषा के प्रति एक गहरा संशय और हीनता का भाव घर कर गया है। वे ज्ञान के उस वास्तविक और सत्यापित दृष्टिकोण के प्रति उदासीन हैं, जो उनकी अपनी विरासत है।

अतः, शिक्षक-शिक्षा के पुनर्गठन में भारतीय ज्ञान प्रणाली का एकीकरण एक आवश्यकता पक्ष है। भारतीय परंपरा में शिक्षणशास्त्रीय उपागमों की एक समृद्ध विरासत है। कपूर एवं सिंह (2005) के अनुसार, इसमें मौखिक परंपरा, अनुभवात्मक शिक्षा और समग्र शिक्षा पद्धति का अद्भुत समन्वय मिलता है, जिसे बाद में महर्षि अरविंद और स्वामी विवेकानंद ने अपने शैक्षिक दर्शन में पल्लवित किया। यह परंपरा केवल बौद्धिक नहीं थी, बल्कि इसमें शास्त्रीय संगीत, नृत्य और चित्रकला, जैसी कलाओं का भी समावेश था, जिसके लिए गुरु के व्यक्तिगत मार्गदर्शन की आवश्यकता होती थी (खन्ना, 2023)। शिक्षक और विद्यार्थी का संबंध यहाँ केवल एक पेशेवर (व्यावसायिक) संबंध न होकर एक आध्यात्मिक अनुबंध था। तैत्तिरीय उपनिषद् का मंत्र *«ॐ सहनाववतु...»* (तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/1) इसी सह-अस्तित्व और सहयोगात्मक अधिगम का उद्घोष करता है, जहाँ शिक्षक और छात्र दोनों साथ-साथ तेजस्वी ज्ञान प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं।

इस प्रणाली में शिक्षक की भूमिका केंद्रीय और सर्वोच्च है। जैसा कि सलूजा (2023) उल्लेख करते हैं, 'आचार्य' वह विद्वान है, जो अपने आचरण से सिखाता है और ज्ञान के एक विशिष्ट क्षेत्र चाहे वह वेद, आयुर्वेद या शिल्प शास्त्र में विशेषज्ञता रखता है। आचार्य सुनिश्चित करते हैं कि यह बौद्धिक विरासत सुरक्षित रहे और अगली पीढ़ी तक पहुंचे। वहीं, 'गुरु' की भूमिका इससे भी व्यापक है। राधाकृष्णन (1927) के अनुसार, गुरु वह है जो अज्ञान के अंधकार को दूर करता है और छात्र की अद्वितीय क्षमताओं को पहचानकर उसकी आत्म-खोज को प्रोत्साहित करता है। भारतीय शिक्षा पद्धति 'विद्यार्थी -केंद्रित' थी, जहाँ शिक्षक अपनी विधियों को विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप ढालता था (फेरर, 2018)। तिवारी (2020) स्पष्ट करते हैं कि «विद्यमर्थयते कामयते वेति विद्यार्थी» अर्थात जो ज्ञान की कामना से गुरु के पास जाए, वह विद्यार्थी है। यह शब्द केवल परीक्षा पास करने वाले छात्र एवं छात्राओं को इंगित नहीं करता है, बल्कि जीवन के सभी पहलुओं का विकास करने वाले साधक का परिचायक है।

ऐतिहासिक कालक्रम में, विशेष रूप से औपनिवेशिक काल के दौरान, भारत की समृद्ध ज्ञान परंपरा को एक गहरे अस्तित्ववादी संकट का सामना करना पड़ा। मिश्र एवं पांडेय (2025) ने इस प्रक्रिया को 'ज्ञानमीमांसीय अन्याय'

के रूप में परिभाषित किया है। उनका तर्क है कि औपनिवेशिक शासकों ने पश्चिमी शिक्षा प्रणाली और अंग्रेजी भाषा को थोपकर एक 'संज्ञानात्मक साम्राज्य' स्थापित किया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय ज्ञान, देशज भाषाओं और शिक्षण पद्धतियों की सुव्यवस्थित उपेक्षा की गई। इस प्रक्रिया ने न केवल भारत की अपनी वैज्ञानिक और शैक्षिक उपलब्धियों को 'अवैज्ञानिक' या 'पुरातन' मानकर हाशिये पर धकेल दिया, बल्कि भारतीय जनमानस में अपनी ही संस्कृति के प्रति हीनता का भाव भी उत्पन्न किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी शिक्षा के इस औपनिवेशीकरण का प्रभाव बना रहा, जहाँ औपचारिक पाठ्यचर्या में स्व-भाषा और भारतीय ज्ञान की अनदेखी की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि आज के शिक्षार्थियों और भावी शिक्षकों में अपनी सांस्कृतिक पहचान, राष्ट्र और निज भाषा के प्रति एक गहरा संशय और आत्मविश्वास की कमी घर कर गई है। वे ज्ञान के उस वास्तविक और सत्यापित दृष्टिकोण से अनभिज्ञ हैं, जो उनकी अपनी विरासत है।

वर्तमान परिदृश्य में, राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षक-शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि शिक्षक ही भावी पीढ़ी के निर्माता होते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इस ऐतिहासिक भूल को सुधारने और शिक्षा को 'भारत-केंद्रित' बनाने का आह्वान किया है (शिक्षा मंत्रालय, 2020)। हलोई एवं खरबीरमबई (2025) के अनुसार, शिक्षकों को केवल आधुनिक शिक्षण विधियों का ही नहीं, बल्कि अपने देशज 'शिक्षण शास्त्र' का भी ज्ञान होना चाहिए। प्रश्न यह है कि जिस ज्ञान प्रणाली को सदियों तक उपेक्षित रखा गया, उसे आधुनिक शिक्षक-शिक्षा पाठ्यचर्या में पुन: कैसे स्थापित किया जाए? इसका एकीकरण केवल एक विषय के रूप में न होकर, शिक्षण की अंतर्दृष्टि के रूप में कैसे हो, ताकि भावी शिक्षकों में अपनी विरासत के प्रति एक गहन और आलोचनात्मक बोध विकसित हो सके? इन्हीं प्रश्नों की पड़ताल हेतु और शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रभावी एकीकरण की संभावनाओं, चुनौतियों और समाधानों का विश्लेषण करने के उद्देश्य से इस शोध को आयोजित किया गया है।

इस प्रकार, जहाँ भावी शिक्षक अपनी जड़ों से कटकर 'स्व' की पहचान के भय से जूझ रहे हैं, वहाँ भारतीय ज्ञान प्रणाली का एकीकरण संजीवनी का कार्य कर सकता है। पाटिल एवं पाटिल (2023) के अनुसार, प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा में नैतिकता, आध्यात्मिकता और मनोवैज्ञानिक मूल्यों का जो समावेश था, वह आज के तनावपूर्ण वातावरण में अत्यंत प्रासंगिक है। शिक्षक-शिक्षा में इसका एकीकरण केवल अतीत का गौरवगान नहीं है, बल्कि यह भविष्य के लिए एक सक्षम, चरित्रवान और सांस्कृतिक रूप से जागरूक शिक्षक तैयार करने का एकमात्र मार्ग है। यह एकीकरण ही वह माध्यम है, जिससे हम 'ज्ञानमीमांसीय अन्याय' का प्रतिकार कर सकते हैं और भारत को पुनः एक 'ज्ञान आधारित समाज' के रूप में प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

शोध प्रश्न:

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण के लिए किस प्रकार का सैद्धांतिक और नीतिगत ढांचा प्रदान करती है?

2. वर्तमान शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में भारतीय ज्ञान प्रणाली को एकीकृत करने की क्या संभावनाएं और व्यावहारिक अनुप्रयोग विद्यमान हैं?

3. शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली के कार्यान्वयन में आने वाली प्रमुख संरचनात्मक एवं व्यावहारिक चुनौतियां क्या हैं और इनका प्रभावी समाधान किस प्रकार संभव है?

शोध उद्देश्य:

1. शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में विश्लेषण करना।

2. शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण की संभावनाओं, विद्यमान चुनौतियों और उनके निवारण हेतु व्यावहारिक समाधानों का अन्वेषण करना।

शोध विधि:

इस अध्ययन की प्रकृति गुणात्मक है, जिसका ध्येय भावी शिक्षकों की भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रति समझ और उनके दृष्टिकोण का मूल्यांकन करना है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र, शिक्षक-शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण की संभावनाओं, चुनौतियों एवं समाधानों के अन्वेषण पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन में 'विश्लेषणात्मक शोध विधि' का प्रयोग किया गया है, जिसमें भारतीय शिक्षा में निहित औपनिवेशिक ढांचे की जांच करते हुए भारतीय शिक्षा प्रणाली व शिक्षण पद्धति को पुनर्स्थापित करने की पड़ताल की गई है। शोध में परिणामों की दार्शनिक मीमांसा 'व्याख्यावादी प्रतिमान' के माध्यम से की गई है, क्योंकि भारतीय ज्ञान प्रणाली जैसे गहन विषय को केवल सांख्यिकीय आँकड़ों से ही नहीं, अपितु मानवीय संदर्भों और भावी शिक्षकों के अंतर्मन में निहित विश्वासों के गुणात्मक विश्लेषण से ही समझा जा सकता है। शोध उद्देश्य के संदर्भ में एन.ई.पी. के पैरा (4.7, 4.12, 4.16, 4.27, 4.28, 4.29, 10.2, 11.2, 15.1, 16.4, 22.1, 22.9), जिनमें भारतीय ज्ञान प्रणाली में विभिन्न विषयगत ज्ञान, भाषाओं की एकता, भारतीय कला और संस्कृति के सुदृढ़ीकरण, बहुविषयक दृष्टिकोण, भारतीय शिक्षण विधियों के समावेशन आदि पर बल दिया गया है, को आधार बनाते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति के दस्तावेज की जांच की गई है। शोध के न्यादर्श संकलन हेतु केंद्रीय संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग का चयन किया, जहाँ से 'गैर-यादृच्छिक उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि' के माध्यम से 70 भावी शिक्षकों (जिनमें बी.एड. के प्रशिक्षु एवं एम.एड. के भावी शिक्षक प्रशिक्षक सम्मिलित हैं) को न्यादर्श (सैम्पल) के रूप में चयनित किया गया। इस विशिष्ट चयन प्रक्रिया का औचित्य यह था कि उन प्रतिभागियों तक पहुँचा जा सके, जो शिक्षा शास्त्र की पाठ्यचर्या आधारित दार्शनिक, सामाजिक, शैक्षिक बारीकियों को समझते हैं और जो भविष्य में एन.ई.पी. 2020 के अनुरूप भारतीय ज्ञान प्रणाली को कक्षाओं में ले जाने के लिए उत्तरदायी होंगे। प्रदत्त संकलन की प्रक्रिया में मिश्रित दृष्टिकोण अपनाते हुए 'अर्ध-संरचित साक्षात्कार' और 'स्व-निर्मित प्रश्नावली' का उपयोग किया गया है। प्रश्नावली के अंतर्गत 4 खंड थे, जिसके पहले खंड में प्रशिक्षु शिक्षक की सामान्य जानकारी पर आधारित प्रश्न थे, जबकि दूसरे भाग में 20 प्रश्न थे, जो शोधकर्ता को प्रतिभागियों के साथ एक संवाद स्थापित करने और उनके अनुभवों को मानवीय धरातल पर समझने का अवसर प्रदान करते हैं। ये प्रश्न यह जानने में भी सहायक हैं कि भावी शिक्षक भारतीय ज्ञान परंपरा की दार्शनिक जड़ों को कैसे देखते हैं और पाठ्यक्रम में इनके समावेश के दौरान वे किन व्यावहारिक और वैचारिक बाधाओं का सामना करते हैं। प्रश्नावली के इन चार खंडों का निर्धारण विषयगत गहनता के आधार पर किया गया। प्रथम खंड (प्रश्न 1-5) मुख्य रूप से 'पाठ्यक्रम और सामग्री' तथा 'मूल्यांकन एवं प्रभाव' के विषय पर केंद्रित था, जिसमें यह जांचने का प्रयास किया गया कि क्या वर्तमान पाठ्यक्रम में समकालीन और पारंपरिक ज्ञान (जैसे सुश्रुत कार्यक्रम, वैज्ञानिक सिद्धांत) का संतुलन संभव है और क्या गुणात्मक मूल्यांकन विधियां नैतिक मूल्यों को मापने में सक्षम हैं। द्वितीय खंड (प्रश्न 6-10) पूर्णतः 'शिक्षकों की भूमिका और प्रशिक्षण' के विषय पर आधारित था, जिसके माध्यम से यह अन्वेषण किया गया कि क्या भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित कार्यशालाएं और व्यावहारिक प्रशिक्षण शिक्षकों के दृष्टिकोण में

सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं और क्या वे स्वयं को केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित रखते हैं। **तृ**तीय खंड (प्रश्न 11-15) में 'संसाधन और वित्तीय बाधाएँ' तथा 'नीति और प्रशासनिक क्रियान्वयन' की थीम्स को समाहित किया गया, जिसमें पुस्तकालयों में संदर्भ सामग्री की उपलब्धता, डिजिटल संसाधनों (ई-पुस्तकों, टर्मिनोलॉजी सॉफ्टवेयर आदि) की कमी और संस्थागत या सरकारी अनुदान के अभाव जैसी, चुनौतियों पर प्रश्न पूछे गए। अंततः, चतुर्थ खंड (प्रश्न 16-20) में 'सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण' तथा 'उद्योग और रोजगार पर प्रभाव' की थीम्स को एकीकृत किया गया, जहाँ यह विश्लेषण किया गया कि क्या भारतीय ज्ञान परंपरा को रूढ़िवादी माना जाता है या इसे वैश्विक मंच (योग, शांति शिक्षा) पर स्वीकार्यता मिल रही है, साथ ही क्या यह ज्ञान प्रणाली विद्यार्थियों के लिए भविष्य में उद्यमशीलता और रोजगार के नए अवसर सृजित करने में सक्षम है। शोध की वैज्ञानिकता और विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए, एकत्रित प्रदत्त (डेटा) का विश्लेषण 'विषयगत विश्लेषण प्रक्रिया' (थीमैटिक) के माध्यम से किया गया तथा प्रदत्त को पाठ्यक्रम, शिक्षक-प्रशिक्षण, संसाधन अभाव और सामाजिक दृष्टिकोण, जैसे मुख्य विषयों (थीम्स) और पैटर्नों को वैज्ञानिक रूप से वर्गीकृत किया। शोध के निष्कर्षों की प्रमाणिकता सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न स्रोतों/ विधियों का प्रयोग करते हुए आंकड़ों का परस्पर मिलान एवं तुलना प्रदत्त त्रिकोणीकरण (ट्रैंगुलेशन) की प्रक्रिया द्वारा किया गया है। शोध नैतिकता के उच्च मानदंडों का पालन करते हुए, प्रतिभागियों की स्वैच्छिक सहमति और गोपनीयता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई तथा शोध की वैधता को पुष्ट करने के लिए विशेषज्ञ परीक्षण, साक्षात्कारों का रिकॉर्ड एवं ट्रांस्क्रिप्शन तथा एक व्यवस्थित थीमैटिक फ्रेमवर्क का कठोरता से अनुपालन किया गया। वस्तुतः, यह शोध विधि इस मान्यता पर आधारित है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली को पाठ्यक्रम में केवल एक विषय के रूप में नहीं, बल्कि एक समग्र दृष्टिकोण के रूप में देखा जाना चाहिए और हमारे द्वारा अपनाई गई यह गुणात्मक विधि इस बात की पुष्टि करती है कि जब तक हम शिक्षकों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन और उनके प्रशिक्षण में व्यावहारिक अनुभव को शामिल नहीं करेंगे, तब तक इस ज्ञान का एकीकरण अपूर्ण रहेगा। अतः यह विधि न केवल अकादमिक दृष्टि से परिपक्व है, बल्कि यह भारतीय शिक्षा के 'उपनिवेशीकृत प्रतिरूप' के उन्मूलन और एक सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण शास्त्र के निर्माण की दिशा में एक सशक्त और प्रामाणिक हस्तक्षेप है, जो भविष्य के शोधार्थियों के लिए एक मार्गदर्शिका का कार्य करेगी।

शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में विश्लेषण: शोध उद्देश्य 1 के संदर्भ में

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में एक 'प्रतिमान विस्थापन' का प्रतिनिधित्व करती है। इसका दार्शनिक अधिष्ठान भारत की सनातन ज्ञान परंपरा को समकालीन वैश्विक चुनौतियों और आवश्यकताओं के साथ संश्लेषित करना है। यह नीति शिक्षा को केवल साक्षरता या कौशल अर्जन तक सीमित न रखकर, इसे संवैधानिक मूल्यों, राष्ट्रीय गौरव और वैश्विक नागरिकता से युक्त 'समग्र मानव निर्माण' की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करती है।

शिक्षण शास्त्र के स्तर पर, नीति (विशेषकर पैरा 4.7) 'कला-समन्वित शिक्षा' को एक बहुविषयक उपकरण के रूप में स्थापित करती है। यह दृष्टिकोण रटंत विद्या का निषेध करते हुए अमूर्त अवधारणाओं को अनुभवजन्य अधिगम में रूपांतरित करता है, जिससे रचनात्मकता और सांस्कृतिक बोध का विकास होता है। इसके साथ ही, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के निष्कर्षों को स्वीकारते हुए (पैरा 4.12 एवं 4.16), नीति प्रारंभिक बाल्यावस्था में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण की अनिवार्यता को रेखांकित करती है। यह न केवल भाषाई अस्मिता को सुदृढ़ करता है, बल्कि 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की संकल्पना के अंतर्गत राष्ट्रीय एकीकरण को भी बढ़ावा देता है।

पाठ्यचर्या सुधारों के संदर्भ में, एनईपी 2020 'ज्ञान के वि-औपनिवेशीकरण' की दिशा में एक ठोस पहल है। पैरा 4.27 और 4.29 के अंतर्गत भारतीय ज्ञान प्रणाली, जिसमें जनजातीय ज्ञान, एथनो-मेडिसिन और पारिस्थितिक प्रबंधन शामिल हैं, को मुख्यधारा की वैज्ञानिक शिक्षा के समकक्ष वैधता प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त, पैरा 4.28 में 'सद्कर्म' पर आधारित एक विश्लेषणात्मक नैतिक ढाँचा प्रस्तुत किया गया है, जो विद्यार्थियों में पर्यावरणीय संवेदनशीलता और सामाजिक उत्तरदायित्व को पोषित करता है।

उच्च शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में, यह नीति प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों (तक्षशिला, नालंदा आदि) के 'बहुविषयक' आदर्शों और बाणभट्ट वर्णित '64 कलाओं' को पुनर्जीवित करती है। विषयों के बीच के कृत्रिम विभाजन को समाप्त करते हुए, पैरा 15.1 और 15.4 के तहत शिक्षक-शिक्षा को एकाकी संस्थानों से हटाकर बहुविषयक वातावरण में स्थानांतरित करने का प्रस्ताव है। अंततः, व्यावसायिक शिक्षा (पैरा 16.4) और सांस्कृतिक सहभागिता (पैरा 22.1, 'आर्टिस्ट-इन-रेजिडेंस') को अकादमिक मुख्यधारा में लाकर, यह नीति श्रम की गरिमा और अकादमिक जगत व सांस्कृतिक यथार्थ के मध्य की दूरी को पाटने का एक सशक्त रोडमैप प्रस्तुत करती है।

निष्कर्षतः, इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विश्लेषण उपरांत यह ज्ञात होता है कि नीति के आगमन के पश्चात देशज ज्ञान, देशज भाषाओं, समकालीन लोक परम्पराओं, लोक ज्ञान, आयुर्वेद, स्थानीय शिक्षण विधियों की भारतीय संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन हेतु शिक्षक-शिक्षा के संदर्भ में ज्ञानमीमांसीय तौर पर सम्मिलित करने पर बल दिया गया है। इस प्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रम में औपनिवेशिक आधिपत्य हटाते हुए समग्र रूप से परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व को समाप्त कर एक संतुलित समन्वय स्थापित करती है। यह नीति एक ऐसे पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करती है, जहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा, नैतिक मूल्य और आधुनिक कौशल मिलकर एक सशक्त, आत्मनिर्भर और ज्ञान-आधारित समाज की नींव रखते हैं।

शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण की संभावनाओं, विद्यमान चुनौतियों और उनके निवारण हेतु व्यावहारिक समाधानों का अन्वेषण: शोध उद्देश्य 2 के संदर्भ में

भारतीय ज्ञान प्रणाली सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक धरोहर है, जो भारतीय मनीषा तथा बुद्धिमत्ता का प्रतीक है। शिक्षा में, इसका समावेश शिक्षक-विद्यार्थियों को सांस्कृतिक जड़ों से जोड़कर रचनात्मक सोच, समग्र विकास एवं बहुआयामी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने हेतु महत्त्वपूर्ण है। परंतु, आधुनिक शिक्षक-शिक्षा में शामिल करने हेतु पाठ्यक्रम में सामंजस्य, देशज शोध एवं सामग्री, शिक्षक-प्रशिक्षण, डिजिटल संसाधन एवं सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण की चुनौतियाँ बाधक हैं। आलेख संभावनाओं, चुनौतियों एवं समाधानों का विश्लेषण करता है।

विषय (थीम)	एकीकरण की संभावनाएँ	एकीकरण में उत्पन्न चुनौतियाँ	चुनौतियों का समाधान	भावी शिक्षकों की प्रतिक्रिया
1. पाठ्यक्रम और सामग्री	1. भारतीय ज्ञान प्रणाली को पाठ्यक्रम में जोड़ना संभव।	1. वर्तमान पाठ्यक्रम के साथ सामंजस्य बैठाना कठिन।	1. पाठ्यक्रम में समकालीन और पारंपरिक सामग्री के बीच संतुलन स्थापित हो। यथा इसके अंतर्गत भारतीय ज्ञान सुश्रुत कार्यक्रम 2024-25 में वर्णित पारंपरिक	- वर्तमान पाठ्यक्रम के साथ भारतीय ज्ञान प्रणाली का समन्वय स्थापित करने में शिक्षकों को शिक्षण प्रक्रिया, भाषा संबंधी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। - यदि समकालीन और पारंपरिक

			शिक्षा, सभी वैज्ञानिक, पर्यावरणीय एवं मानविकी सिद्धांतों को पाठ्यक्रम में रखें जाने की आवश्यकता है।	दृष्टिकोणों के बीच संतुलन बनाया जाए तो पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली को सफलतापूर्वक सम्मिलित किया जा सकता है।
	2. ऐतिहासिक और वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित सामग्री को शामिल किया जा सकता है।	2. वैध और विश्वसनीय सामग्री की कमी।	2. विशेषज्ञों के सहयोग से प्रामाणिक सामग्री तैयार करना। भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं परम्परा से जुड़े प्रत्येक विशिष्ट विषयवस्तुओं के संदर्भों में व्यापक स्तर पर शोध कार्य हो जिससे प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो सके।	- योग्य और प्रमाणित सामग्री की कमी पाठ्यक्रम में ऐतिहासिक तथ्यों के समावेश को चुनौती देती है। - प्रामाणिक जानकारी के अभाव में विद्यार्थियों में भ्रम उत्पन्न हो सकता है। - विशेषज्ञों के सहयोग से तैयार प्रामाणिक सामग्री से पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण का संतुलन संभव होगा।
	3. विभिन्न ज्ञानानुशासनों में भारतीय ज्ञान प्रणाली को एकीकृत किया जा सकता है।	3. अंतः विषय-विशेषज्ञों की कमी।	3. भारतीय ज्ञान प्रणाली पर आधारित विभिन्न विषयों यथा गणित व ज्योतिष, आयुर्वेद व योग, अर्थशास्त्र व नीतिशास्त्र के मध्य भारतीय मनीषियों के शास्त्र - ग्रंथों को जोड़ते हुए औपनिवेशिक पाठ्यक्रम के समानांतर पाठ्यक्रम विकसित व विस्तारित करना।	- विशिष्ट विषय-विशेषज्ञों की कमी एक बड़ी बाधा है। - गुणवत्तापूर्ण शिक्षण सामग्री और पाठ्यक्रम विकसित करना एक जटिल कार्य है। - विषयानुरूप शिक्षण सामग्री बनाकर पाठ्यक्रम को समृद्ध व प्रासंगिक बना सकते हैं।
	4. डिजिटल और मुद्रित सामग्री उपलब्ध कराई जा सकती है।	4. डिजिटल संसाधनों यथा ई पुस्तकों, ऑनलाइन शोध कार्य की अल्प-उपलब्धता।	4. डिजिटल प्रारूप में शिक्षण सामग्री के निर्माण हेतु आईआईटी एवं एआईसीटीई द्वारा टर्मिनालॉजी एवं अनुवाद करने वाले सॉफ्टवेयर एवं उपकरण विकसित किया जाना।	- डिजिटल संसाधनों पर आधारित पाठ्यक्रम सामग्री बनाना एक चुनौती है। - डिजिटल संसाधनों की अल्प-उपलब्धता छात्रों के लिए विषय को समझने में बाधा है।
	5. प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक भारतीय ज्ञान प्रणाली को एकीकृत तरीके से संगठित किया जा सकता है।	5. अलग-अलग स्तरों पर उपयुक्त पाठ्य- सामग्री का अभाव।	5. प्राथमिक स्तर पर सरल और उच्च स्तर पर शोध-आधारित सामग्री को विकसित किया जाए।	- विभिन्न स्तरों के लिए उपयुक्त पाठ्य सामग्री की कमी चुनौतीपूर्ण है। - अलग-अलग स्तरों पर भारतीय ज्ञान प्रणाली के लिए उपयुक्त सामग्री का अभाव होने से प्रभावी शिक्षण नहीं हो पाता है।
2. शिक्षकों की भूमिका और प्रशिक्षण	6. शिक्षकों को भारतीय ज्ञान प्रणाली के संबंध में प्रशिक्षित किया जा सकता है।	6. अधिकांश शिक्षक भारतीय ज्ञान प्रणाली से अपरिचित हैं।	6.परिचयात्मक पाठ्यक्रम और कार्यशालाओं को आयोजित करना।	- अधिकांश शिक्षक भारतीय ज्ञान प्रणाली से अपरिचित हैं। - भारतीय ज्ञान प्रणाली के बोध हेतु सभी शिक्षकों को प्रशिक्षण देना चुनौतीपूर्ण है। - शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए परिचयात्मक पाठ्यक्रम और कार्यशालाएँ आयोजित करना एक समाधान है।

	7. शिक्षकों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन संभव।	7. भारतीय ज्ञान प्रणाली को अप्रासंगिक मानने की प्रवृत्ति।	7. प्रेरणात्मक और ज्ञानपरक गतिविधियों द्वारा जागरूकता बढ़ाना। इसके लिए भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित ऐतिहासिक व्यक्तित्व के जीवन का वर्णन करना।	- शिक्षक प्रायः भारतीय ज्ञान प्रणाली को अप्रासंगिक मानते हैं। - शिक्षकों में प्रशिक्षण के साथ उनके दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाना होगा।
	8. प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा शिक्षण कौशल को प्रभावी बनाया जा सकता है।	8. अधिकतर प्रशिक्षण सैद्धांतिक होते हैं।	8. नियमित और व्यावहारिक प्रशिक्षण कार्यशालाएँ आयोजित करना एवं भारतीय ज्ञान प्रणाली पर आधारित परियोजना कार्यों का सफल सम्पादन करना।	- शिक्षकों के प्रशिक्षण में मुख्य चुनौती यह है कि अधिकतर प्रशिक्षण सैद्धांतिक होता हैं, जो इस ज्ञान को प्रभावी ढंग से सिखाने के लिए पर्याप्त नहीं है। - व्यवहार पक्ष के स्थान पर केवल सैद्धांतिक होने के कारण शिक्षकों द्वारा भारतीय ज्ञान प्रणाली को कक्षा में शिक्षण हेतु अपनाने में कठिनाई आती है।
	9. संदर्भ सामग्री और दिशा निर्देश विकसित किए जा सकते हैं।	9. सरल और स्पष्ट संदर्भ सामग्री का अभाव।	9. शिक्षकों के लिए मार्गदर्शिका और संदर्भ पुस्तकें तैयार करना।	- शिक्षकों के प्रशिक्षण में बाधा रूप में सरल और स्पष्ट संदर्भ सामग्री का अभाव है, फलस्वरूप इस ज्ञान को समझने और सिखाने में कठिनाई आती है। - संदर्भ सामग्री की कमी के कारण, इस ज्ञान के संदर्भ में शिक्षकों को प्रमुख लेखकों की जानकारी नहीं है। - शिक्षकों के लिए मार्गदर्शिका और संदर्भ पुस्तकें तैयार करना होगा।
3. संसाधन और वित्तीय बाधाएँ	10. पुस्तकालयों में भारतीय ज्ञान प्रणाली से संबंधित संसाधनों व पाठ्यसामग्रियों को संग्रहित किया जा सकता है।	10.पुस्तकालयों में भारतीय ज्ञान प्रणाली संबंधी संदर्भों की कमी।	10. शैक्षिक संस्थानों में पुस्तकालय संसाधनों का विस्तार।	- पुस्तकालयों में भारतीय ज्ञान प्रणाली से जुड़ी सामग्री की कमी शिक्षकों के शोध और शिक्षण को प्रभावित करती है। - पर्याप्त संसाधनों के अभाव के कारण शिक्षकों के लिए गहन अध्ययन व शिक्षण कठिन है। - यदि शैक्षिक संस्थान में इस ज्ञान प्रणाली पर आधारित पुस्तकालय संसाधनों का विस्तार करें, तो शिक्षक भारतीय ज्ञान प्रणाली को बेहतर ढंग से आत्मसात कर सकेंगे।
	11. वित्तीय सहायता प्राप्त करके अनुसंधान को बढ़ावा दिया जा सकता है।	11. शोध और विकास के लिए अनुदान की कमी।	11. सरकारी व निजी संस्थानों से सहयोग लेते हुए भारतीय ज्ञान प्रणाली के संबंध में वित्तीय एवं धरातलीय विस्तार।	- वित्तीय संसाधनों की अनुपलब्धता से शिक्षकों व शोधार्थियों को आवश्यक सामग्री एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने में कठिनाई आती है। - सरकार व निजी संस्थान सहयोग करें तो इस ज्ञान के संवर्धन को बढ़ावा मिल सकता है।

4. सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण	12. भारतीय ज्ञान प्रणाली को समकालीन संदर्भ में प्रस्तुत किया जा सकता है।	12. इसे पारंपरिक और रूढ़िवादी दृष्टिकोण से देखा जाता है।	12. वैज्ञानिक और तर्कसंगत दृष्टिकोण से इसे प्रस्तुत किया जाए।	- भारतीय ज्ञान प्रणाली को पारंपरिक और रूढ़िवादी दृष्टिकोण से देखने के कारण इसको आधुनिक शिक्षा से जोड़ने में संकोच किया जाता है। - सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण इसका समकालीन संदर्भ में स्वीकार किया जाना चुनौतीपूर्ण है। - यदि इसे वैज्ञानिक और तर्कसंगत दृष्टिकोण से शिक्षक कार्यक्रम में प्रस्तुत किया जाए, तो विविध विषयों के अंतर्गत भारतीय ज्ञान प्रणाली को सहजता से एकीकृत किया जा सकता है।
	13. भारतीय ज्ञान प्रणाली को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है।	13.अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसकी प्रासंगिकता को स्वीकार करना कठिन।	13. वैश्विक संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली के महत्त्व को विभिन्न अंतरराष्ट्रीय पटल पर अंतर-विषयात्मक विषय जैसे योग, शांति शिक्षा, आध्यात्मिक उन्नयन हेतु प्रसारित किया जाए।	- अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता को स्वीकार करना औपनिवेशिक एवं पश्चिमी विचार के प्रभावी होने के कारण चुनौतीपूर्ण है। - वैश्विक शिक्षा प्रणाली में शामिल करने के लिए इसकी प्रमाणिकता और प्रभावशीलता को सिद्ध करना होगा।
	14. महिलाओं के योगदान को उजागर किया जा सकता है।	14. प्रचलित धारणा है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में महिलाओं की भूमिका को कमतर आंका जाता है।	14. पाठ्यक्रम में महिला योगदान को विशेष रूप से शामिल करना।	- ऐतिहासिक रूप से महिलाओं के ज्ञान और शिक्षण में योगदान को सीमित रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे इसकी व्यापक स्वीकृति कठिन हो जाती है। - यदि पाठ्यक्रम में महिलाओं के योगदान को विशेष रूप से शामिल किया जाए, तो इससे भारतीय ज्ञान प्रणाली का संतुलित और समावेशी दृष्टिकोण विकसित हो सकता है।
5. मूल्यांकन और प्रभाव	15. भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित मूल्यांकन पद्धति विकसित की जा सकती है।	15. वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली नैतिक और सांस्कृतिक पहलुओं को नहीं मापती।	15. गुणात्मक और मात्रात्मक दृष्टिकोण अपनाना।	- केवल अंकों पर आधारित प्रणाली भारतीय शिक्षा की गहराई और मूल्यों को प्रतिबिंबित नहीं कर पाती। - यदि मूल्यांकन में गुणात्मक दृष्टिकोण को सम्मिलित किया जाए, तो भारतीय ज्ञान प्रणाली का प्रभावी आकलन संभव होगा।
6. नीति और प्रशासनिक कार्यों का गंभीर क्रियान्वयन	16. सरकारी नीतियों के माध्यम से इसे अनिवार्य किया जा सकता है।	16. नीति स्तर पर समुचित प्रयासों का अभाव।	16. शिक्षा नीतियों में भारतीय ज्ञान प्रणाली को अनिवार्य रूप से जोड़ना।	- नीति स्तर पर स्पष्ट दिशा-निर्देशों के अभाव में भारतीय ज्ञान प्रणाली का प्रभावी क्रियान्वयन कठिन हो जाता है। - प्रशासनिक प्रतिबद्धता और उचित नीतियों के बिना इसे शिक्षा प्रणाली में पूर्ण रूप से लागू करना संभव नहीं है।

	17. स्कूलों और विश्वविद्यालयों में विशेष रूप से भारतीय ज्ञान प्रणाली को पाठ्यक्रम में जोड़ा जा सकता है।	17. प्रशासनिक बाधाएँ और पाठ्यक्रम में परिवर्तन की कठिनाइयाँ।	17. चरणबद्ध रूप से पाठ्यक्रम में इसे लागू करना।	- प्रशासनिक बाधाओं और पाठ्यक्रम में परिवर्तन के विरोधस्वरूप भारतीय ज्ञान प्रणाली को विश्वविद्यालयी स्तर में लागू करना चुनौतीपूर्ण है। - पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली का समावेश धीरे-धीरे और चरणबद्ध तरीके से किया जाना चाहिए, ताकि सभी पक्षों को समय मिले।
7. उद्योग और रोजगार पर प्रभाव	18. भारतीय ज्ञान प्रणाली पर आधारित भविष्य में अवसरों का निर्माण हो सकता है।	18. छात्रों में इसके व्यावहारिक लाभ के बारे में जानकारी नहीं है।	18. भारतीय ज्ञान प्रणाली से जुड़े रोजगार और उद्योगों को विकसित करना।	- भारतीय ज्ञान प्रणाली के व्यावहारिक लाभों के बारे में छात्रों को जागरूक नहीं किया जाता, जिससे वे इसके करियर अवसरों को समझ नहीं पाते। - भारतीय ज्ञान प्रणाली से जुड़े उद्योग और रोजगार के अवसरों को विकसित करके इसे व्यावसायिक दृष्टिकोण से प्रासंगिक बनाया जा सकता है।
	19. भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित उद्यमशीलता को बढ़ावा दिया जा सकता है।	19. भारतीय ज्ञान प्रणाली से जुड़े व्यवसायों के लिए संरचनात्मक सहायता की कमी।	19. स्टार्टअप और उद्यमशीलता को समर्थन देना।	- भारतीय ज्ञान प्रणाली से जुड़े पेशे को उचित संरचनात्मक सहायता न मिलने के कारण उनका व्यापक स्तर पर विकास संभव नहीं हो पा रहा है। - उद्यमशीलता व स्टार्टअप को बढ़ावा दिए जाने के लिए नीति-निर्माताओं और शिक्षण संस्थानों को समन्वित प्रयास करने की आवश्यकता है।

सारणी में प्रस्तुत गुणात्मक विश्लेषण का अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय ज्ञान प्रणाली के मध्य एक गहरा तादात्म्य है, जो शिक्षक-शिक्षा के ढांचे को मौलिक रूप से पुनर्गठित करने की क्षमता रखता है। विश्लेषण से यह तथ्य उभरकर आता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली का एकीकरण केवल पाठ्यचर्या में कुछ प्राचीन विषयों को जोड़ने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह 'ज्ञान की प्रकृति' और 'सीखने की प्रक्रिया' को पुनर्परिभाषित करने का एक प्रयास है। सारणी यह इंगित करती है कि जहाँ एन.ई.पी. 2020 (पैरा 11.1) 'समग्र और बहुविषयक शिक्षा' पर जोर देती है, वहीं भारतीय ज्ञान परंपरा प्रभाग के दिशानिर्देश इसे व्यावहारिक रूप देने के लिए 'चतुर्दश विद्या' और 'चौंसठ कलाओं' के आधुनिक अनुकूलन का प्रस्ताव करते हैं (भारतीय ज्ञान परंपरा डिवीज़न, एम.ओ.ई., 2023)। यह सह-संबंध दर्शाता है कि भावी शिक्षकों को एकाकी विषयों की बजाय अंतर्विषयक दृष्टि विकसित करनी होगी, जिससे वे गणित को संगीत से और विज्ञान को दर्शन से जोड़कर पढ़ा सकें।

इसके अतिरिक्त, सारणीगत विश्लेषण यह भी रेखांकित करता है कि नैतिक मूल्यों और चरित्र निर्माण के संदर्भ में, यह एकीकरण 'सूचना-आधारित शिक्षा' से 'मूल्य-आधारित शिक्षा' की ओर प्रवर्तन का मार्ग प्रशस्त करता है। जैसा कि भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रभाग (2024) के दिशा-निर्देशों में उल्लिखित है, शिक्षकों के प्रशिक्षण में 'पंचकोशीय विकास' और 'कर्मयोग' के सिद्धांतों का समावेश उन्हें न केवल एक बेहतर पेशेवर, बल्कि एक संवेदनशील और सामाजिक रूप से जिम्मेदार 'आचार्य' बनने में सहायता करेगा। विश्लेषण यह भी पुष्टि करता है कि जनजातीय और लोक ज्ञान को औपचारिक पाठ्यक्रम में स्थान देना 'ज्ञानमीमांसीय न्याय' की दिशा में एक ठोस कदम है, जो हाशिये

पर पड़े समुदायों के ज्ञान को वैधता प्रदान करता है। अंततः, इस सारणी का निष्कर्ष यह है कि शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान परंपरा का कार्यान्वयन केवल अतीत का गौरवगान नहीं है, बल्कि यह 21वीं सदी की चुनौतियों जैसे सतत विकास और मानसिक स्वास्थ्य का समाधान खोजने के लिए एक व्यावहारिक और अनुभवजन्य रूपरेखा है, जो शिक्षकों को 'वैश्विक नागरिक' बनाने के साथ-साथ अपनी जड़ों से जोड़े रखता है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली भविष्य में वैश्विक ज्ञान प्रणाली के रूप में प्रचलित होगी।

भारतीय मनीषा का समेकन न केवल शैक्षणिक संरचना को विविधता प्रदान करता है, बल्कि शिक्षकों व विद्यार्थियों में नवोन्मेषी दृष्टिकोण, सांस्कृतिक चेतना एवं समग्र विकास को भी प्रोत्साहित करता है। निम्नलिखित बिन्दु इस एकीकरण की सम्भावनाओं, चुनौतियाँ एवं समाधानों पर प्रकाश डालते हैं:

1. पाठ्यक्रम-सामग्री का संतुलन: समकालीन शैक्षणिक आवश्यकताओं और भारतीय परंपरागत ज्ञान के बीच संतुलन स्थापित करना, पाठ्यक्रम को समावेशी और प्रेरणादायक बनाता है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) द्वारा शुरू किए गए एकीकृत शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम (आईटीईपी) के पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान परंपरा को अनिवार्य क्रेडिट के रूप में शामिल किया गया है, जो नवोदित शिक्षकों को भारत के ऐतिहासिक वैशिष्ट्य और आधुनिक प्रयोगों का संयुक्त दृष्टिकोण प्रदान करता है। 'सुश्रुत कार्यक्रम 2024–25' जैसे ओरिएंटेशन प्रोग्राम वैज्ञानिक और मानविकी सिद्धांतों के समन्वय पर जोर देते हैं। यह दृष्टिकोण मिश्र एवं पांडेय (2025) के 'ज्ञानमीमांसीय न्याय' के सिद्धांत के अनुरूप है, जो तर्क देते हैं कि औपनिवेशिक ढांचे से मुक्ति के लिए पाठ्यक्रम में देशज ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का सह-अस्तित्व आवश्यक है।

2. प्रामाणिक सामग्री की उपलब्धता एवं भारतीय ज्ञान परंपरा डिवीजन की भूमिका: पाठ्यक्रम की वैधता सुनिश्चित करने के लिए विशेषज्ञों द्वारा अनुमोदित संदर्भ ग्रंथों और व्यापक शोध कार्य की आवश्यकता है। शिक्षा मंत्रालय के भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रभाग ने प्रामाणिक पाठ्यपुस्तकों के निर्माण और प्राचीन पांडुलिपियों के अनुवाद की परियोजनाएं शुरू की हैं, ताकि ऐतिहासिक और वैज्ञानिक प्रमाणों को डिजिटल और मुद्रित रूप में उपलब्ध कराया जा सके। हज़रा (2018) का मत है कि शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में अक्सर संसाधनों की कमी और पारंपरिक शिक्षण विधियों पर जोर दिया जाता है, जिससे भारतीय ज्ञान परंपरा को शामिल करने में कठिनाई होती है। इस रिक्तता को भरने के लिए सरकार द्वारा 'भारतीय ज्ञान परंपरा इंटर्नशिप' और 'फैलोशिप' जैसी योजनाएं चलाई जा रही हैं, जो मूल स्रोतों पर शोध को बढ़ावा देती हैं।

3. विषयाधारित विशेषज्ञता और अंतःविषय केंद्र: गणित-ज्योतिष, आयुर्वेद-योग और अर्थशास्त्र-नीतिशास्त्र, जैसे क्षेत्रों में भारतीय शास्त्रों के समन्वय हेतु अंतःविषय विशेषज्ञों का प्रशिक्षण अनिवार्य है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आईआईटी) और केंद्रीय विश्वविद्यालयों में 'भारतीय ज्ञान परंपरा केंद्रों' की स्थापना इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। उदाहरण के लिए, आईआईटी खड़गपुर और आईआईटी मद्रास द्वारा विकसित पाठ्यक्रम तकनीकी और दार्शनिक ज्ञान का सेतु बना रहे हैं। यह पहल त्रिपाठी (2025) के सुझावों का समर्थन करती है कि अंतःविषयी इकाई के माध्यम से विषयानुरूप पाठ्य सामग्री विकसित की जानी चाहिए।

4. डिजिटल संसाधनों का सशक्तीकरण एवं संरक्षण: ई-पुस्तकें, ऑनलाइन शोध-शालाएँ और मल्टीमीडिया मॉड्यूल्स शिक्षण को आकर्षक और सुलभ बनाते हैं। राष्ट्रीय डिजिटल लाइब्रेरी (एन.डी.एल.आई.) और पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी (टी.के.डी.एल.), जैसे प्लेटफॉर्म प्राचीन ज्ञान को संरक्षित कर रहे हैं। आईआईटी और

एआईसीटीई द्वारा विकसित अनुवाद और टर्मिनोलॉजी सॉफ्टवेयर (जैसे 'अनुवादिनी') का व्यापक उपयोग शिक्षा को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बना रहा है। सिन्हा (2023) के अनुसार, भारतीय ज्ञान प्रणालियों का डिजिटल परिवर्तन और संरक्षण नीतियों का कार्यान्वयन ज्ञान को आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिक बनाने के लिए अपरिहार्य है।

5. शिक्षक-प्रशिक्षण और शिक्षणशास्त्र में बदलाव: शिक्षकों में भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रति आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिए 'मालवीय मिशन शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम' (एमएमटीटीसी) के अंतर्गत विशेष कार्यशालाएं और रिफ्रेशर कोर्स आयोजित किए जा रहे हैं। मात्र सैद्धांतिक प्रशिक्षण से परे, व्यावहारिक शिक्षणशास्त्र और मेंटरशिप मॉडल को अपनाना आवश्यक है। हलोई एवं खरबीरमबई (2025) और कुमार (2016) इस बात पर जोर देते हैं कि शिक्षकों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ-साथ भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता और मूल्य के बारे में जागरूकता बढ़ाना अनिवार्य है, ताकि वे इसे कक्षा में प्रभावी ढंग से लागू कर सकें।

6. वित्तीय सहायता और ढांचागत विकास: शैक्षणिक संस्थानों में पुस्तकालय संसाधनों का विस्तार और शोध हेतु वित्तीय अनुदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा डिवीजन द्वारा शोध प्रस्तावों के लिए विशेष फंडिंग का प्रावधान किया गया है, जो संस्थानों को बुनियादी ढांचे और डिजिटल प्लेटफॉर्म को सशक्त बनाने में मदद करता है। मांडवकर (2023) का सुझाव है कि भारतीय ज्ञान परंपरा संसाधनों, पाठ और केस स्टडीज की एक ऑनलाइन लाइब्रेरी बनाने से संकाय (फैकल्टी) को शिक्षण में और अधिक सहायता मिल सकती है।

7. सामाजिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों का निवारण और आलोचनात्मक चिंतन: वैज्ञानिक और तार्किक व्याख्यानों के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति रूढ़िवादी धारणाओं को चुनौती दी जानी चाहिए। श्रीवास्तव (2017) आलोचना करते हैं कि भारतीय शिक्षा प्रणाली अक्सर रटने पर जोर देती है, जो रचनात्मकता को बाधित करती है। इसके विपरीत, भारतीय ज्ञान परंपरा आधारित शिक्षणशास्त्र (जैसे प्रश्नोत्तरी और संवाद विधि आदि) आलोचनात्मक सोच और नवाचार को प्रोत्साहित करता है। मिश्र (2025) के अनुसार, यह 'औपनिवेशिक हैंगओवर' को दूर करने और 'स्व' की पहचान स्थापित करने में सहायक होगा।

8. समावेशी पाठ्यक्रम और वैश्विक सहभागिता: पाठ्यक्रम में गार्गी, मैत्रेयी, जैसी महिला विदुषियों और आदिवासी ज्ञान परंपराओं के योगदान को विशेष स्थान देकर बहुलवादी दृष्टिकोण को मजबूत किया जा सकता है। वैश्विक मंच पर, 'वसुधैव कुटुम्बकम' के दर्शन के साथ योग और शांति शिक्षा, जैसे विषयों में अंतरराष्ट्रीय सहयोग बढ़ाया जा रहा है।

9. मूल्यांकन और प्रशासनिक प्रतिबद्धता: इस संदर्भ में देखें, तो 'परख' जैसे राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र समग्र विकास के मूल्यांकन पर जोर देते हैं। मात्रात्मक और गुणात्मक दृष्टिकोण को सम्मिलित करने से छात्रों के नैतिक और आत्म-विश्लेषणात्मक आयामों का मूल्यांकन संभव होगा। शिक्षा नीतियों में भारतीय ज्ञान परंपरा को अनिवार्य रूप से सम्मिलित करना और चरणबद्ध पाठ्यक्रम परिवर्तन प्रशासनिक प्रतिबद्धता को सुनिश्चित करता है। टेलबी, व्हाटमैन और सेम्मेलन (2020) का निष्कर्ष है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के एकीकरण में सभी हितधारकों की सुसंगठित भागीदारी होनी चाहिए, जिससे समाज के लिए एक सहायक सांस्कृतिक क्रियाविधि का निर्माण हो सके।

इस प्रकार, शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली का समावेश केवल एक नवीन शैक्षणिक उपक्रम नहीं, बल्कि हमारी शिक्षा संरचना के पुनर्निर्माण की धुरी है। यह पहल न केवल शिक्षकों और विद्यार्थियों को उनकी सांस्कृतिक

जड़ों से जोड़ती है, बल्कि उन्हें वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए प्रवेश-द्वार भी प्रदान करती है। जब समन्वित पाठ्यक्रम, प्रामाणिक संदर्भ, व्यावहारिक प्रशिक्षण, सबल नीतिगत आधार और सतत् सहयोग एक साथ कार्य करते हैं, तब रचनात्मकता, आलोचनात्मक चिंतन और सांस्कृतिक जागरूकता का समग्र विकास संभव होता है। परिणामस्वरूप, भारतीय शिक्षा प्रणाली न सिर्फ राष्ट्रीय परिदृश्य में, बल्कि अंतरराष्ट्रीय मंच पर भी विशिष्ट पहचान अर्जित करेगी। उचित संसाधन एवं दूरदर्शी नीतियों के समर्थन से यह प्रयास हमारी ज्ञान परंपराओं की अपार क्षमता को उजागर करते हुए भारत को एक विश्व-स्तरीय ज्ञान-महाशक्ति के रूप में स्थापित करेगा।

संदर्भ सूची

औंधकर, ए. टी. (2023). ऑपर्च्युनिटीज एंड चैलेंजेज रिलेटेड टू इंडियन नॉलेज सिस्टम इन टीचर एजुकेशन फील्ड. टेक्नोलर्न: एन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 13(2), 89–96

कपूर, के., एवं सिंह, ए. (2005). इंडियन नॉलेज सिस्टम्स (Vol. 1). डी.के. प्रिंटवर्ल्ड

कुमार, के. (2016). एजुकेशन एंड द इंडियन नॉलेज सिस्टम: पर्सपेक्टिव्स एंड प्रैक्टिसेज. स्प्रिंगर

खन्ना, आर. (2023). इंडिया हैज अ लॉन्ग हिस्ट्री ऑफ़ गुरु-शिष्य रिलेशनशिप, हाउ रिवाइवड दिस प्रैक्टिसेज. टाइम्स ऑफ इंडिया

गीता प्रेस, गोरखपुर. (2015). श्रीमद्भगवद्गीता (साधक संजीवनी टीका). गीता प्रेस https://gitapress.org/bookdetail/gita-hindi-20

चटर्जी, एस. (2025). इंटीग्रेटिंग इंडियन नॉलेज सिस्टम्स इनटू टीचर एजुकेशन इन इंडिया: नीड एंड चैलेंजेज. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ट्रेंड्स इन इमर्जिंग रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 3(5), 36–38

टेलबी, एस., व्हाटमैन, एस., एवं सेम्मेलन, सी. (2020). डीकोलोनाइजिंग नॉलेज सिस्टम्ज़ इन एजुकेशन. स्प्रिंगर

तिवारी, एस. (2020). भारतीय शिक्षा दर्शन. अटलांटिक पब्लिशर्स

त्रिपाठी, ए., एवं टंडन, एम. (2025). रिवाइविंग इंडियन नॉलेज सिस्टम्स इन टीचर एजुकेशन: ब्रिजिंग ट्रेडिशन एंड मॉडर्निटी. एमिटी इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन

धर्मपाल. (1983). द ब्यूटीफुल ट्री: इंडिजिनस इंडियन एजुकेशन इन द एटीन्थ सेंचुरी. बिब्लिया इम्पेक्स

पतंजलि. (2006). योगसूत्र (टीकाकार: स्वामी विवेकानंद). रामकृष्ण मठ

पाणिनि. (2014 संस्करण). अष्टाध्यायी. चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

पाटिल, एस., एवं पाटिल, ए. (2023). वैल्यू एजुकेशन इन इंडियन पर्सपेक्टिव: ए नीड ऑफ टाइम. जर्नल ऑफ ह्यूमन वैल्यूज, 12(1), 45-52

फेरर, सी. (2018). गुरु-शिष्य परंपरा इन मॉडर्न टाइम्स. रूटलेज

मांडवकर, पी. (2023). इंडियन नॉलेज सिस्टम (भारतीय ज्ञान परंपरा): ए पाथवे टू सस्टेनेबल एजुकेशन. एसएसआरएन इलेक्ट्रॉनिक जर्नल https://ssrn.com/abstract=4589986

मिश्र, पी., एवं पांडेय, सी. (2025). औपनिवेशिक काल में भारतीय पाठ्यचर्या में ज्ञानमीमांसीय अन्याय: देशज ज्ञान परम्परा की उपेक्षा और औपनिवेशिक अधिरोपण. अन्वेषिका, 11(1), 25–39

राधाकृष्णन, एस. (1927). द हिंदू व्यू ऑफ लाइफ. जॉर्ज एलन एंड अनविन.

शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार

श्रीवास्तव, एम. (2017). रिवाइविंग एंशिएंट इंडियन पेडागोगी फॉर मॉडर्न क्लासरूम्स. एडवांसेज इन सोशल साइंस रिसर्च जर्नल, 4(12)

सलूजा, के. सी. (2023). शिक्षा: भारतीय परिप्रेक्ष्य. विद्या निधि प्रकाशन

हज़रा, एस. (2018). चैलेंजेज इन टीचर एजुकेशन इन इंडिया. एजुकेशनल क्वेस्ट, 9(1), 34-40

हलोई, एम., एवं खरबीरमबई, बी. बी. (2025). इंटीग्रेटिंग द इंडियन नॉलेज सिस्टम (भारतीय ज्ञान परंपरा) इनटू टीचर एजुकेशन: ए ट्रांसफॉर्मेटिव अप्रोच अंडर एनईपी 2020. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंस एंड सोशल साइंस रिसर्च, 3(2)

नीतिगत एवं संस्थागत संदर्भ

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (एआईसीटीई). (2023). भारतीय ज्ञान प्रणाली: पाठ्यचर्या और क्रेडिट फ्रेमवर्क. एआईसीटीई https://www.aicte-india.org

भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रभाग. (2022). भारतीय ज्ञान परंपरा: संकल्पना और अनुप्रयोग (प्रशिक्षण नियमावली). शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार https://iksindia.org

भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रभाग. (2024). भारतीय ज्ञान परंपरा इंटर्नशिप और फैलोशिप दिशानिर्देश. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई). (2021). एकीकृत शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम (आईटीईपी): आदर्श पाठ्यचर्या. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार https://ncte.gov.in

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी). (2023). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा: स्कूली शिक्षा (एनसीएफ-एसई). भारत सरकार

शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार https://www.education.gov.in/nep-2020

शिक्षा मंत्रालय. (2023). मालवीय मिशन शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम: दिशानिर्देश. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी). (2023). उच्च शिक्षण संस्थानों में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण हेतु दिशानिर्देश. यूजीसी, नई दिल्ली https://www.ugc.gov.in

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र के विविध आयाम

आलोक कुमार
शोधार्थी, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
alok6120@gmail.com

सारांश

यह लेख भारतीय संदर्भ में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के विविध आयामों को समझने पर आधारित है। इसमें वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी शिक्षण पद्धति व भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के दृष्टिकोण से सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के संप्रत्यय का व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण किया गया है। यह शिक्षण-शास्त्र भारत में समावेशी एवं न्यायसंगत शिक्षा के लिए परिवर्तनकारी ढांचे के रूप में वैकल्पिक शैक्षणिक उपागम प्रस्तुत करता है, यह एक संपदा-आधारित शैक्षणिक दृष्टिकोण है, जो शैक्षणिक गतिविधियों में विद्यार्थियों के सांस्कृतिक व प्रासंगिक ज्ञान को संपदा के रूप में उपयोग करने पर जोर देता है। इस लेख में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र के मूलभूत संप्रत्यय की भी समीक्षा की गई है और उन्हें भारतीय बहुलवादी शैक्षिक परिदृश्य में संदर्भित किया गया है। यह शिक्षण-शास्त्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में निहित संकल्पनाओं के अनुरूप भारतीय लोकाचार, बहुभाषिकता एवं स्थानीय शिक्षण पद्धति की संकल्पना करती है। शिक्षा में स्वदेशीयता के लिए भारतीय अध्यापक शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र के विकास व प्रासंगिकता पर जोर दिया गया है तथा वर्तमान शैक्षिक चुनौतियों एवं उभरते अवसरों को भी रेखांकित किया गया है। यह शिक्षण-शास्त्र अध्यापक शिक्षा व प्रशिक्षण से सम्बन्धी पाठ्यचर्या में शामिल करने के लिए सकारात्मक शैक्षणिक पहल के रूप में उभर रहा है, जिससे अध्यापकों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी अध्यापन कार्य के लिए सक्षम बनाया जा सके। यह शिक्षण-शास्त्र सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से हाशियाकृत समुदाय की शैक्षिक प्रगति के लिए सहायक माना जाता है, सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा विद्यार्थियों में स्वदेशी दक्षताओं (ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति) के विकास पर जोर देता है, जो वर्तमान शैक्षिक जरूरत के अनुरूप विद्यार्थियों के अकादमिक प्रदर्शन को बढ़ाने में उपयोगी है।

मुख्य शब्द: *सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, संपदा-आधारित शैक्षणिक दृष्टिकोण, अध्यापक शिक्षा*

पृष्ठभूमि

भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में शिक्षण पद्धति के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। भारत में अलग-अलग कालखंड में शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारत में शिक्षा का प्रावधान दैनिक जीवन में लोगों की जरूरतों के अनुरूप था। स्वदेशी को ध्यान में रखते हुए प्रमुख भारतीय शिक्षाशास्त्रियों ने भारतीय शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया, जिनमें धर्मपाल, गिजूभाई बधेका व महात्मा गाँधी जी प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त देखते हैं कि भारतीय शिक्षा नीतियों में भी भारतीयकृत शिक्षा तथा स्वदेशी मूल्यों के प्रति शैक्षिक सुधारों पर मुखरता से बात की गई है, जिनमें कोठारी कमीशन 1964-1966 व इस कमीशन की सिफ़ारिशों के आधार पर स्वतंत्र भारत की

प्रथम शिक्षा नीति 1968, उसके पश्चात राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 व राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्रमुख हैं, जिसमें शिक्षार्थी केन्द्रित व अनुभव आधारित शिक्षा की बात की गई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा को सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी बनाने के संदर्भ में इस बात पर जोर दिया गया कि शिक्षा को अधिक अनुभवात्मक, एकीकृत, जांच-आधारित, खोज-उन्मुख, शिक्षार्थी-केंद्रित, शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास पर आधारित लचीला एवं आनंददायक बनाने के लिए शिक्षण पद्धति विकसित होनी चाहिए (अरोड़ा, 2024)।

जब हम सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण पद्धति के बारे में अध्ययन करते हैं तो हमें यह देखने को मिलता है कि यह शिक्षण-शास्त्रीय विचार भारतीय संदर्भ में नया नहीं है, भारतीय शैक्षिक विमर्श में विभिन्न पहलुओं में इसका अनुप्रयोग बहुत पहले से होता रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में निहित संकल्पनाओं के अनुरूप सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र भारतीय लोकाचार व स्वदेशी भाव में निहित एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की कल्पना करती है, जो सभी को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करके भारत को एक समान और जीवंत ज्ञान समाज के रूप में बदलने में योगदान देती है। नीति में परिकल्पना की गई है कि हमारे संस्थानों के पाठ्यक्रम और अध्यापन प्रक्रिया को विद्यार्थियों में मौलिक कर्तव्यों और संवैधानिक मूल्यों के प्रति सम्मान की गहरी भावना, अपने देश के साथ संबंध और बदलती दुनिया में अपनी भूमिकाओं एवं जिम्मेदारियों के बारे में जागरूक होना चाहिए। नीति का लक्ष्य शिक्षार्थियों में न केवल विचारों में, बल्कि आत्मा, बुद्धि और कर्मों में भी भारतीय होने का गर्व पैदा करना है, साथ ही ज्ञान, कौशल, मूल्य और स्वभाव विकसित करना है, जो मानवाधिकारों, सतत विकास तथा वैश्विक कल्याण के लिए जवाबदेह प्रतिबद्धता का समर्थन करते हैं, जिससे भारतीय मूल्यों से परिपूर्ण वैश्विक नागरिक का निर्माण हो सके।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा में अध्यापक विद्यार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान, अनुभवों, भाषाओं और संचार शैलियों का उपयोग करके विद्यालयी शिक्षा को प्रासंगिक और प्रभावी बनाते है (अरोड़ा, 2024)। यह शिक्षण-शास्त्र विद्यार्थियों के पास पहले से मौजूद ज्ञान को कक्षा में उनके विकास के आधार के रूप में उपयोग करने पर जोर देता है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षणशास्त्र के जरिये विद्यार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान एवं कौशल के विकास को महत्त्व दिया जाता है। यह ज्ञान विद्यार्थियों में सीखने के विभिन्न दृष्टिकोण व नजरिए विकसित करने के लिए एक संसाधन के रूप में काम करता है (अरोड़ा, 2024)।

अरोड़ा एवं पाण्डेय (2021) भारतीयता के लिए शिक्षा पर लिखते समय इस बात पर जोर देते हैं कि अगर हम अपनी युवा पीढ़ी को शैक्षिक जगत में भविष्य का लीडर बनाना चाहते हैं तो हम उन्हें आँख बंद कर चलने वाला नागरिक नहीं, बल्कि एक तार्किक समालोचक व चिंतक के रूप में देखना चाहते हैं। वर्तमान शिक्षाविदों को इस पर विचार करना चाहिए कि विद्यार्थी केवल लकीर के फकीर ना बने बल्कि वह तर्क के साथ जाँच-परख कर आगे बढ़े और राष्ट्र के विकास में अपनी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करें। यह सब तभी प्रभावी रूप से संभव हो पाएगा, जब हम शिक्षण के भारतीय पक्ष को न सिर्फ खोजें, बल्कि शोध के साथ उसका विस्तार भी करें। इसी लेख में भारतीय परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक शिक्षण-शास्त्र पर बात करते हुए अरोड़ा व पाण्डेय (2021) लिखते हैं कि *"आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र को प्रगतिवादी और नवाचारवादी का पर्यायवाची माना जाता है। यह विचार सिर्फ़ यूरोपीय देशों से आया हो, ऐसा नहीं है, भारत में इसकी जड़ें वैदिक समय से मिलती हैं। हम इसे आधुनिक संदर्भ में आसानी से देखते हैं, बी. आर. अम्बेडकर के विचार, जिसमें उन्होंने समाज को, विशेषत: वंचितों को, देखने व समझने के लिए 'सोशल जस्टिस' का विचार दिया है, वह कहीं से भी आधुनिक आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के पाश्चात्य विचार से कम नहीं है" (अरोड़ा एवं पाण्डेय, 2021)।*

भारतीय संदर्भ में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शैक्षिक विमर्श:

धर्मपाल ने *'रमणीय वृक्ष: 18वीं शताब्दी में शिक्षा'*, में 18वीं सदी की भारतीय शिक्षा की देशज वृत्ति का सम्मोहक विवरण प्रस्तुत किया हैं, जिसमें उन्होंने 18वीं सदी की भारतीय शिक्षा के मूल ढाँचे को विवरणात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। वह इस दौरान की भारतीय शिक्षा श्रेष्ठता को रमणीय वृक्ष के रूपक की तरह प्रयोग करते है। उन्होंने उस समय की विकेन्द्रीकृत, समुदाय आधारित शैक्षिक प्रणाली पर प्रकाश डाला है, जो पिछड़ेपन की औपनिवेशिक धारणाओं के विपरीत है। उन्होंने देखा कि उस दौरान की शिक्षा स्थानीय किसानों द्वारा समर्थित थी, जिसमें विद्यार्थियों को पाठशालाओं, मदरसों एवं स्थानीय समुदायों में निहित गुरुकुलों के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। ये संस्थान पढ़ने, लिखने, गणितीय अभिक्षमता, नैतिकता और आध्यात्मिक मूल्यों को शामिल करते हुए विद्यार्थियों के समग्र विकास पर जोर देते थे। उस दौरान शिक्षण सूर्योदय से शुरू होकर और सूर्यास्त तक जारी रहता था तथा शिक्षा में व्यवस्थित रूप से एक नियत अंतराल पर अक्सर धार्मिक महाकाव्य, व्याकरण, तर्क एवं क्षेत्रीय प्रासंगिक ग्रंथ शामिल किए जाते थे (धर्मपाल, 1983)। 18वीं सदी में अध्यापकों को उनके समर्पण और संयम के लिए सम्मानित किया जाता था और यह भी देखने को मिलता है उस दौरान की शिक्षा समावेशी थी, जिसमें सभी वर्गों को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त थे। मद्रास प्रेसीडेंसी के आंकड़ों से पता चलता है कि अधिकांश विद्यार्थी शूद्र एवं अन्य पिछड़े वर्गों से आते थे, जो इस धारणा को चुनौती देता है कि शिक्षा केवल अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित थी (धर्मपाल,1983)। शिक्षा की इस व्यापक पहुँच को स्थानीय राजकोषीय व्यवस्थाओं द्वारा संभव किया जाता था, जिसमें राजस्व के कुछ हिस्सों को शैक्षिक एवं सार्वजनिक कल्याण के उद्देश्यों के लिए आवंटित किया जाता था। धर्मपाल का विश्लेषण इस बात को रेखांकित करता है कि औपनिवेशिक काल से पहले की भारतीय शिक्षा न केवल व्यापक और प्रभावी थी, बल्कि सामाजिक रूप से एकीकृत एवं नैतिकता पर आधारित थी।

कोठारी आयोग (1964-66) में स्वदेशी शैक्षणिक गतिविधियों के एकीकरण पर जोर देते हुए सीखने को सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक एवं सार्थक बनाने की बात की गई। यह आयोग शिक्षा में सांस्कृतिक व भाषाई विविधता को बढ़ावा देने की सिफ़ारिश करता है, साथ ही यह शिक्षा और वास्तविक जीवन के अनुभवों के बीच की खाई को पाटने के लिए पाठ्यक्रम में स्थानीय शिल्प, पारंपरिक ज्ञान और सामुदायिक परम्पराओं को शामिल करता है। इसके अतिरिक्त, यह आयोग समावेशिता एवं सांस्कृतिक संरक्षण सुनिश्चित करने हेतु शिक्षण के लिए क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग पर ध्यान केंद्रित करता है। *दिवास्वप्न* में गिजुभाई बधेका ने बाल-केंद्रित शैक्षणिक दृष्टिकोण पर जोर दिया है, जिसमें कठोर, सत्तावादी शिक्षण पद्धतियों के स्थान पर बच्चों की रुचियों, जिज्ञासा एवं स्वाभाविक रूप से सीखने की गति को प्राथमिकता दी गई है, जो कक्षा में अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों के लिए रटने की पारंपरिक शैक्षिक गतिविधियों से अलग हटकर कहानी सुनाने, संवादात्मक गतिविधियों एवं अनुभव आधारित शिक्षा के माध्यम से आकर्षक व आनंदमय वातावरण को बढ़ावा देने को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार के अभ्यास यह सुनिश्चित करते हैं कि शिक्षा भय व दंड के बजाय स्वतंत्रता, रचनात्मकता एवं भावनात्मक सुरक्षा पर आधारित होनी चाहिए। *दिवास्वप्न* में *यह उल्लिखित किया गया है कि किस प्रकार* कक्षा को एक लोकतांत्रिक एवं समावेशी स्थान में बदलकर प्रभावी शिक्षण किया जा सकता है, इसमें यह भी बताया गया है कि *अध्यापक* कैसे बच्चों की वैयक्तिकता के प्रति विश्वास, प्रेम और सम्मान से शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं को बदल सकता है (बधेका, 2004)। इस लेख में हमें यह देखने को मिलता है कि गिजुभाई बधेका ने किस प्रकार से हमारे सामने शिक्षण-अधिगम का एक नया स्वरूप प्रस्तुत किया है। वे यह मानते थे कि शिक्षा का उद्देश्य केवल पढ़ना-पढ़ाना ही नहीं है, बल्कि शिक्षार्थियों का मार्गदर्शन करना है। बधेका विद्यार्थियों के स्वतंत्र सीखने व सीखने के प्रति उनकी ललक को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण बिंदु मानते हैं, साथ

ही वे सीखने हेतु आनंददायक माहौल बनाए रखने का सुझाव देते हैं। वर्तमान में जब भी आनंद के साथ सीखने या सांस्कृतिक प्रासंगिकता के साथ सीखने की बात होती है, तो गिजुभाई का शैक्षिक ताना-बाना आज भी प्रासंगिक है (अरोड़ा एवं पाण्डेय, 2021)।

नई तालीम या बुनियादी शिक्षा के तहत गाँधी के शैक्षणिक अभ्यास ने सिर, हृदय एवं हाथ के सामंजस्यपूर्ण विकास पर जोर दिया और उन्होंने उत्पादक कार्य एवं शारीरिक श्रम के माध्यम से सीखने की वकालत की। उनका मानना था कि शिक्षा को शिक्षार्थी के पर्यावरण एवं सांस्कृतिक संदर्भ से निकटता से जोड़ा जाना चाहिए तथा बौद्धिक विकास के साथ-साथ आत्मनिर्भरता और नैतिक विकास को बढ़ावा देना चाहिए। गाँधी जी के दृष्टिकोण में, शिल्प-आधारित शिक्षा केवल व्यावसायिक नहीं थी, बल्कि श्रम की गरिमा, सामाजिक जिम्मेदारी एवं आलोचनात्मक सोच को विकसित करने का माध्यम थी। शिक्षा के प्रति महात्मा गाँधी जी का मानना था कि शिक्षा आजीविका देने, संस्कृति का विकास करने एवं आत्मानुभूति करने वाली होनी चाहिए। वह इस बात पर जोर देते है कि शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने वाली होनी चाहिए। गाँधी जी ने शिक्षा का लक्ष्य मुख्य रूप से मातृभाषा में शिक्षा को रखा तथा बच्चों को कुशल व स्वतंत्र बनाने के लिए गतिविधि केंद्रित शिक्षा की सिफ़ारिश की (अरोड़ा एवं पाण्डेय, 2021)। गाँधी जी की इस शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य विद्यार्थियों के मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच की खाई को पाटना था, जिससे विद्यार्थी कार्य करके सीख सकें। गाँधी जी इसे विद्यार्थियों के समग्र विकास एवं भारतीय समाज के उत्थान के लिए आवश्यक मानते थे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) में स्वदेशी शिक्षणशास्त्रीय पक्ष:

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इस बात पर जोर दिया गया कि शिक्षा को विद्यार्थियों के समग्र विकास को ध्यान में रखकर अनुभव-आधारित, खोज-उन्मुख, एकीकृत, जाँच-आधारित व शिक्षार्थी-केंद्रित एवं लचीली तथा आनंददायक बनाने हेतु संबंधित नवाचारी शिक्षण पद्धति को विकसित किया जाना चाहिए। यह नीति विद्यार्थियों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली प्रदान करने की सिफ़ारिश करती है, जिसमें ऐतिहासिक रूप से हाशियाकृत एवं वंचित समुदायों पर विशेष ध्यान दिए जाने की बात की गई है। यह नीति मानती है कि शिक्षा सामाजिक एवं आर्थिक गतिशीलता, समावेशन व समानता के लिए सबसे अच्छा साधन है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सिद्धांतों में शिक्षण-अधिगम में बहु-भाषिकता एवं भाषा की शक्ति को बढ़ावा देने और सभी पाठ्यक्रम व शिक्षा नीतियों में विविधता तथा स्थानीयता के लिए सम्मान पर जोर दिया गया है। इस नीति में यह संस्तुति की गई है कि संपूर्ण पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धति को *" फाउंडेशनल स्तर से शुरू करके बाकी सभी स्तरों तक, पाठ्यचर्या और शिक्षण-शास्त्र को एक मजबूत भारतीय और स्थानीय संदर्भ देने की दृष्टि से पुनर्गठित किया जाएगा। इसके अंतर्गत संस्कृति, परम्पराएँ, विरासत, रीति-रिवाज, भाषा, प्राचीन और समकालीन ज्ञान, सामाजिक और वैज्ञानिक आवश्यकताएं, सीखने के स्वदेशी और पारंपरिक तरीके आदि सभी पक्ष शामिल होंगे, जिससे शिक्षा यथासंभव रूप से हमारे छात्रों के लिए अधिकतम भरोसेमंद, प्रासंगिक, रोचक और प्रभावी बने (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ 25, अनुछेद 4.29)।"*

संपदा-आधारित शिक्षणशास्त्र:

यह शैक्षिक दृष्टिकोण विद्यार्थियों की कमियों पर ध्यान केंद्रित करने के स्थान पर उनकी मज़बूती, सांस्कृतिक संपदा व जीवन्त अनुभवों पर जोर देता है। यह सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण में निहित विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि, भाषा व समुदाय तथा पूर्व ज्ञान को सीखने के लिए आवश्यक संसाधनों के रूप में महत्त्व देकर विद्यार्थियों में कमी (Deficit) की मानसिकता के दृष्टिकोण को चुनौती देता है (मोल एवं अन्य, 1992)। यह दृष्टिकोण *"ज्ञान के कोष"*

की अवधारणा के साथ संरेखित है, जिसमें अध्यापक विद्यार्थियों के घर एवं समुदाय में निहित समृद्ध अनुभवात्मक ज्ञान को मुख्य धारा के साथ जोड़ता है। संपदा-आधारित शिक्षण-शास्त्र का उपयोग करने वाले अध्यापक ऐसे निर्देश तैयार करते हैं, जो शैक्षणिक सामग्री को विद्यार्थियों के वास्तविक जीवन के अनुभवों से जोड़ते हैं, जिससे जुड़ाव, आत्म-प्रभावकारिता व समावेशिता को बढ़ावा मिलता है (गोंजालेज एवं अन्य, 2005)। शिक्षण की यह तकनीकी विद्यार्थियों की विविध पहचानों को मान्यता प्रदान कर सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी गतिविधियों को बढ़ावा देकर शैक्षिक समानता में योगदान देती है (पेरिस, 2012)।

निम्न शिक्षण पद्धतियाँ संपदा-आधारित शिक्षण तकनीकी के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं, इनमें से प्रत्येक शिक्षण को बढ़ाने के लिए विद्यार्थियों की मजबूती, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और सामुदायिक संसाधनों का लाभ उठाने पर ध्यान केंद्रित करती है:

1. ज्ञान का कोश दृष्टिकोण
2. सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र
3. सांस्कृतिक रूप से सतत शिक्षण-शास्त्र
4. शक्ति-आधारित शिक्षण
5. समुदाय-आधारित शिक्षण
6. भाषाई रूप से उत्तरदायी शिक्षण
8. स्वदेशी शिक्षण-शास्त्र

सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षण-शास्त्र का विकास:

सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षण-शास्त्र का विकास समाज में व्याप्त व्यवस्थागत उत्पीड़न की समझ और आलोचनात्मक दृष्टिकोण के फलस्वरूप हुआ। डर्डन एवं अन्य (2016) ने सुझाव दिया कि अध्यापक शिक्षा के विकास को अध्यापकों की जातीय/नस्लीय पहचान को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए, विशेष रूप से उस समुदाय के अध्यापकों को ध्यान रखना चाहिए, जिनका शैक्षिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व बहुत कम है, साथ ही इसके जरिये आलोचनात्मक समझ को बढ़ावा देकर तथा नस्लीय/जातीय अनुभवों की पुष्टि करके सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षकों को तैयार करना चाहिए (डर्डन एवं अन्य, 2016)। सिआम्पा और रीसबोर्ड (2024) ने पता लगाया कि कैसे समुदाय-आधारित सतत व्यावसायिक विकास अध्यापक-शिक्षकों की आत्म-प्रभावकारिता व अध्यापक-शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी गतिविधियों के कार्यान्वयन को बढ़ा सकता है। उन्होंने प्रमुख रूप से पाँच क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण सुधार पाया, जिनमें; कक्षा-संबंध, मूल्यांकन, निर्देशन, चर्चा व आलोचनात्मक चेतना है। सिआम्पा और रीसबोर्ड (2024), ने समावेशी व समता उन्मुख शैक्षणिक दृष्टिकोणों को बढ़ावा देने में चिंतनशील अभ्यास, अंतर-विषयक सहयोग और सामुदायिक परामर्श की भूमिका पर जोर दिया है। इन्होंने इस बात पर प्रकाश डाला कि कैसे संशोधित पाठ्यक्रम, प्रामाणिक आकलन और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक निर्देशन रणनीतियों के माध्यम से व सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र को लागू करने से अध्यापकों को विद्यार्थियों की विविधता का समर्थन करने के लिए सशक्त बनाया गया। गिस्ट एवं अन्य (2019), सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को शैक्षणिक गतिविधियों में एकीकृत कर सीखने की परिवर्तनकारी परंपरा पर

जोर देता है, यह विद्यार्थियों के प्रासंगिक ज्ञान, परम्पराओं और व्यवहार के एक गतिशील मिश्रण के रूप में कार्य करता है।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र का सुदृढ़ीकरण:

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र बहुसांस्कृतिक और द्विभाषी शिक्षा का एक केंद्रीय दृष्टिकोण था, लेकिन शिक्षा में नव-उदारवादी सुधारों के पश्चात विद्यालयों में मानकीकृत पाठ्यक्रम पर जोर दिया जाने लगा, जिससे विद्यालय सुधार की बजाय बाजारीकृत प्रतिमान पर जोर देने लगे, जिसके फलस्वरूप यह शिक्षण पद्धति तेजी से हाशिए पर चली गयी (स्लीटर, 2011)। स्लीटर सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र को आगे बढ़ाने में आने वाली तीन प्रमुख चुनौतियों की पहचान करते हैं: 1. अर्थ की व्यापक एवं सरलीकृत समझ, 2. विद्यार्थियों की उपलब्धि सम्बन्धी सीमित शोध, और 3. हाशियाकृत समुदाय के सशक्तीकरण के खिलाफ राजनीतिक प्रतिक्रिया। स्लीटर सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र से संबंधित भ्रांतियों की आलोचना करते हैं और बताते हैं कि सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र को महज सांस्कृतिक उत्सवों के बराबर मानना या इसे चेकलिस्ट तक सीमित करना उचित नहीं है, वरन् इसकी भूमिका संस्कृति को अनिवार्य बनाने व शैक्षिक असमानताओं को रेखांकित करने वाली संरचनात्मक विविधताओं को अनदेखा करने के खिलाफ चेतावनी देने की है। स्लीटर विभिन्न संदर्भों में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र की प्रभावकारिता का दस्तावेजीकरण करने के लिए एक मजबूत शोध प्रस्तुत करते हैं एवं अध्यापकों से सामाजिक न्याय और समानता के उद्देश्य से इस शिक्षण की अंतर्निहित राजनीतिक प्रकृति को पहचानने का विचार प्रस्तुत करते हैं (स्लीटर, 2011)।

रागुनाडेन एवं म्यूएलर (2017) स्वदेशी ज्ञानमीमांसा पर आधारित और सम्मान, प्रासंगिकता, पारस्परिकता व जिम्मेदारी के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र के प्रभाव की जांच करते हैं। इसके जरिये इन्होंने सीखने के क्षेत्र के साथ-साथ सहकर्मी परामर्श तथा अध्यापक व विद्यार्थी के बीच मजबूत संबंधों व विद्यार्थियों के भावनात्मक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास को बढ़ावा दिया। रागुनाडेन और म्यूएलर ने अपने शोध के माध्यम से बताया कि सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र ने विद्यार्थियों की भागीदारी को बढ़ाया एवं एक बेहतर समुदाय का निर्माण किया तथा मुख्यधारा की शिक्षा में सांस्कृतिक विसंगतियों को रेखांकित किया, जो अक्सर गैर-प्रमुख सांस्कृतिक पहचानों को हाशिए पर डाल देती है। इन्होंने बताया कि सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी, संबंध-परक एवं समुदाय-आधारित शैक्षिक दृष्टिकोण प्रमुख रूप से स्थानीय विद्यार्थियों के शैक्षणिक प्रदर्शन को बढ़ाते हैं (रागुनाडेन एवं म्यूएलर, 2017)।

अध्यापक शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक एवं स्वदेशी शिक्षण पद्धतियों का एकीकरण:

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षण-शास्त्र को एकीकृत किया जाना चाहिए, ताकि शिक्षकों को कक्षाओं में विद्यार्थियों की विविधता के लिए तैयार किया जा सके (एलन व अन्य, 2017)। यह शिक्षण-शास्त्र शिक्षार्थियों के बीच शैक्षणिक उपलब्धि, सांस्कृतिक क्षमता, सामाजिक न्याय व आलोचनात्मक चेतना को बढ़ावा देता है। विभिन्न शिक्षाविदों ने इससे संबन्धित एक महत्त्वपूर्ण रूपरेखा प्रस्तावित की, जो तीन मूलभूत घटकों, आलोचनात्मक चिंतन, सामाजिक न्याय और आलोचनात्मक प्रश्न के माध्यम से अध्यापक-शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षण-शास्त्र का पता लगाती हैं। ये घटक चार प्रमुख क्षेत्र, जिनमें 1. शासन और जवाबदेही, 2. नीतियाँ व कार्यक्रम, 3. पाठ्यक्रम तथा निर्देशन, तथा 4. अध्यापक शिक्षकों को लक्षित करती हैं, जिसके जरिये विविधता को महत्त्वहीन बनाने वाले मानकों व नस्लीय/सामाजिक पदानुक्रमों को मजबूत करने वाली

संस्थागत नीतियों जैसी प्रणालीगत कमियों को उजागर करते हैं। यह रूपरेखा अध्यापक शिक्षा को एक परिवर्तनकारी स्थान लेने हेतु फिर से आह्वान करती है एवं शिक्षक प्रशिक्षुओं व शिक्षकों दोनों के मध्य समानता-उन्मुख स्वभाव को प्राथमिकता देती है (एलन एवं अन्य, 2017)।

लैम्बे (2003) ने स्वदेशी व मुख्यधारा की शिक्षा के बीच के अंतर की आलोचनात्मक जाँच की, जिसके पश्चात उन्होंने स्वदेशी शैक्षणिक सिद्धांतों को मूल अध्ययन कार्यक्रमों में प्रमुख रूप से एकीकृत करने की वकालत की। यह विद्यार्थियों के व्यक्तिगत संबंधों, सामुदायिक जिम्मेदारी एवं समग्र विकास पर आधारित स्वदेशी शिक्षा मेंटरशिप, सांस्कृतिक दृष्टिकोण, अनुभव-आधारित एवं व्यक्तिगत एजेंसी पर केंद्रित है। यह सीखने के लिए विद्यार्थियों की विविधता, आध्यात्मिक संबंध व प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्टता पर जोर देता है। इसके विपरीत मुख्यधारा की शिक्षा ज्ञानोदय, तर्कवाद, औद्योगिक दक्षता प्रतिमान एवं व्यवहारवादी मनोविज्ञान में निहित है। यह शिक्षा अक्सर मानकीकृत तरीकों, पदानुक्रमित ज्ञान संरचनाओं और अवैयक्तिक निर्देशन पर निर्भर करती है। लैम्बे का तर्क है कि स्वदेशी शिक्षण-शास्त्र को शामिल करने के लिए समय, मूल्यांकन, शक्ति और ज्ञानमीमांसा के प्राधिकरण के बारे में अकादमिक मान्यताओं पर पुनर्विचार करना आवश्यक है। वह वास्तविक शैक्षिक बहुलवाद को प्राप्त करने के लिए पारस्परिक सम्मान, लचीलेपन तथा संकाय व विद्यार्थियों, दोनों की विभिन्न प्रतिमानों में भागीदारी करने का आह्वान करते हैं (लैम्बे, 2003)।

सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षा का संश्लेषण:

बोटियानी एवं अन्य (2017) ने सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे ज्ञान, विश्वास, निर्देशात्मक रणनीतियाँ और विद्यालय से संबंधित सभी नीतियों पर अपनी बात रखी, लेकिन इनमें से कोई भी प्रभावकारिता या मापनीयता के लिए साक्ष्य के उच्च मानकों को पूरा नहीं करती है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हालांकि कई ढांचे एवं व्यावसायिक विकास प्रतिमान मौजूद हैं, लेकिन वर्तमान में उनकी प्रभावकारिता के बारे में ठोस निष्कर्ष निकालने के लिए शोध के आधार अपर्याप्त हैं। वे एक विश्वसनीय साक्ष्य का आधार बनाने के लिए एक कठोर एवं अच्छी तरह से डिज़ाइन किए गए अध्ययनों का आह्वान करते हैं, जो बड़े पैमाने पर कार्यान्वयन और नीति-निर्माण को सूचित कर सकते हैं (बोटियानी एवं अन्य, 2017)। एरोनसन और लाफ्टर (2016) का तर्क है कि सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षा को नवउदारवादी शिक्षा सुधारों द्वारा हाशिए पर रखा गया, जो मुख्य रूप से मानकीकृत परीक्षण एवं व्यक्तिगत उपलब्धि को प्राथमिकता देते हैं। उन्होंने जेनेवा के कक्षा अभ्यासों पर जोर और लैडसन-बिलिंग्स के अध्यापक स्वभाव एवं सामाजिक-राजनीतिक चेतना पर ध्यान केंद्रित करने के विशिष्ट योगदानों को रेखांकित किया। उनके संश्लेषण ने सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षा के चार प्रमुख बिन्दुओं की पहचान की:

1. विद्यार्थियों के सांस्कृतिक संदर्भों के साथ शैक्षणिक सामग्री को जोड़ना,
2. आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना,
3. सांस्कृतिक क्षमता को बढ़ावा देना; और
4. उत्पीड़न की प्रणालियों को चुनौती देना।

उन्होंने असमानताओं का विरोध करने और सामाजिक न्याय के लिए कक्षाओं को पुनः तैयार करने के लिए शैक्षिक विमर्श के केंद्र में सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षा को फिर से स्थापित करने की भी वकालत की (एरोनसन

एवं लाफ्टर, 2016)।

हाशियाकृत समूहों के लिए सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र:

सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक और उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र की सीमाओं की आलोचना करते हुए जैंगो पेरिस (2012) तर्क देते हैं कि अधिकतर शैक्षिक अभ्यास हाशियाकृत समुदायों की भाषाई एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को पर्याप्त महत्त्व देने व उसे बनाए रखने में विफल रहते हैं। बिलिंग्स (1995) की सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षण-शास्त्र आधार पर पेरिस (2012) *सांस्कृतिक रूप से स्थायी* शिक्षण-शास्त्र की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं, जो न केवल विद्यार्थियों को प्रमुख सांस्कृतिक दक्षताओं को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है, बल्कि उनकी विरासत संस्कृतियों व भाषाओं को बनाए रखने का लक्ष्य भी रखता है। राणा (2024) समावेशी और न्यायसंगत शिक्षा प्रणालियों की आवश्यकता के बारे में बताते हैं। विशेष रूप से ये ऐतिहासिक रूप से हाशियाकृत आबादी, जिनमें जातीय अल्पसंख्यकों, विकलांग व्यक्तियों, निम्न आय वाले परिवारों एवं ग्रामीण समुदायों की जरूरतों को पूरा करने वाली विभिन्न न्यायसंगत शिक्षा प्रणालियों के बारे में बताते हैं। हम देखते हैं कि शिक्षा को मानव अधिकार के रूप में वैश्विक मान्यता मिलने के बावजूद भी सामाजिक-आर्थिक बाधाओं, सांस्कृतिक व भाषाई बाधाओं, भेदभाव आधारित परम्पराओं व अपर्याप्त बुनियादी ढांचे में निहित प्रणालीगत असमानताएं विद्यार्थियों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुंच को सीमित करती हैं। राणा (2024) इस बात पर जोर देते हैं कि इन असमानताओं पर काबू पाने के लिए बहुआयामी हस्तक्षेप की आवश्यकता है, जिसमें प्रारंभिक बाल्यावस्था की शिक्षा, सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र, समान वित्त पोषण, समावेशी पाठ्यक्रम, अध्यापकों की विविधता व सामुदायिक जुड़ाव शामिल हैं। उन्होंने इस बात पर प्रकाश डाला कि अध्यापकों, नीति-निर्माताओं एवं समुदायों के सामूहिक प्रयास इन गहरी चुनौतियों का समाधान करने तथा यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं कि प्रत्येक शिक्षार्थी को उनकी पृष्ठभूमि या सामाजिक संदर्भ की पहचान की परवाह किए बिना अकादमिक और सामाजिक रूप से आगे बढ़ने का अवसर मिले (राणा, 2024)।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र: शिक्षकों के अनुभव और चुनौतियाँ

डलास (2023) ने पता लगाया कि पूर्व विद्यालयी अध्यापक सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी, प्रासंगिक और सतत शिक्षण-शास्त्र को कैसे लागू करते हैं। वे उनके अनुभवों, रणनीतियों व उनके सामने आने वाली चुनौतियों पर प्रकाश डालते हैं (डलास, 2023)। इन्होंने शिक्षकों के पास सीमित संसाधनों, अपर्याप्त व्यावसायिक विकास एवं द्विभाषिकता की चुनौतियों को भी रेखांकित किया। इन बाधाओं के बावजूद, सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी, प्रासंगिक और सतत शिक्षण-शास्त्र को समावेशी कक्षा वातावरण बनाने के लिए आवश्यक माना गया, जो हाशियाकृत बच्चों के शैक्षणिक एवं सामाजिक तथा भावनात्मक विकास का समर्थन करते हैं। उन्होंने बच्चों में पूर्व विद्यालयी स्तर से आगे की शैक्षिक असमानताओं को दूर करने के लिए सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी, प्रासंगिक और सतत शिक्षण-शास्त्र के प्रशिक्षण एवं प्रणालीगत सुधारों की अनिवार्यता का तर्क दिया (डलास, 2023)।

निष्कर्ष:

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र भारतीयता के लिए शिक्षा को परिभाषित करने का एक महत्त्वपूर्ण मार्ग प्रदान करता है, इस शिक्षण-शास्त्र में समता, समानता व समावेशिता के गुण निहित हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों के साथ सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र का संरेखण विद्यार्थियों

की सांस्कृतिक पहचान एवं उनके सीखने के लिए जीवंत अनुभवों को महत्त्व देते हुए, कमी-आधारित से संपदा-आधारित शिक्षाशास्त्र की ओर एक महत्त्वपूर्ण बदलाव का संकेत देता है। हालाँकि, इस शिक्षण-शास्त्र के माध्यम से विद्यार्थियों में मौजूद दक्षताओं का उपयोग करने के लिए अध्यापक-शिक्षा, पाठ्यक्रम सुधार एवं संस्थागत क्षमता निर्माण में निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि शिक्षकों को अपने शिक्षण में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र को प्रभावी ढंग से एकीकृत करने के लिए मजबूत समर्थन प्रणाली, सतत व्यावसायिक विकास व चिंतनशील प्रथाओं की आवश्यकता होती है, जबकि मानकीकरण दबाव, भाषायी विविधता एवं प्रणालीगत स्थिरता, जैसी चुनौतियाँ बनी रहती हैं। इस शिक्षण में सांस्कृतिक रूप से पुष्टि करने एवं सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण कक्षाएँ बनाने के अवसर उपलब्ध होते हैं। हम देखते है कि जैसे-जैसे भारत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लागू करने की ओर आगे बढ़ रहा है, हम कह सकते हैं कि सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र इस नीति के लक्षित उद्देश्यों को पूरा करने के साथ-साथ 21वीं सदी के शैक्षिक परिवर्तनों के लिए अवश्य उत्प्रेरक के रूप में काम करेगा।

सन्दर्भ सूची

अन्यिचिए, ए. सी. (2018).सपोर्टिंग ऑल लर्नर्स इंगेजमेंट इन ए मल्टीकल्चरल क्लासरूम यूजिंगए कल्चरली रेस्पॉन्सिव सेल्फ-रेगुलेटेड लर्निंग फ्रेमवर्क

अरोड़ा, प. (2024). सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र के सैद्धांतिक दृष्टिकोण की समीक्षा. *ज्ञान गरिमा सिंधु.* अंक.81, 303-310

अरोड़ा, पी. (2021). इंडियननेस इन एडुकेशन: फाउंडेशनल की फॉर ए सेल्फ रिलाइंट इंडिया, अरोड़ा, पी. (एडिटर) और गांधी, एच. (एडिटर) नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020: पविंग वेज़ फॉर ट्रांसफॉरमेशनल रिफॉर्म (फ़र्स्ट एड), शिप्रा पब्लिकेशन।

अरोड़ा, प., एवं पांडेय, रा. (2021). भारतीयता के लिए शिक्षा. प. अरोड़ा एवं उ. शर्मा (संपा.), *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : रचनात्मक सुधारों की ओर* (पृ. 80–89). शिप्रा पब्लिकेशन

अल्तेकर, ए.एस.(1944). एडुकेशन इन असिएंट इंडिया.बनारस: नंदकिशोर & ब्रदर्स

उन्नीकृष्णन, जी. (2023), एजुकेशन एज़ ह्यूमन कैपिटल: इंडियन नॉलेज सिस्टम्स एंड कल्चरली रिस्पांसिबल पेडगॉजी

एरोन्सन, बी., & लाफ्टर, जे. (2016). द थिअरी एंड प्रैक्टिस का कल्चुरली रेलीवेंट एजुकेशन: ए सिंथेसिस ऑफ़ रिसर्च एक्रॉस कंटेंट एरियाज. *रिव्यु ऑफ़ एज्युकेशनल रिसर्च, 86*(1), 163–206 https://doi.org/10.3102/0034654315582066

एलेन, ए., व अन्य (2017). मैपिंग कल्चरली रेलीवेंट पेडागोगी इंटू टीचर एडुकेशन प्रोग्राम्स: ए क्रिटिकल फ्रेमवर्क. टीचर्स कॉलेज रिकॉर्ड, 119, 26

ओके, ई. (2025) *एक्सप्लोरिंग इंडीजिनस कॉम्पोनेंट्स फॉर प्रमोटिंग सस्टेनेबल डेवलपमेंट इन द संथाल कम्युनिटी.* लाडोके अकिंटोला यूनिवर्सिटी ऑफ़ टेक्नोलॉजी

कास्टाग्नों, ए.ई. एवं ब्रेयबॉय, बी. एम. जे. (2008) कल्चरली रेस्पॉन्सिव स्कूलिंग का इंडीजीनस यूथ: ए रिव्यू ऑफ़ द लिटरेचर. *रिव्यु ऑफ़ एज्युकेशनल रिसर्च. 78*(4), 941–993 https://doi.org/10.3102/0034654308323036

कास्टाग्नों, ए.ई. एवं अन्य (2022). डेवलपिंग एंड पायलटिंग अ टूल टू असेस कल्चरली रेस्पॉन्सिव प्रिंसिपल्स इन स्कूल सर्विंग इंडीजिनस स्टूडेंट. *डायस्पोरा, इंडीजिनस एंड माइनॉरिटी एजुकेशन*, *16*(2), 133–147 https://doi.org/10.1080/15595692.2021.1956455

गिस्ट, सी., जैक्सन, आई., नाइटेंगल-ली, बी., और एलन, के. (2019). *कल्चरली रेस्पॉन्सिव पेडगॉजी एंड टीचर एजुकेशन.* ऑक्सफोर्ड रिसर्च एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ एजुकेशन https://doi.org/10.1093/acrefore/9780190264093.013.266

गुतिरेज़, के.डी. (2008) डेवलपिंग ए सोशियो-क्रिटिकल लिटरेसी इन द थर्ड स्पेस. *रीडिंग रिसर्च क्वार्टरली*, *43*(2), 148–164 https://doi.org/10.1598/rrq.43.2.3

गे, जी. (2005) पॉलिटिक्स ऑफ मल्टीकल्चरल टीचर एजुकेशन. *जर्नल ऑफ़ टीचर एजुकेशन, 56*(3), 221-228 https://doi.org/10.1177/0022487105275913

चाँग, डबल्यू. सी., & विएस्का, के. एम. (2022). प्रिपेयरिंग टीचर्स का कल्चरली रेस्पॉन्सिव/रेलीवेंट पेडगॉजी (सीआरपी): ए क्रिटिकल रिव्यू ऑफ़ रिसर्च *टीचर्स कॉलेज रिकॉर्ड: द वॉयस ऑफ़ स्कॉलरशिप इन एजुकेशन*, *124*(2), 197–224 https://doi.org/10.1177/01614681221086676

टेलर, आर. डब्ल्यू. (2010) ए मोरल इंपरेटिव फॉर इनस्योरिंग एकेडमिक सक्सेस का डाइवर्स स्टूडेंट पापुलेशंस *मल्टीकल्चरल एजुकेशन*. *17*(3), 24–28

डर्डन, टी., डूली, सी.एम.एम., और ट्रस्कॉट, डी. (2016) रेस स्टिल मैटर्स: प्रिपेयरिंग कल्चुरली रेलीवेंट टीचर्स *रेस एथनीसिटी एंड एजुकेशन*, *19*(5), 1003–1024 https://doi.org/10.1080/13613324.2014.969226

डल्लास, ई. डी. (2023) *ए फार्मिंग कल्चरल पेडगॉजी इन प्रीस्कूल सेटिंग: एजुकेटर्स, एक्सपिरिएंसेस इंप्लीमेंटिंग कल्चरल रेस्पॉन्सिव,रेलीवेंट एंड सस्टेनिंग पेडगॉजी* (डक्ट्रेल डिसर्टेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ़ एरीजोना ग्लोबल केंपस)

डेम्मेर्ट, डबल्यू. जी., (1999) इंडियन एजुकेशन रिविजिटेड: ए पर्सनल एक्सपीरियंस *जर्नल ऑफ़ अमेरिकन इंडियन एजुकेशन, 38*(3), 5-13 https://www.jstor.org/stable/24413730

धर्मपाल. (1983) द *ब्यूटीफुल ट्री: इंडीजिनस इंडियन एजुकेशन इन द एटीन्थ सेंचुरी* बिबलिया इम्प्लेक्स

निकोल, सी., आर्चीबाल्ड, जे. एन., और बेकर, जे. (2013) डिजाइनिंग ए मॉडल ऑफ़ कल्चरली रेस्पॉन्सिव मैथमेटिक्स एजुकेशन: प्लेस, रिलेशनशिप्स एंड स्टोरी वर्क मैथमेटिक्स एजुकेशन रिसर्च जर्नल, *25*(1), 73–89 https://doi.org/10.1007/s13394-012-0062-3

नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020. मिनिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन से https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf मई 2025 को प्राप्त किया।

पेरिस, डी. (2012) कल्चरली सस्टेनिंग पेडगॉजी: ए नीडेड चेंज इन स्टेंस, टर्मिनोलॉजी एंड प्रैक्टिस*एजुकेशनल रिसर्चर* (वॉल्यूम. 41, इशू 3, पीपी. 93–97) https://doi.org/10.3102/0013189X12441244

बधेका, गि. (2004) *दिवास्वप्न: एन एक्सपेरीमेंट इन एजुकेशन* नेशनल बुक ट्रस्ट

बसु, ए. (1985) रिव्यु ऑफ़ द *ब्यूटीफुल ट्री: इंडीजीनस एजुकेशन इन 18th सेंचुरी* में धर्मपालऔर *वन टीचर,वन स्कूल* बाई जोसेफ डिबोना *कंपैरेटिव एजुकेशन रिव्यू*, 29(1), 137–140 https://www.jstor.org/stable/1188155

बोत्तियानी, जे. एच. एवं अन्य (2018) प्रमोटिंग एजुकेटर्स उसे का कल्चरली रेस्पॉन्सिव प्रैक्टिस: ए सिस्टमैटिक रिव्यू ऑफ़ इन-सर्विस इंटरवेंशन *जर्नल ऑफ़ टीचर एजुकेशन, 69*(4), 367–385 https://doi.org/10.1177/0022487117722553

मैककार्टी, टी.एल., और ब्रेबॉय, बी.एम.के.जे. (2021) कल्चरली रेस्पॉन्सिव,सस्टेनिंग एंड रिवाइटलाइजिंग पेडागोजीज: पर्सपेक्टिव्स फ्रॉम नेटिव अमेरिकन एजुकेशन *एजुकेशनल फोरम*, *85*(4), 429–443 https://doi.org/10.1080/00131725.2021.1957642

मोल, एल. सी., और गोंजालेज, एन. (1994) लेसंस फ्रॉम रिसर्च विद लैंग्वेज माइनॉरिटी चिल्ड्रन *जर्नल आफ रीडिंग* (वॉल्यूम. 26, इशू 4)

मोल, एल., अमंती, सी., नेफ, डी., और गोंजालेज, एन. (2006) फंड्स आफ नॉलेज फॉर टीचिंग: यूजिंग ए क्वालिटेटिव अप्रोच टु कनेक्ट होम्स एंड क्लासरूम्स फंड्स ऑफ नॉलेज (पीपी. 71-87) रूटलेज

रागूनाडेन, के., और म्यूएलर, एल. (2017) *कल्चरली रेस्पॉन्सिव पेडागॉजी: इंडिजिनिज़िंग करिकुलम* (वॉल्यूम. 47, इशू 2) http://www.pre.ethics.gc.ca/eng/policy-politique/initiatives/tcps2-eptc2/chap-

राणा, डी. के. (2024) *क्वालिटी एजुकेशन फॉर अंडररिप्रेजेंटेड ग्रुप्स: ब्रिजिंग द गैप. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंग्लिश लिटरेचर एंड सोशल साइंसेज*, 9(1), 212–219 https://dx.doi.org/10.22161/ijels.91.28

राधाकृष्णन, एन. (1990) इंडीजिनस एजुकेशन इन ब्रिटिश इंडिया: ए प्रोफाइल *इंडियन जर्नल ऑफ़ सोशल साइंस*, 3(4), 377–388

लिम, एल., टैन, एम., और सैटो, ई. (2019) कल्चरली रेलीवेंट पेडागॉजी: डेवलपिंग प्रिंसिपल्स ऑफ़ डिस्क्रिप्शन एंड एनालिसिस *टीचिंग एंड टीचर एजुकेशन*, *77*, 43–52 https://doi.org/10.1016/j.tate.2018.09.011

ले पिचोन, ई., वॉट्टर, डी., नाजी, एम., चा, एच.आर., जिया, वाई., और तारिक, के. (2024) टुवर्ड्स लिंग्विस्टिकली एंड कल्चरली रेस्पॉन्सिव करिकुला: द पोटेंशियल ऑफ रिसिप्रोकल नॉलेज इन एसटीईएम एजुकेशन. *लैंग्वेज, कल्चर एंड करीकुलम*, *37*(1), 10–26 https://doi.org/10.1080/07908318.2023.2221895

लैडसन-बिलिंग्स, जी. (1995) टुवर्ड्स ए थ्योरी ऑफ़ कल्चरली रेलीवेंट पेडगॉजी *अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च जर्नल*, 32(3), 465-491

लैम्बे, जे. (2003) इंडीजिनस एजुकेशन, मेनस्ट्रीम एजुकेशन एंड नेटिव स्टडीज: सम कंसीडरेशंस व्हेन इनकॉरपोरेटिंग इंडीजिनस पेडगॉजी इन नेटिव स्टडीज *अमेरिकन इंडियन क्वार्टरली*, 27(1/2), 308–324 https://www.jstor.org/stable/4138868

वैक्स, आर., और वैक्स, एम. (1965) इंडियन एजुकेशन फॉर व्हाट? *मिड कॉन्टिनेंट अमेरिकन स्टडीज जर्नल, 6*(2), 164-170 https://www.jstor.org/stable/40640563

सियाम्पा, के., & रेसबोर्ड, डी. (2024) एंपावरिंग टीचर एजुकेटर्स: एडवांसिंग कल्चरल रेस्पॉन्सिव प्रैक्टिसेस थ्रू प्रोफेशनल डेवलपमेंट *एक्शन इन टीचर एजुकेशन* https://doi.org/10.1080/01626620.2024.2357088

स्लीटर, सी. ई. (2011) *एन एजेंडा तू स्ट्रेंजर कल्चरली रिस्पांसिव पेडगॉजी इंग्लिश टीचिंग: प्रैक्टिस एंड क्रिटिक* http://education.waikato.ac.nz/research/files/etpc/files/2011v10n2art1.pdf से प्राप्त किया।

हांग, एस., बलूच, एम.एच., कोंकलिन, के.एच., और वॉरेन, एच.डब्ल्यू (2022). टीचर-फैमिली सॉलिडेरिटी एज़ कल्चरली सस्टेनिंग पेडगॉजी एंड प्रैक्टिस.*अर्बन एजुकेशन*, 60(1), 90–122 https://doi.org/10.1177/00420859221131809

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा की अवधारणात्मक समझ का वितान

प्रोफेसर उषा शर्मा
आचार्य व प्रभारी, राष्ट्रीय साक्षरता केंद्र प्रकोष्ठ, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
ushasharma1730@yahoo.com

प्रस्तावना

शिक्षा मनुष्य की आवश्यकता भी है और अनिवार्यता भी है, क्योंकि शिक्षा मनुष्य को 'मनुष्यत्व' के छवि-आकार में ढालती है एवं मनुष्य के अस्तित्व, पहचान को भी संरक्षित करती है। शिक्षा एक अनवरत् चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है, जो विद्यालय एवं महाविद्यालय के 'परकोटे' या 'चहारदीवारी' से बँधी हुई नहीं है। वस्तुत: 'बंधन' शिक्षा का न तो स्वभाव है और न ही उसकी प्रकृति और शिक्षा अपने स्वयं के स्वभाव के विरुद्ध जाकर कदाचित ही मनुष्य को 'बंधन' में बाँधने का प्रयास करेगी, अपितु शिक्षा मनुष्य को हर प्रकार के बंधन से मुक्त करती है- *'सा विद्या या विमुक्तये'*। हितोपदेश में भी कहा गया है- *'विद्यां ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्। पात्रत्वात् धनमाप्नोति, धनात् धर्मं ततः सुखम्।।'* अर्थात् 'विद्या मनष्यु को विनम्र बनाती है, विनय से मनुष्य योग्यता को प्राप्त होता है, योग्यता से धन को प्राप्त करता है, धन से धर्म प्राप्त होता है, उस धर्म से सुख प्राप्त होता है।' शिक्षा की यह विस्तृत व्याख्या यह सिद्ध करती है कि शिक्षा केवल किसी विषय का अध्ययन नहीं है, बल्कि वह मानवीय गुणों से भी पूरित करती है। 'विनय, विनम्रता, क्षमाशीलता आदि गुण मानव को मानव' के स्थान से कहीं ऊपर का स्थान प्रदान करते हैं। जितनी अधिक विद्वत्ता, उतनी अधिक विनम्रता और जितनी विनम्रता उतना ही क्षमा करने का भाव! दूसरों की प्रशंसा और दूसरों को क्षमा वही कर सकता है, जिसका स्वयं पर विश्वास हो!

इस संदर्भ में यह प्रश्न भी बार-बार उठता है कि अंतत: इस 'शिक्षा' की कोई आवश्यकता भी है? प्रत्युत्तर मिलता है– हाँ, शिक्षा की आवश्यकता है! मानव-मात्र के हृदय में मानवीय गुणों का संस्कार इसी शिक्षा के माध्यम से संभव है। यह जीवन में घटित होने वाली एक ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के विकास से प्रारंभ होती तो है परंतु उसकी यात्रा में 'समाज', 'राष्ट्र' और 'विश्व' भी पड़ाव के रूप में देखे जा सकते हैं। व्यष्टि से समष्टि तक की इस यात्रा में शिक्षा सभी को 'विमुक्त' करती चलती है, अंतर इस बात का है कि *'किसे किससे मुक्त होना है!'* एक उदाहरण के रूप में देखें तो व्यक्ति को दुर्गुणों से, व्यसनों से, तो समाज को भ्रष्टाचार, विसंगतियों से और राष्ट्र को राष्ट्र-विरोधी सोच एवं कार्यों से मुक्त होना है। ऐसा कदापि नहीं है कि राष्ट्र के सुमंगल की कामना केवल राष्ट्र तक सीमित है, अपितु राष्ट्र की विराट संकल्पना में व्यक्ति और समाज- दोनों सहज भाव से सम्मिलित हैं, क्योंकि व्यक्ति के बिना राष्ट्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परंतु इतना तो सत्य है कि 'राष्ट्र रहेगा तो हम रहेंगे,' अर्थात् व्यक्ति के स्वयं का अस्तित्व, उसकी स्वयं की अस्मिता, राष्ट्र पर ही निर्भर करती है, अत: राष्ट्र-विरोधी सोच वस्तुत: व्यक्ति विरोधी बन जाती है। इस अर्थ में एक की 'मुक्ति' दूसरे के लिए भी 'मुक्ति' का मार्ग प्रशस्त करती है।

शिक्षा: स्व-साक्षात्कार का संस्कार

व्यक्ति और राष्ट्र के मध्य जिस तरह के 'अंतरंग' संबंध हैं, उसी प्रकार से शिक्षा और जीवन का 'अंतरंग' संबंध है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि शिक्षा और जीवन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और एक-दूसरे को निरंतर प्रभावित करते हैं। यदि सामान्य रूप से किसी से भी यह प्रश्न किया जाए कि- बताइए, सबसे अधिक महत्त्व

किसका है- शिक्षा का या जीवन का? प्रश्न कठिन नहीं है, कठिन यह है कि प्राय: इसके बारे में बहुत गहराई से चिंतन-मनन नहीं किया जाता और अक्सर 'शिक्षा' को अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया जाता है, जबकि अधिक महत्त्वपूर्ण है – जीवन! *'जीवन रहेगा तो शिक्षा काम आएगी!'* भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 भारतीय नागरिकों को 'जीने/जीवन' का मौलिक अधिकार देता है और अनुच्छेद 21A 'शिक्षा' का मौलिक अधिकार! भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकार भी यही प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि शिक्षा और जीवन का परस्पर प्रगाढ़ संबंध है और गुणवत्तापूर्ण जीवन के लिए शिक्षा काम आती है। जीवन को *सद् जीवन* बनाने का कार्य शिक्षा करती है। शिक्षा और जीवन दोनों अभिन्न रूप से इस प्रकार से गुंथे हुए हैं कि दोनों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व स्पष्टत: दृष्टिगत नहीं होता। वे दूध और पानी की तरह इस प्रकार मिले हुए रहते हैं कि दोनों की उपस्थिति का भान तो होता है परंतु अलग-अलग नहीं! कौन किसके साथ मिला हुआ है, यह कहना कठिन है। जीवन जीते हुए हम बहुत कुछ सीखते हैं और इस 'बहुत कुछ सीखने' का उपयोग जीवन जीने में करते चलते हैं। उदाहरण के रूप में, एक व्यक्ति बाज़ार जाता है और बाज़ार-दर्शन से वह यह सीखता है कि बाज़ार हमेशा 'भरे पेट' जाना चाहिए अन्यथा आवश्यकता न होने के उपरांत भी हम बहुत कुछ अनावश्यक 'खाकर' आते हैं और अपच हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि हम अनावश्यक खरीददारी कर बैठते हैं और बजट गड़बड़ा जाता है। यह 'सिखाई' तब होती है, जब हम स्वयं उस अनुभव से गुज़रते हैं और एक बार 'घाटा' उठाने के बाद इस 'सिखाई' से सीख जाते हैं और अगली बार 'भरे पेट' बाज़ार जाते हैं और अनावश्यक कुछ भी नहीं खरीदते। इस प्रकार जीवन में जो कुछ भी व्यवहार स्तर पर होता है, वह 'सीखना' या 'शिक्षा' जीवन के अगले पड़ाव पर काम आती है और हम अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करते हैं। इस तरह से जीते-जीते, 'जीना' सीख जाते हैं। शिक्षा वह सब कुछ है, जो सीखने और उस सीखे हुए के अनुप्रयोग से जुड़ा हुआ है और यही उसकी व्यापकता की परिधि का निर्धारण करता है।

'शिक्षा' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार होती है- शिक्ष्+अ+टाप्, जिसके अनेक अर्थ हैं– दंड, गुरु के निकट विद्याभ्यास, उपदेश, सलाह। विशेषण- गुरु के उपदेशों के अनुसार आचरण करने वाला। वामन शिवराम आप्टे के *संस्कृत-हिंदी कोश* में 'शिक्षा' के व्युत्पत्तिपरक अर्थ को भिन्न-भिन्न रूप से व्याख्यायित किया गया है। शिक्षा का और अधिक अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि शिक्षा एक ओर 'अधिगम' है तो दूसरी ओर छह वेदांगों में से एक! शिक्षा का स्वरूप अत्यंत बृहद् और बहुआयामी है। 'अधिगम, अध्ययन, किसी कार्य को करने के योग्य होने की इच्छा, निष्णात होने की इच्छा, अध्यापन, शिक्षण, प्रशिक्षण, ज्ञानाभिग्रहण, रण शिक्षा, युद्ध विज्ञान, छह वेदांगों में से एक, जिसके द्वारा शब्दों का सही उच्चारण तथा संधि के नियम सिखाए जाते हैं, विनम्र, विनम्रता, शक्ति और कुशलता – इतना बड़ा है शिक्षा का वितान, जिसमें मानव से संबद्ध अनेक 'गुण' स्वयंमेव सम्मिलित हो जाते हैं।

शिक्षा जीवन का वह संस्कार है, जो व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाता है और उसके व्यक्तित्व-रूपांतरण का कारक बनता है। हम वैसा बन पाते हैं, जैसा बनने और जैसा कार्य करने के लिए हमारा जन्म होता है। यह सुनिश्चित है कि ब्रह्मांड की कोई भी क्रिया निरुद्देश्य नहीं होती, प्रत्येक क्रिया सोद्देश्य होती है और कुछ ठोस परिणामों की अपेक्षा करती है ... रिक्तता नहीं, पूर्णता! जीवना-यात्रा का प्रस्थान बिंदु तब निर्धारित होता है, जब हम अपने 'अस्तित्व' अथवा अपने होने के कारण को जान पाते हैं। भीतर से बाहर की यात्रा का स्पष्टीकरण होते ही हम बाहर से भीतर की यात्रा का मार्ग पकड़ते हैं ... अनंत गहन ... और अंतस मन की यात्रा! *मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है* (स्वामी विवेकानंद, 1956, पृ. 6), तो हमें ऐसे प्रयास करने होंगे, जो मनुष्य की दिव्यता, पूर्णता को उजागर कर सके।

यह तय है कि शिक्षा व्यक्ति और उसके जीवन को गरिमामय और गुणवत्ता प्रदान करती है और जीव एवं जीवन के मूल प्रश्नों के उत्तर खोजने में सहायक होती है। मानव-चिंतन की एक बहुत बड़ी खोज रही है- 'मैं कौन हूँ?, मैं कहाँ से आया हूँ? मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? सभी प्रश्न मानव-अस्तित्व की तलाश करते हैं। शिक्षा की तत्वमीमांसा का भी मूल प्रश्न यही है - 'मैं कौन हूँ?'

'मैं कौन हूँ?' अथवा 'मैं क्यों हूँ?' जैसे प्रश्नों के उत्तर खोजने में वेदांत दर्शन सहायता करता है और हमें एक सूत्र देता है – '*तत्वमसि*' (छान्दोग्य उपनिषद् 6/8/7)! वेदान्त दर्शन को अद्वैत के रूप में माना जाता है, जहाँ ब्रह्म और जीव में कोई अंतर नहीं है – *तत् त्वं असि*! *अहम ब्रह्मोऽस्मि*! (बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/10), जहाँ ब्रह्म ही मूल तत्व है, जहाँ जीव और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है, क्योंकि अद्वैत का अर्थ ही होता है- जहाँ द्वैत या दो का अस्तित्व न हो! तो इस दृष्टि से शिक्षा का लक्ष्य ब्रह्म को, अपने उस स्वरूप को जानना है, उसके लिए प्रयत्न करना है। इसे हम अनेक बार आत्म-साक्षात्कार या आत्मानुभूति भी कहते हैं, यानी स्व की अनुभूति! एक और सूत्र वाक्य प्राप्त होता है - *प्रज्ञानं ब्रह्म!* (ऐतरेय उपनिषद् 1/3/3) अर्थात् 'ज्ञान ही ब्रह्म है। 'प्रज्ञान' शब्द में 'प्र' का अर्थ है- 'सर्वोच्च' और 'ज्ञान' विद्या, बोध, बुद्धि को द्योतक है। इस प्रकार *प्रज्ञानं ब्रह्म!* का अर्थ है- सर्वोच्च ज्ञान- परम सत्य को जान लेना और यह परम सत्य या सर्वोच्च ज्ञान ब्रह्म है, जिसे जानना चाहिए। सत्य ही सर्वोच्च ज्ञान और सर्वोच्च ज्ञान ही सत्य है! परम सत्य अथवा परम सत्ता परमात्मा की है, जिसे जानना चाहिए और जिसे जान लेने पर सब जान लिया जाता है!

मुण्डकोपनिषद् में भी परमेश्वर की महिमा का वर्णन मिलता है –

*यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः। तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते। (*मुण्डकोपनिषद्, 9, पृ. 236*)*

अर्थात् '*जो सर्वज्ञ तथा सर्ववित् (सबको जानने वाला) है, जिसका ज्ञानमय तप है; उसी परमेश्वर से यह विराट स्वरूप जगत तथा नाम रूप और भोजन उत्पन्न होते हैं।'*

इस प्रकार, जिनके कारण समस्त जगत की उत्पत्ति हुई है, उस परमेश्वर को जानने से सब जान लिया जाता है। जब शौनक ऋषि ने यह प्रश्न किया था कि 'किसके जानने से सब कुछ जान लिया जाता है,' तो इसके उत्तर में उन्होंने ब्रह्म को जानने की बात की थी।

उपनिषद् साहित्य में '*सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'* शिक्षा का सार तत्व है। इस वाक्य के अनुसार 'शिक्षा' वह है, जिसके द्वारा मानव को सत्य-रूप ज्ञान का परम साक्षात्कार हो तथा साथ ही ब्रह्म की उपलब्धि भी। अन्य भौतिक ज्ञान ब्रह्म-रूप सत्य-ज्ञान से परे होने के कारण अविद्या तथा अज्ञान की कोटि में ही आते हैं, क्योंकि भौतिक ज्ञान साधना में लीन रहने पर मनुष्य की न तो सांसारिक माया-जाल से मुक्ति है और न ही आवागमन से। सत्य-ज्ञान की उपलब्धि ब्रह्म-साक्षात्कार होने पर ही संभव है। जैसा कि उपनिषद में कहा गया है- '*भिद्यते हृदयग्रंथिच्छिद्यन्ते सर्व संशयः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणी तस्मिन् दृष्टे परावरे*।' (मुण्डक उपनिषद् 8/40)। इस अर्थ में सत्य ज्ञानोपलब्धि से समस्त संशयों के निराकरण होने पर ही मनुष्य को ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और ब्रह्म-साक्षात्कार ही मानव जीवन मूल उद्देश्य है, जिसे उपनिषदों में प्रतिपादित किया गया है।

माण्डूक्योपनिषद् को वेदान्त का सार ग्रंथ कहा जाता है, जिसका मुख्य विषय आत्मा, ब्रह्म और चेतना है। माया, अविद्या, चेतना की चार अवस्थाएँ, विवेक, अविवेक आदि की भी चर्चा मिलती है। माण्डूक्योपनिषद् ॐ

या ओंकार को ही ब्रह्म के रूप में प्रतिस्थापित करता है और प्रतिपादित करता है कि आत्मा ही ब्रह्म है और ब्रह्म आत्मा। इस प्रकार वह आत्मा और ब्रह्म के एकाकार स्वरूप को भी प्रतिस्थापित करता है। ब्रह्म और आत्मा अद्वैत स्वरूप हैं, दोनों में कोई अंतर नहीं है। यह आत्मा या ब्रह्म अजन्मा है। अद्वैत स्वरूप ही सर्वोपरि है। माण्डूक्योपनिषद् अपने प्रारम्भ में ओंकार (ॐ) की चर्चा करते हुए इस बिन्दु का उल्लेख करता है कि यह 'ॐ' अक्षर ही सब कुछ है और आत्म तत्व या आत्म-बोध के लिए इसी ॐ का ध्यान करना चाहिए। माण्डूक्योपनिषद् जिस प्रकार से ॐ या ओंकार और ब्रह्म या आत्मा के अद्वैत रूप की चर्चा करता है, वही शिक्षा का लक्ष्य भी है। दर्शन के प्रथम भाग को हम तत्वमीमांसा कहते हैं, जो शिक्षा के लक्ष्य को इंगित करता है। शिक्षा का लक्ष्य जीवन के लक्ष्य से पृथक नहीं हो सकता। अत: शिक्षा का लक्ष्य इसी आत्म-तत्व का बोध है। और उस प्राप्ति का साधन है- ॐ की साधना! वस्तुत: स्वयं को समझना अथवा स्वयं का साक्षात्कार करना ही शिक्षा का लक्ष्य है।

शिक्षा: विद्या से विधान तक!

शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है- ज्ञान मीमांसा, जिसके समक्ष अनेक प्रश्न हैं- ज्ञान क्या है, किसे जानना अभीष्ट है, जानने के माध्यम क्या हैं- एकाग्रता, स्वाध्याय, चिंतन, मनन, संवाद पद्धति! भारतीय ज्ञान परंपरा में 'विद्या' को भिन्न रूप में व्याख्यायित किया जाता है। ईशावस्योपनिषद् (पृ. 34) 'विद्या' को परब्रह्म की प्राप्ति के साधन 'ज्ञान' के रूप में देखता है और 'अविद्या' का निषेध करता है-

अन्धंतम: प्रविशन्ति येऽ विद्यामुपासते।
*ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रता: ॥ (*ईशावस्योपनिषद् 9*)*

अर्थात् '*जो मनुष्य अविद्या की उपासना करते हैं, वे अज्ञानस्वरूप घोर अंधकार में प्रवेश करते हैं और जो मनुष्य विद्या में रत हैं, अर्थात् ज्ञान के मिथ्याभिमान में मत्त हैं; वे उससे भी मानो अधिक गहरे अंधकार में प्रवेश करते हैं।*'

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में उल्लिखित 'विद्या' वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में प्रचलित विषयों के 'ज्ञान' से भिन्न है और शिक्षा के लक्ष्य के अनुरूप 'विद्या' को एक उच्च कोटि के ज्ञान के रूप स्थापित करती है।

*ज्ञान मनुष्य में स्वभाव-सिद्ध है, कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अंदर ही है (*विवेकानंद, 1956; पृ. 6)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी बच्चों की सीखने संबंधी रचनात्मकता एवं उनकी विलक्षण प्रकृति को महत्त्व देती है। वस्तुत: सीखना एक तरह का आविष्कार बन जाता है और सीखने की प्रक्रिया अन्वेषण की प्रक्रिया बन जाती है, जिसमें सभी मिलकर अपने हिस्से की भागीदारी का निर्वहन करते हैं।

यदि सामान्य दृष्टि से देखें तो हमें क्या जानना अथवा क्या समझना है और क्यों जानना अथवा क्यों समझना है- माण्डूक्योपनिषद् इन सभी प्रश्नों को अलग-अलग भागों में संबोधित करता है। माण्डूक्योपनिषद् (पृ. 232) में दो प्रकार की विद्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है - परा विद्या एवं अपरा विद्या और ये दोनों विद्याएँ जानने योग्य हैं। जब ऋषि शौनक ने पूछा था- परम तत्व को कैसे जाना जाए? तो महर्षि अंगिरा ने कहा, "मनुष्य को दोनों विद्याएँ- परा एवं अपरा विद्या जाननी चाहिए। इन दोनों में से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष- ये सभी अपरा विद्या में सम्मिलित होती हैं। जिस तत्व से परब्रह्म को जाना जाता है, वह परा विद्या कहलाती है। इसका अर्थ है कि परा विद्या अलौकिक जगत से संबंधित है, जबकि अपरा विद्या भौतिक जगत अथवा

सांसारिक जगत से संबंधित है। वेदों के जितने हिस्से में तत्वज्ञान का उल्लेख मिलता है, उतना हिस्सा परा विद्या में सम्मिलित मानना चाहिए। परा विद्या एवं अपरा विद्या- दोनों का महत्त्व है और दोनों ही शिक्षा के एक महत्त्वपूर्ण विमर्श - ज्ञान मीमांसा के वितान का वर्णन करते हैं। वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली में 'ज्ञान' और 'विषयगत ज्ञान' पर अधिक बल दिया जाता है, जबकि जीवन का उद्देश्य है- परब्रह्म से साक्षात्कार, स्वयं से साक्षात्कार, जिसके लिए परा विद्या की आवश्यकता होती है।

माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार अविद्या का अर्थ है - द्वैत भाव को पोषित करना, अर्थात यह प्रतिस्थापित करना कि आत्मा और ब्रह्म एक ही तत्व नहीं हैं, दोनों में अंतर है। अविद्या को माया भी कहा गया है और माया से प्रभावित या आच्छादित आत्मा स्वयं को ब्रह्म से पृथक् समझने लगता है। इस प्रकार द्वैत प्रपंच अविद्या से उत्पन्न होता है। यदि अविद्या के संदर्भ को ही लें तो विद्या का अर्थ होगा- अद्वैत भाव को पोषित करना, जो वेदान्त का मूल भाव है। माण्डूक्योपनिषद् में अनेक स्थलों पर रज्जु और सर्प के दृष्टांत से माया अथवा द्वैत को समझाने का प्रयास किया गया है। वहाँ इस बात का उल्लेख है कि अविद्या के कारण रज्जु अर्थात रस्सी को साँप समझने की भूल हो जाती है। लेकिन विद्या के माध्यम से रस्सी में सर्प का बोध समाप्त हो जाता है और सत्य का उद्घाटन होता है। अत: शिक्षा में इसी विद्या प्राप्ति की आवश्यकता है ताकि आत्म-तत्व का बोध संभव हो सके। विद्या के माध्यम से ब्रह्मबोध संभव है। अत: शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो, जो शिक्षार्थियों को आत्म तत्व का बोध कराने में सहायक हो- 'ओंकार ब्रह्म प्राप्ति का साधन है!'

वैशेषिक दर्शन में विद्या एवं अविद्या को एक भिन्न रूप में व्याख्यायित किया गया है। विद्या दोषरहित ज्ञान है और अविद्या दूषित ज्ञान है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार '*शिक्षा निर्मल अथवा दोषरहित ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त करने का प्रयत्न है, जो शुद्ध बुद्धि, मन एवं आत्मा के द्वारा संभव है*' (सलूजा, 2023, पृ. 60)। वैशेषिक दर्शन का यह ज्ञानमीमांसीय पक्ष अप्रत्यक्ष रूप से यह स्थापित करने का प्रयत्न करता है कि जब साध्य पवित्र और शुचिता से पूर्ण है तो साधन भी पवित्र और शुचिता से परिपूर्ण होना चाहिए।

ज्ञान प्राप्ति के साधन अथवा उपकरण के रूप में ऋत अर्थात ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के अनुरूप बुद्धि द्वारा निश्चित किया गया अर्थ, स्वाध्याय, प्रवचन, अभ्यास, एकाग्रता, विश्लेषण एवं प्रश्नोत्तर का विशेष महत्त्व है। भारतीय ज्ञान परंपरा में 'उपनिषद्' एक शैक्षिक विरासत या धरोहर के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है, जहाँ शिष्य गुरु के समीप बैठकर संवाद, प्रश्नोत्तर, विश्लेषण आदि के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करते थे। इसके साथ-साथ ज्ञान को व्यवहार के कठोर धरातल पर परखने का विधान था, तब एक शिष्य को 'दीक्षित' होने का सुअवसर मिलता था।

शिक्षा: मन, चित्त, सत्त्व

व्यक्तित्व-निर्माण का चिंतन एक ऐसा मुख्य सरोकार है, जो लगभग प्रत्येक शिक्षा-नीति के लक्ष्य के रूप में वर्णित होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी चरित्र-निर्माण, तार्किक बुद्धि एवं मूल्यों से पोषित व्यक्तित्व के निर्माण की अनुशंसा करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में सत्व, रजस और तमस की व्याख्या एक ओर त्रिगुण के रूप में प्राप्त होती है तो वहीं दूसरी ओर वह व्यक्तित्व के गुणों का अनुशीलन करती है। इस संबंध में सुश्रुत का कहना है-

'*सत्वंतु व्यसनाभ्युदय क्रियादि स्थानेषु अविक्लवकरम्*' (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, 15/37)

अर्थात् आपत्तियों में अविचलित रहना, अभ्युदय के प्रसंग में मर्यादित सीमाओं या आपे से बाहर न होना,

इन्हीं बातों को सुश्रुत ने 'सत्व' के रूप में परिभाषित किया है। इस कथन के ही संदर्भ में वे लिखते हैं – *'सत्ववान् सहते सर्वे संस्तभ्यात्मानमात्मना। राजस: स्तभ्यमानोऽन्यै: सहते नैवतामस:॥' (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, 35/38)*

अर्थात् आत्मसंयम के द्वारा सत्ववान मनुष्य सब कुछ सहन करता है। राजस व्यक्ति दूसरों के साथ सहिष्णुता का निर्वाह करता है। तामस मनुष्य किसी भी अवस्था में सहनशीलता का व्यवहार नहीं कर पाता। इस अर्थ में यह सत्व गुण एक प्रकार से चरित्र-निर्माण के समकक्ष है। सुश्रुत ने 'सत्वसार मनुष्य के लक्षणों की चर्चा करते हुए लिखा है-

'स्मृति, भक्ति, प्रज्ञा, शौर्य, शौचोपेत, कल्याणभिनिवेश सत्वसारं विद्यात्' (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, 35/36)। चरक भी इसी तरह के लक्षणों की बात करते हैं- *'स्मृतिमान्तौ भक्ति मन्त: कृतज्ञा: प्राज्ञा: शुचयोमहोत्साहा दक्षा: धीरा: समरविक्रान्तयोधिन त्यक्त विषादा: सुव्यस्थित गति गम्भीर बुद्धि चेष्टा: कल्याणनिभिवेशिनश्च सत्वसारा:'* (चरकसंहिता, वि.स्था. 8/110)। किसी भी व्यक्ति में यदि ये सारे गुण होते हैं तो वह एक सुसंगत व्यक्तित्व के स्वामी के रूप में स्वीकार किया जाता है। 'सत्वसार' मनुष्य के इन गुणों में एक ओर 'गंभीर बुद्धि' की बात है तो दूसरी ओर 'कृतज्ञ' होने का भाव निहित है। पहला संज्ञानात्मक विकास है तो दूसरा भावात्मक विकास है। यद्यपि भारतीय ज्ञान परंपरा में 'बुद्धि', 'प्रज्ञा', 'मेधा' जैसे शब्दों का अलग-अलग जगह प्रयोग देखा जा सकता है, परंतु तीनों एक-दूसरे के सटीक पर्याय नहीं हैं। चरकसंहिता में 'प्रज्ञा' शब्द का अनेक बार उल्लेख मिलता है। प्रज्ञा का अर्थ है- संतुलित बुद्धि या सात्विक बुद्धि - *'समां बुद्धिहि पश्यति'*! कल्याण की भावना व्यक्तित्व के तीसरे पक्ष की ओर संकेत करती है और वह है - सामाजिक विकास, जिसमें समष्टि सर्वोपरि है। 'धैर्य, शुचिता अर्थात् पवित्र भाव और दक्ष होने के गुण भी एक समरस व्यक्तित्व के लिए अनिवार्य हैं। शिक्षा का लक्ष्य ऐसे मनुष्य का निर्माण करना होना चाहिए।

ऐतरेयोपनिषद् के तृतीय अध्याय (पृ. 327) में मन को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है –

यदेतद्धदयं मनश्चैतत। संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूति: स्मृति: संकल्प: क्रतुरसु: कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति॥ (ऐतरेयोपनिषद्, 3/2)

अर्थात् *जो यह हृदय है, यही मन भी है। सम्यक् ज्ञान शक्ति; आज्ञा देने की शक्ति; विभिन्न रूप से जानने की शक्ति; तत्काल जानने की शक्ति; धारण करने की शक्ति; देखने की शक्ति; धैर्य; बुद्धि; मनन-शक्ति; वेग; स्मरण शक्ति; संकल्प-शक्ति; मनोरथ-शक्ति; प्राण-शक्ति; कामना-शक्ति; स्त्री-संसर्ग आदि की अभिलाषा- इस प्रकार ये सब स्वच्छ ज्ञानस्वरूप परमात्मा के ही नाम अर्थात् उसकी सत्ता के बोधक लक्षण हैं।* इस श्लोक में मन की सम्यक् प्रकार से जानने की शक्तियों की चर्चा की गई है। जो अंतत: ज्ञानस्वरूप परमात्मा के नाम हैं, यानी उसकी सत्ता का बोध कराने वाले लक्षण हैं।

अनेकश: बुद्धि को 'मन' भी कहा जाता है और 'मन' आत्मा की संकल्प शक्ति है, अर्थात् जब आत्मा संकल्प करने लगता है तो उसे 'मन' की संज्ञा दी जाती है। चरक संहिता के अध्याय 8 में 'मन' की प्रकृति के संबंध में यही कहा गया है –

अतींद्रिय पुनर्मन: सत्त्व सञ्ज्ञकं चेत इत्याहुरेके,
तदर्थात्मसंपत्तदायत्तचेष्टं चेष्टाप्रत्ययभूतमिनिन्द्रियाणाम् ॥ (चरकसंहिता, सूत्रस्थानम् 8/107/4)

अर्थात् *'मन' अतींद्रिय अर्थात् इंद्रियों में सूक्ष्मतम है। वह इसी मन को 'सत्व' कहते हैं। इसी मन को कितने 'चित्त' इस नाम से कहते हैं। वह मन अपने विषय और आत्मा इनकी श्रेष्ठता के अधीन व्यापार करने वाला है और इंद्रियों की चेष्टाओं का कर्ता है एवं इंद्रियों की चेष्टाओं, व्यापार व प्रतीति का कारण मन है।*

शिक्षा मनुष्य की संकल्प-शक्ति के विकास की भी अनुशंसा करती है, क्योंकि संकल्प शक्ति के माध्यम से विषयों की रचना करने और विषयों को ज्ञात करने का संकल्प बनता और बढ़ता है। योगवासिष्ठ के अनुसार 'संसार की सभी वस्तुओं के भीतर चित्त (मन) वर्तमान है। जड़ पदार्थों के भीतर भी वासना ऐसे मौजूद रहती है, जैसे कि बीज के भीतर पुष्प आदि और मिट्टी में घट (द्राविड़ एवं चौरसिया, पृ. 61)। 'मन' की शक्तियाँ अद्भुत हैं और योगवासिष्ठ में कहा गया है- *यथैतद्भावयेत् स्वान्तं तथैव भवति क्षणात्। दृष्टान्तोऽत्रैन्दवाहल्याकृत्रिमेन्द्रादिनिश्चया:॥ (योगवासिष्ठ, प्रथम भाग/52, पृ. 1305)*। *'यह मन जैसी भावना करता है, तुरंत वैसा ही हो जाता है। '*

चरक संहिता में भी 'मन' की शक्ति के संबंध में ऐसे विचार का प्रतिपादन किया गया है- *"जिस गुण (सत्व, रजस् या तमस्) वाला मन बार-बार अनुसरण करता है, मन को उसी ही गुण वाला मुनि लोग कहते हैं, क्योंकि जिस गुण की अधिकता होगी उसी गुण वाला मन होगा।"* (चरकसंहिता, सूत्रस्थान- 6, 8/108)

इस अर्थ में 'मन' अपने भीतर जैसी भावना को धारण करता है, वैसा ही प्राप्त भी कर लेता है। योगवासिष्ठ और चरक संहिता के कथनों की अर्थ-गहराइयों के मूल में यह चिंतन बिंदु है कि 'मन' को अभ्यास के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता है और हमारी स्वयं की इच्छा-शक्ति, व्यवहार एवं निरंतर अभ्यास से 'मन' को एकाग्रचित्त किया जा सकता है। यह एकाग्रता स्वाध्याय का एक महत्त्वपूर्ण कारक है और विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। इस अर्थ में जीव या मनुष्य में सब कुछ प्राप्त करने की अनंत शक्ति है। मनुष्य जो कुछ चाहता है, वह सब स्वयं ही सम्पादित कर लेता है। *संसार का जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह सब मन से ही निकला है! विश्व का असीम ज्ञानभंडार स्वयं तुम्हारे मन में है (*विवेकानंद, 1956, पृ. 6)। इस विचार के साथ शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी के 'मन' पर शोध की आवश्यकता अनुभूत होती है।

शिक्षा: गुरु-शिष्य का ब्रह्मतेज

शिक्षा की अवधारणा और उसमें फलीभूत होने वाली यात्रा में गुरु और शिष्य के परस्पर संबंध का विशेष महत्त्व है, क्योंकि दोनों की पहचान और अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर करता है। गुरु एक पिता के रूप में होता है और शिष्य गुरु की संतति के रूप में। शिष्य अपने गुरु के कुल का कहलाता है, ठीक वैसे ही, जैसे संगीत में 'घराना' होता है। शिष्य के लिए उसके गुरु की प्रतिष्ठा, सम्मान सर्वोपरि होता है और वह उसकी कामना भी करता है। तैत्तिरीयोपनिषद् के तृतीय अनुवाक के अंतर्गत शिष्य अपने और अपने आचार्य के यश और ब्रह्मतेज की प्राप्ति की कामना करता है- *सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्म वर्चसम्। (तैत्तिरीयोपनिषद्, 1)*

गुरु और शिष्य के बीच ऐसे मधुर और विलक्षण संबंध भारतीय शिक्षा प्रणाली की विरासत है, जो आज भी कहीं-कहीं प्रचलित है। 'ब्रह्मतेज' प्राप्त करना शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। विद्या प्राप्ति की प्रक्रिया में ब्रह्मतेज की प्राप्ति भी होती है और शिष्य का आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

भारतीय संस्कृति में अनुष्ठान का विशेष महत्त्व है और गुरु एवं शिष्य भी विद्यार्जन से पूर्व एक अनुष्ठान करते

हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् के ब्रह्मानन्दवल्ली में उसका उल्लेख मिलता है। शिष्य और आचार्य के बीच के सम्यक्, मधुर और विद्वेषरहित संबंधों की प्रतिष्ठा के लिए शांति पाठ किया जाता है-

ॐ सहनाववतु । सहनौभुनक्तु । सहवीर्यं करवाव है। तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषाव है। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। (तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली, शान्तिपाठ)

शिष्य यह प्रार्थना करता है कि *'(ब्रह्म) हम दोनों अर्थात शिष्य और गुरु की रक्षा करे। वह हम दोनों का साथ-साथ भरण-पोषण करे। हम साथ-साथ विद्या से उत्पन्न शक्ति का संपादन करें। हमने जो विद्या अर्जित की है, वह ज्ञानपुंज के रूप में प्रकाशमान हो और हममें कभी एक-दूसरे के प्रति विद्वेष का भाव न आए। तीन बार 'शांति' का अर्थ यही है कि ब्रह्म आत्मविद्या-अर्जन में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक- तीनों प्रकार के ताप रूपी विघ्नों को शांत करे।'*

यह शांति पाठ आत्मविश्वास, मनोबल और समभाव को पोषित करता है। एक-दूसरे के लिए प्रार्थना करना अहंकार रहित, पवित्र एवं निर्मल व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी गुरु-शिष्य परंपरा और साहचर्य से रेखांकित होते हुए कहती है- "*शिक्षक वास्तव में बच्चों के भविष्य को आकार देते हैं, अतः हमारे राष्ट्र के भविष्य का भी निर्माण करते हैं। इस नेक योगदान के कारण ही भारत में शिक्षक समाज के सबसे ज़्यादा सम्मानित सदस्य थे और सिर्फ़ सबसे अच्छे और विद्वान ही शिक्षक बनते थे। .... शिक्षकों के लिए उच्चतर दर्जा और उनके प्रति आदर और सम्मान के भाव को पुनर्जीवित करना होगा*" (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020; 5.1 पृ. 31)। गुरु-शिष्य परंपरा की इस विरासत को संरक्षित रखने और इसे आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा की मूल अवधारणा ही कार्य करेगी कि शिक्षा संस्कार है, विद्यालय की विषयगत पढ़ाई नहीं और न ही वह मात्र साढ़े पाँच-छह घंटे की 'नौकरी' है! शिक्षक होना स्वयं में एक घोर तपस्या है, क्योंकि एक गुरु अपनी संतति की तरह अपने शिष्य का पालन-पोषण करता है। यह एक दायित्व है अपने शिष्य को, अपनी संतति को गढ़ने का, जिससे शिष्य 'अपने होने' का औचित्य सिद्ध कर सके।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान प्रणाली में शिक्षा की अवधारणा एक संस्कार के रूप में व व्यक्ति के जीवन को सुसंस्कृत बनाने के रूप में प्रतिष्ठित है। व्यष्टि से समष्टि तक की यात्रा के अनेक पड़ाव अपने साथ नित नए अनुभूत व सत्य भी साथ लाते हैं। "*शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है...* " (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृ. 3)। अच्छे इंसानों को गढ़ने के लिए शिक्षा में ऐसे अनेक अवसर हैं, जहाँ सहज भाव से यह कार्य किया जा सकता है। 'अच्छे इंसान' में अपेक्षित गुणों की चर्चा यह नीति करती है। भारतीय दर्शन और भारतीय समाज की मूल्य-आधारित उत्कृष्ट संरचना ने सदा ही विश्व को आकर्षित किया है। यह भाव राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी प्रतिबिंबित होता है- "*भारत की सनातन संस्कृति, प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में यह नीति तैयार की गई है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं, बल्कि पूर्ण आत्म-ज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था*" (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृ. 4) । यह *पूर्ण आत्म-ज्ञान और मुक्ति* तभी संभव है, जब हमारी शिक्षा व्यवस्था, पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यसामग्री आदि में इन दोनों के लिए समुचित समय, व पर्याप्त अवसर हो।

परा विद्या, अपरा विद्या, मन, चित्त और सर्वोपरि अवधारणा- 'सत्वसार' आदि सभी मानव-शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करते हैं। शिक्षा स्वयं में एक साधना, तपस्या है, जिसमें कठोर विधान तो होते हैं परंतु वे सभी मनुष्य के हितार्थ होते हैं। शिक्षा की अवधारणा में 'विद्यालय', विषयगत जानकारी, अंकों की प्रतिस्पर्धा के लिए गौड़ स्थान है, क्योंकि शिक्षा जानकारी नहीं है, जानकारी का ढेर एकत्र करना भी नहीं है, वह स्वयं में अन्वेषण, आविष्कार और अन्वीक्षा से पोषित प्रक्रिया है। इस संदर्भ में विद्यार्थी एवं शिक्षक का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है, जिससे वे *अंतर्निहित पूर्णता* को उजागर करने के साथ-साथ उसका संरक्षण कर सकें। अस्तु, भारतीय शिक्षा का लक्ष्य है- मनुर्भव !

संदर्भ सूची

अरोड़ा, पंकज एवं शर्मा, उषा (2021) *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020-रचनात्मक सुधारों की ओर*, दिल्ली: शिप्रा प्रकाशन

आप्टे, वामन शिवराम (1966) *संस्कृत- हिन्दी कोश*. पटनाः मोतीलाल बनारसीदास

उपाध्याय, आचार्य बलदेव (1979) *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*, वाराणसी: चौखम्बा ओरिएंटलिया

गोयंदका, हरिकृष्णदास (1990) *ईशादि नौ उपनिषद* गोरखपुर: गीताप्रेस

तैत्तिरीयोपनिषद् सानुवाद शांकरभाष्य (2000) गोरखपुर: गीताप्रेस

द्राविड़, प्रो. नारायण शास्त्री एवं चौरसिया, डॉ. राजेश कुमार (संपादक) (2007) *भारतीय मनोविज्ञान, सागर: विश्वविद्यालय प्रकाशन*

राधाकृष्णन (1916) भारतीय दर्शन दिल्ली: राजपाल एंड संस

विवेकानन्द, स्वामी (1956) शिक्षा नागपुर: श्रीरामकृष्ण आश्रम

सलूजा, चांद किरण (2023) *शिक्षाः भारतीय परिप्रेक्ष्य* दिल्ली: संस्कृत संवर्धन प्रतिष्ठानम्.

सिन्हा, पवन (2019) *शिक्षा के द्वंद्व* दिल्ली: प्रभात प्रकाशन

शिक्षा मंत्रालय (2020) राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भारतीय शोध पद्धत्तिः एक परिचय

प्रो. नीरजा गुप्ता
कुलपति, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद
drneerjaarun@gmail.com

प्राचीन भारतीय व्यापक रूप से और सही अर्थों में ज्ञान की खोज के लिए जाने जाते थे। उन्होंने शास्त्र के निर्माण के नियम बनाए, इसे व्यवस्थित तरीके से समझा, किसी दिए गए विषय के सभी पक्षों व लक्षणों को परिभाषित किया, किसी विशेष विषय के बारे में पूर्व उपलब्ध साहित्य का हवाला दिया, पूर्व कथनों को संदर्भित करते हुए विद्वानों का उद्धरण भी प्रस्तुत किया और नए विचार और सिद्धांत प्रस्तुत किए, जिससे शास्त्रों की रचना और व्याख्या करने की एक व्यापक पद्धति स्थापित हुई। अनेकों स्थलों पर उत्तर पक्ष प्रस्तुत करते हुए अथवा भाष्य या मीमांसा करते हुए भी अद्भुत अन्वेषण किए गए हैं। स्वयं भाष्यकार भी अनुसंधानकर्ता हुए हैं।

भारतीय शोध पद्धति प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक ग्रन्थों पर आधारित शोध प्रक्रिया का व्यवस्थित स्वरूप है। यह तथ्य आंशिक रूप से ही ज्ञात है कि भारत में वैज्ञानिक और सैद्धान्तिक ग्रन्थों के निर्माण के लिए एक पद्धति थी। अनेकों ग्रंथों में इसका संपूर्ण एवं आंशिक विवरण प्राप्त है। यह विवरण पाश्चात्य शोध पद्धति के अनुरूप नहीं है। इसका प्रयोजन भी व्यावहारिक होने के कारण सर्वथा भिन्न है। शास्त्र का पालन करना ही हेतु को सिद्ध करने का उपाय है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि

> यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
> न स सद्धिमिवाप्नोतनि सुखं न परां गतम् ।। (श्रीमद्भगवद्गीता 16/23)

अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्र विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को ही।

इस विधान से शास्त्र आधारित कर्म ही लक्ष्य को प्राप्त होते हैं। शास्त्र में प्रयुक्त विधान अत्यंत प्राचीन काल से ही निर्धारित कर दिए गए थे। उनके प्रयोग, विवेचनाएँ व परीक्षा अनेकों प्रकार से हुए हैं। अतः वे ही पद्धति कहलाए। भारतीय ज्ञान परंपरा में शोध नवीन विषय नहीं है। शोध के अनेकों नाम एवं स्वरूप उपलब्ध होते हैं। अनुसन्धान, शोध, गवेषणा, और अन्वेषण शब्द अंग्रेजी के रिसर्च (Research) शब्द के समानार्थी के रूप में प्रयुक्त दिखाई देते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य में शोध से संबंधित प्रमुख शब्द

1. अनुसंधानम् (अनुसम्+धा+ल्युट्): पृच्छा, गवेषणा, गहन निरीक्षण या परीक्षण, जाँच योजना, क्रमबद्ध करना।
2. शोध (शुध्+घञ्): शुद्धि, संस्कार, संशोधन, समाधान, परिशोध।
3. तंत्र युक्तिः वैज्ञानिक पद्धत्ति।

रिसर्च शब्द से अधिक संस्कृत में उपलब्ध शब्द व्यापक कहे जा सकते हैं, क्योंकि उसमें साधक का

स्वयं का अपना साक्षात्कृत, अधीति, अवबोध, आचरण और प्रचार का भाव और स्वयं के अनुभव की मौलिकता समाहित है, किन्तु रि+सर्च शब्द में नवोन्मेष का अभाव है, जब कि शोध में नवोन्मेष अन्तर्गभित है।

प्राचीन ग्रंथों में व्याख्यायित अनुसन्धान की परिभाषा और व्याप्ति

संधान का अर्थ स्थापना, पारस्परिक अनुकूलता, सम्यक धारणा, सम्मुख स्थापन, संप्रयोग, संश्लेषण, सन्निधान, सम्यक हवन, संयोजन, साहित्य, संधि, संयोजन, धनुष और तीर संयोजन, अभिषेक, मद्यसज्जाकरण, कंजिका, मदिरा अवदंश आदि है और अनु उपसर्ग का अर्थ है, बाद में। मुख्य रूप से स्थापना या संयोजना या अनुसन्धान, किसी स्थूल वस्तु से सूक्ष्म तत्वों का निस्सारण, प्राप्त सामग्री से सूक्ष्म विचारों का निस्सारण व उसके अनुसार निबन्ध आदि लेखन है। अनुसन्धान शब्दार्थ विधि से सामग्री तीन प्रकार संग्रहीत की जा सकती हैः

1. अज्ञात तथ्यों का प्रकटीकरण या छिपी या खोई हुई सामग्री का प्रकटीकरण,
2. उपलब्ध सामग्री का परीक्षण और
3. प्राप्त सामग्री का शोधन।

उदाहरण के लिए, किसी भी लुहार या सुनार को लोहे और सोने, जैसी धातुओं को शुद्ध और साफ करने की एक निश्चित पद्धत्ति अपनायी जाती है।

अनुसन्धान ग्रन्थ में भी चार चरणों को पूरा करना चाहिए:

1. उपलब्ध न होने वाले तथ्यों की खोज;
2. उपलब्ध तथ्यों या सिद्धांतों का नए रूप से समाख्यान,
3. ज्ञान के क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार या आत्मज्ञान

एक पूर्वव्यापी अनुसन्धान ग्रन्थ के अभ्यर्थी में आलोचनात्मक परीक्षण सामर्थ्य होना चाहिए, जो उसके निर्णय लेने की क्षमता को प्रदर्शित करती है। शोधकर्ता को यह बताना चाहिए कि कितना शोध उसके स्वयं के प्रयासों का परिणाम है और यह किसी विशेष विषय को कितना आगे बढ़ाता है। 12वीं ई० में उत्पन्न कान्यकुब्ज-नरेश जयचन्द्र के राजकवि तथा नैषधीयचरितम् महाकाव्य के प्रणेता महापण्डित श्रीहर्ष ने भी विद्या (ज्ञान) की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है-

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभिः ।
चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतः स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम् ।। (नैषधीयचरितम् 1/4)

इस पद्य में राजा नल की चौदह विद्याओं का उल्लेख करते हुए उसकी चार क्रमिक स्थितियों का वर्णन किया गया है- अधीति (विविध साधनों के माध्यम से अध्ययन), बोध (अधीत ज्ञान की समझ, चिंतन, मनन व अनुभव), आचरण (ज्ञान का व्यवहार में उतरना) तथा प्रचार (शिक्षण)।

4. शोध की प्रक्रिया में प्रायः ये चार स्थितियाँ आती हैं। पहले हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, तदनन्तर उस ज्ञान को

हम अनुभूति के स्तर पर अनुभव करते हैं। तीसरी स्थिति है, ज्ञान को अपने आचरण में उतारने की अथवा ज्ञान से तादात्म्य स्थापित करने की और अन्तिम स्थिति है, उस ज्ञान के वितरण की। एक अन्य पक्ष भी आवश्यक है, वह है, प्रस्तुति की सही शैली। शिक्षण हेतु ज्ञान के वर्णन की शैली और संबंधित कार्य के अन्य पहलुओं को भी संतोषजनक और प्रकाशन के योग्य होना चाहिए।

अनुसंधान के उद्देश्य के लिए ये चार गुण निर्विवाद रूप से आवश्यक हैं। प्रश्न यह है कि उनमें से कौन सा बिंदु कितना महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान की आवश्यकता और प्रस्तुति की उचित शैली से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। ज्ञान के क्षेत्र की सीमाओं की भवितव्यता को ध्यान में रख कर किया गया अन्वेषण का कार्य ही सार्थक है। किसी भी गंभीर कार्य के मूल्य का निर्धारण करने के लिए सम्पूर्ण जीवन में उस विषय के प्रति खुला रहना एक उत्कृष्ट मानदंड है। जीवन के बाहर कोई साहित्यिक कार्य या शोध नहीं है। आत्म-ज्ञान की प्रकृति और शैली विषय के सापेक्ष है, लेकिन यह हर जगह समान नहीं है। मंत्रद्रष्टा मुनिजन इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं। वेदादि में मंत्रद्रष्टा और सूत्रादि में मुनियों के निदर्शन इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं। व्याकरण, न्याय, मीमांसा वेदांतादि सूत्रों में शोध का उत्कृष्ट रूप प्राप्त होता है। पाश्चात्य पद्धति के अनुसार, जिसे अनुसंधान कहते हैं वह कला का एक रूप (तकनीक) है।

संस्कृत साहित्य में अनुसन्धान शब्द का अर्थ विचार, संयोग, गवेषणा, अनुसरण आदि है। अनुसन्धान शब्द का प्रयोग संहिताओं और महाभाष्य में नहीं हुआ है। मनुस्मृति में इसके लिए प्रयुक्त शब्द 'विचार' है। यह विचार उपनिषदों में प्राप्त प्रणिधानकल्प जैसा है। नृसिंहोत्तर उपनिषद में इसका अर्थ एक योजना के रूप में है। इसका अर्थ परम आत्मपरक और प्रणिधानमूलक समझना चाहिए। प्राकृत आदि भाषाओं में भी विचार के अर्थ में अणुसंधान शब्द मिलता है। वर्तमान में तत्त्वार्थविचार के अर्थ में यह रिसर्च शब्द के लिए रूढ़ है। मल्लिनाथ के अनुसार अनु उपसर्ग पूर्वक √धा धातु से यह शब्द व्युत्पन्न है। बालमनोरमा में उद्धृत 'संज्ञायां समजनिषद् - निपतमनविद पुञ्शीङ्भृञिण (बालमनोरमा, 3/3/99)' सूत्र की टीका में सिद्धांतकौमुदी में उद्धृत है कि

"समजन्त्यस्यामिति समज्या सभा। निषीदन्त्यस्यामिति निषद्या आपणः।
निपतन्त्यस्यामिति निपत्या पिच्छिला भूमिः। मन्यतेऽनयेति मन्या गलपार्श्वशिरा।
विदन्त्यनया विद्या। सुत्या। अभिषवः। शय्या। भृत्या। ईयतेऽनया इत्या शिबिका।।"

(सिद्धान्तकौमुदी, उत्तरकृदन्तप्रकरणम्, 3276)

उपर्युक्त में 'इत्य शिबिकेति' अर्थात इत्या का अर्थ पालकी या अन्वेषण योग्य खजाना है। भट्टोजी दीक्षित ने 'इत्य' शब्द की व्याख्या पालकी के रूप में की है। शिविका यह अर्थ किसी भी शब्दकोश में नहीं मिलता है। बालमनोरमाकार के द्वारा बहुत खोजने के बाद भी यह शब्दकोश में कहीं नहीं मिला, ऐसा लिखते हैं। कोश का अर्थ कोई भी कोश, मृग्य का अर्थ अन्वेषण योग्य, जिसमें यह शब्द मिल सके। दोनों ही मामलों में, अनुसंधान और गवेषणा शब्द रिसर्च के अर्थ को व्यक्त नहीं करते हैं। काव्यप्रकाश में वर्णित काव्य-अनुसन्धान के बल से और साहित्यदर्पण में वर्णित धर्म के फलानुसंधान से इसका अर्थ सूक्ष्म निरीक्षणपरक या सूक्ष्म परीक्षणपरक है। सायण के ऋग्वेद भाष्य (4/5/8/3) में तत्र अनुसन्धेयं कहा है। इसका अर्थ है 'जोड़ा जाना' और 'ज्ञात होना'। वास्तव में इसका अर्थ ध्यानार्थपरक है अथवा अनुध्यानपरक।

निरुक्त में 'समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः' (निरुक्त 1/1) में सम् और आङ् उपसर्ग म्ना धातु (मर्यादा के अर्थ में) का विचार हुआ है। दूसरी क्रिया का प्रयोग ग्रन्थीकरण हेतु है। छन्दोभ्यः समाहृत्य समाहृत्य समाम्नाताः

(निरुक्त 1/4) यहां पर भी ग्रन्थीकरण रूप में ही प्रयोग है। 'आम्नाय' शब्द अभ्यासार्थक है। काव्यप्रकाशकार के द्वारा भी 'इति हेतुस्तदुद्भवे' में भी अभ्यास दिखलाया गया है। ग्रंथ निर्माण में तीन कारण होते हैं:- 1. शक्ति (प्रतिभा), 2. निपुणता (व्युत्पत्ति) और 3. अभ्यास। ये तीनों मिलकर काव्य की उत्पत्ति, सृजन और आनंद के कारण हैं, हेतु नहीं। वर्तमान में गवेषणा भी एक दीर्घ प्रयत्नात्मक परीक्षण व अभ्यासात्मक ही है। दिए गए उदाहरण से हम यह समझ सकते हैं कि भारतीय ज्ञान एक ही समय में तीनों स्तरों स्थलीय, भौतिक और अंतरिक्ष समामेलन में एकीकृत होता है (आधिभौतिक, आधिदैविक, व आध्यात्मिक)।

श्रीमद्भगवद्गीता और नाट्यशास्त्र अत्यधिक वैज्ञानिक ग्रन्थ हैं, तभी संपूर्ण विश्व अभी भी संस्कृत चिकित्सा, शब्दावली और आदर्शों का उपयोग करता है। उज्जैन जीरो डिग्री बनाने वाले 24 डिग्री कर्क पर स्थित है, इसलिए यह समय का केंद्र है, इसलिए महाकाल, अब स्थापित तथ्य हैं। इसका उल्लेख करना इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि हमें अपनी जड़ों, ज्ञान, स्रोतों और आँकड़ों पर शर्मिंदा नहीं होना है। अथवा अपने प्रमाणों को, सन्दर्भ ग्रंथों को संशय से नहीं देखना है। अनुसंधान विधियों और उपकरणों के लिए षड्दर्शन का संपूर्ण अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण है। सैद्धांतिक अनुसंधान के लिए आगे बढ़ते समय यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रस्तुत कार्य में ग्रंथों से प्राप्त एवं संकलित किए ज्ञान की प्राप्ति हो।

भारतीय शोध पद्धति, भारतीय अनुसंधान पद्धति भारतीय ज्ञान प्रणालियों में निहित पारंपरिक और स्वदेशी अनुसंधान पद्धत्ति को संदर्भित करती है। पश्चिमी अनुभवजन्य पद्धति के विपरीत भारतीय अनुसंधान गहरा, दार्शनिक, एकीकृत और समग्र है, जो ज्ञान और अनुप्रयोग के बीच सामंजस्य पर जोर देता है। भारतीय दृष्टिकोण अनुसंधान को जीवन और अभ्यास से अलग नहीं करता है, बल्कि यह उन्हें एक एकीकृत प्रणाली में जोड़ता है, जो तर्क नैतिकता और आध्यात्मिकता को ध्यान में रखता है। यह प्रमाण वैध ज्ञान के साधन की अवधारणा के अनुरूप है, जो भारतीय ज्ञान मीमांसा में सत्य के सत्यापन को नियंत्रित करता है। वैदिक संहिताएँ अपौरुषेय कही जाती हैं। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने इनका साक्षात्कार किया है। भारतीय ऋषियों और मननशील मुनियों का कर्तृत्व विश्व में सर्वोत्तम है। ये गम्भीर अनुसन्धान प्रक्रिया के ही प्रतिफल हैं।

चौदह विद्यास्थान भारतीय अनुसन्धान के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। ये भारत की प्राक्तन अनुसन्धान परम्परा की दृढ़ पुष्टि करते हैं। इस प्रकार का गम्भीर अनुसन्धान किसी देश में नहीं प्राप्त होता है। प्राक्तन भारतीय विद्याओं का प्रवाह छोटे आकार में था। धीरे-धीरे विस्तार प्राप्त करता गया, जैसा कि कहा गया है- 'जिस प्रकार उद्गम स्थल में नदी का जल प्रवाह पतला रहता है, फिर आगे बढ़ता जाता है, उसी प्रकार शास्त्रों का प्रवाह पहले संक्षिप्त रूप में रहता है किन्तु बाद में विस्तृत रूप में हो जाता है।'

चतुर्दश विद्याएँ इस प्रकार हैं- चार वेद (ऋक, यजुष्, साम, अथर्व) छः वेदांग- निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, कल्प, छन्द और शिक्षा, मीमांसा और न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण। आचार्य राजशेखर पञ्चदशी विद्या के अंतर्गत 'साहित्य' को मानते हैं।

ये विद्याएँ अपनी कल्पान्तर स्थायिनी अर्थवत्ता के कारण आज भी प्रासंगिक हैं, भविष्य में भी रहेंगी, क्योंकि ये सभी परमलोकोपकारिणी हैं। संस्कृत के प्राक्तन मनीषियों ने भाषा और विषय की दृष्टि से गहन चिन्तन और

अनुसन्धान किया है, जिससे संस्कृत भाषा की वैज्ञानिकता व महत्ता चिरकाल से स्थापित है।

प्राचीन ग्रंथों में उद्धृत शोध संबंधी प्रमुख शब्दों की विवेचना

अनुसन्धान

अनु-उपसर्गपूर्वक धा धातु में ल्युट् प्रत्यय करने पर अनुसन्धान शब्द बनता है। संस्कृत के प्राचीन वाङ्मय में प्रायः अनुसन्धान शब्द का प्रयोग चित्त की एकाग्रता अपने अभीष्ट की प्राप्ति के सन्दर्भ में दिखाई देता है। वैदिक तथा लौकिक वाङ्मय में यह कभी क्रिया के रूप में तथा कभी कृदन्त के रूप में प्राप्त होता है। यथा- परं ब्रह्मानुसन्दध्यात् (नृसिंहतापिनी उपनिषद्, 106), अनुसन्दधाति (ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्, 2/9/4), अकारेणात्मानमन्विष्य मकारेण ब्रह्मणानुसन्दध्यात् (नृसिंहतापिनी उपनिषद्, 718), तत्साधुकृत्सन्धानं प्रतिसंहरसायकम् (अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/11), प्रसवयोग्यं स्थानमनुसन्धीयताम् (मनुस्मृति 12/106), सरोजसन्धानमिवाऽकरोदपाम् (कुमारसम्भवम् 5/27), सर्वचिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः नादमेवानुसन्दध्यान्नादे चित्तं विलीयते (नादबिंदु उपनिषद्, 4), सन्धानं स्यादभिषवः (अमरकोष), समाधौ क्रियमाणे तु विघ्नान्यायान्ति वै बलात् अनुसन्धानसाहित्यमालस्यं भोगलालसम् (तेजोबिंदुपनिषद् 1/4)। इस प्रकार लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयत्न अनुसन्धान कहा जाता है।।

अन्वेषण

अन्वेषण शब्द भी शोध के लिए प्रयुक्त होता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- अनु+इष्+ल्युट् अथवा अनुएषणम्। इसका तीन प्रकार से प्रयोग होता है- अन्वेषः, अन्वेषणा, अन्वेषणम्। संस्कृत वाङ्मय में इस शब्द का प्रयोग मिलता है-'अकारेणात्मानमन्विष्य मकारेण ब्रह्मणानुसन्दध्यात्' (नृसिंहतापिनी उपनिषद्), 'वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती' (अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/14), रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषामाभिषतां ययौ (रघुवंशम् 12)। जैसे ऋचिचर्या का रिसर्च से ध्वनिसाम्य है, उसी प्रकार अन्वेषण शब्द का इनवेंशन शब्द से ध्वनिसाम्य है। इसका तात्पर्य कोई मौलिक खोज या आविष्कार है। अतः यह शब्द भी शोध के लिए प्रयुक्त है। संस्कृत के प्रकृति प्रत्यय से निर्मित कोई शब्द धातु और प्रत्यय के कारण भिन्नार्थक होता है। उचित पर्याय का प्रयोग कथ्य को स्फुटित करने में सहयोगी होता है। अतएव महर्षि वाल्मीकि के मार्गदर्शक को वाग्विदांवर मुनिपुंगव और तपःस्वाध्याय-निरत कहा गया। कालजयी प्रबन्ध या काव्य रचना में भाषा में प्रयुक्त शब्दों का बहुत बड़ा योगदान होता है।

गवेषणा

गवेष् धातु में ल्युट प्रत्यय करने पर 'गवेषणम्' शब्द बना किन्तु व्यावहारिक रूप में प्रायः गवेषणा का ही प्रयोग होता है। जंगल में चरती हुई गाय जब ओझल हो जाती थी तब उसके खुरों के चिह्नों और वनस्पतियों की स्थिति से अनुमान लगाकर तथा उसके रंग-उम्र आदि को बताकर उसे खोजा जाता था। इसलिए खोजने की स्थिति के कारण यह शब्द शोध या अनुसन्धान के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

शोध

शुध् धातु में घञ् प्रत्यय करने पर 'शोधः' शब्द बनता है। शोधन शब्द भी इसी धातु से बना है किन्तु व्यवहार में लेखादि का संशोधन करना, कभी किसी विजातीय द्रव्यों की किसी वस्तु से अलग कर उसे स्वच्छ करना, आदि इसका अर्थ होता है। औषधि आदि के लिए भी शोधन क्रिया से उसे उपयोगी बनाया जाता है।

सम्प्रति हिन्दी और संस्कृत में सर्वाधिक इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है। आवेदन पत्रों और विज्ञापनों में शोधच्छात्रवृत्ति और शोधच्छात्र शब्द का ही प्रयोग दिखाई देता है। प्रायः यह शब्द अंग्रेजी के 'रिसर्च' शब्द के अर्थ में अधिकतम प्रयुक्त होने से इसी अर्थ में रूढ़ हो गया है।

वस्तुतः संस्कृत के व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ अपनी परिभाषा स्वयं बताते हैं। अतः ऋषिचर्या में शोधप्रबन्ध का नाम अर्थात शीर्षक तथा उसके अध्यायादि के विभाजन में उसके कथ्य और तथ्य को स्फुटित करने वाले उचित शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। अतः किसी श्रेष्ठ वाग्विद् और विषय के तलस्पर्शी ज्ञाता के मार्गदर्शन में शीर्षक और अध्याय विभाजन में उचित पदों का प्रयोग करते हुए रूपरेखा आदि का निर्माण करना चाहिए। शब्दकल्पद्रुम में शोध शब्द को स्पष्ट करने लिए कुछ आचार्यों के मत दिए गए हैं-

लेख शोधन के विषय में कात्यायन का मत है कि 'अपने स्वयं लिखे हुए पर सन्देह होने अथवा अन्य किसी जीवित या मृत के लेख पर सन्देह हो, तब अपने द्वारा स्वयं पन्नों पर शुद्ध रूप में लिखकर उसमें सुधार कर लिखकर उसका निर्णय (निश्चित और उचित) करना शोध कहा जाता है।'

विरुद्ध लिखित के शुद्धीकरण के बारे में बृहस्पति ने कहा है कि 'किसी विरुद्ध (जो शास्त्र सम्मत नहीं है) उसका वादी शास्त्रार्थी विद्वान न्यून या अधिक पूर्वपक्ष का तब तक शोधन करता रहे, जब तक विद्वानों के सामने अपने शास्त्र विरुद्ध मत का प्रतिवादी उत्तर देना बन्द न कर दे; अर्थात् वह मान ले कि वादी ठीक कह रहा है।' व्यवहार तत्त्व में कात्यायन का मत इस प्रकार है- पूर्वपक्ष का तब तक वादी को शोधन करना चाहिए, जब तक सही उत्तर नहीं दिया जाता। यदि उत्तर से शोधन अवरुद्ध हो जाता है, अर्थात् प्रतिवादी अपने मत को सही सिद्ध कर देता है, तब शोधन से निवृत्त हो जाना चाहिए, जो उचित सिद्ध होता है उसे मान लेना चाहिए।

आज भी शोधपत्रों और प्रत्यक्ष रूप से आमने-सामने बैठकर शास्त्रीय तथ्यों के औचित्य पर गोष्ठियों में विचार करने की परम्परा है। संगोष्ठियों में भी शोधपत्र-वाचन के समय तथ्यों की निश्चिति पर गम्भीर परामर्श कर शास्त्रीय मतों पर विचार-विमर्श होता है। निश्चित रूप से प्राक्तन शोधशब्द के प्रयोग में शुद्धीकरण या संशोधन अर्थ गृहीत है। किन्तु वर्तमान में इसका अर्थ-विस्तार हो गया है, अतः शोधप्रबन्ध, शोधगोष्ठी, लघुशोधप्रबन्ध, शोधपरियोजना आदि में पूर्वपद के रूप में इसका प्रयोग चल पड़ा है, जो अनुसन्धान के अर्थ में रूढ़ हो गया है। औषधि के सन्दर्भ में धातु शुद्धि आदि में तथा अग्निताप से वस्तु की शुद्धि का प्रमाणीकरण करने में भी इस शब्द का प्रयोग प्रचलित रहा है। मानवीय शुद्धि के प्रमाण में वह्निशुद्धि का प्रयोग प्राप्त है। धातु और मनुष्य दोनों की वह्निशुद्धि का उल्लेख महाकवि कालिदास करते हैं-

वाच्यस्त्वया मद्ओचनात्स राजावह्नौ विशुद्धामपि यत्मक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य।। (रघुवंशम्, 14/61)

सीता कहती हैं, अग्नि ने मेरी शुद्धता प्रमाणित कर दी है, तब भी मुझे राजा ने छोड़ दिया। इस प्रकार प्रथम सर्ग में कालिदास अपनी रचना की शुद्धि के विषय में कहते है, जिसमें धातुशुद्धि का उपमान प्रस्तुत करते हैं-

तं सन्तं श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः। हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।। (रघुवंशम्, 1/10)

इस प्रकार शोध का तात्पर्य, विजातीय वस्तुओं को अलग कर उपयोगी तत्त्व या तथ्य को ग्रहण करना है।

ऋषिचर्या

पाश्चात्य अन्धानुकरण के कारण संस्कृत के शब्दों और प्रकृति प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के प्रयोग करने से ध्यान हट जाने के कारण हिन्दी बोलते और लिखते समय रिसर्च शब्द का प्रयोग करने का अभ्यास हो गया है। अतः अधिकतम ध्वनिसाम्य वाला शब्द ऋषिचर्या रिसर्च के स्थान पर अधिक उचित प्रतीत होता है। ऋषि शब्द को कई मंत्रों में स्पष्ट किया गया है- 'नानृषिः कविरित्युक्तः ऋषिश्च किल दर्शनात्' (जो ऋषि नहीं, वह कवि नहीं कहा गया है और जो ऋषि है वह तत्त्वों का साक्षात्कार करता है); तथा 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' (ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा हैं)। चर्या का अर्थ है, कार्य-व्यापार, निरन्तर चिन्तन द्वारा नवोन्मेष (नए लोकोपकारी तत्त्वों की खोज करना)। इसलिए 'ऋषिचर्या' शब्द रिसर्च के लिए उपयुक्त है। गवेषणा, अनुसन्धान, अन्वेषण और शोध आदि की अपेक्षा इसके अर्थ में विचलन नहीं है। अतः 'ऋषिचर्या' शब्द ही भारतीय सन्दर्भ में व्यापक अर्थों का बोधक और उचित है। इसमें पूर्वपद में प्रयुक्त ऋषि शब्द भी भारतीय संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य और श्रेष्ठ परमार्थज्ञानी का बोधक है, जिसमें सच्चरित्रता और सत्प्रेरणा निहित है। अतः हिन्दी और संस्कृत भाषा में रिसर्च के स्थान पर ऋषिचर्या शब्द का प्रयोग किया जाना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। ऋषिचर्या शब्द में तपस्या, स्वाध्याय, ध्येय प्राप्ति की निष्ठा, आचार की उच्चता ये सभी समाहित हैं। अतः शोधछात्रों को यह शब्द भी भारतीयता व सत्कार्य निष्ठा की ओर अग्रसर करेगा।

प्राक्तन काल में आज की तरह कोई विषय या शीर्षक निश्चित कर प्रबन्ध लेखन की प्रथा नहीं थी। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के प्रभाव से उच्चोपाधि की प्राप्ति के लिए शोधप्रबन्ध लिखे जाते हैं। पहले भाष्य (चूर्णि), व्याख्या, विमर्श, समालोचना, टिप्पणी, टीका, अवेक्षण और वृत्ति आदि शास्त्र काव्यावबोध की पद्धतियाँ थी। पाणिनि, यास्क, कपिल, गौतम, और भरतमुनि आदि का अनुसन्धान नवीनशास्त्र के प्रवर्तन के रूप में था। इन आचार्यों और ऋषियों ने शोधोपाधि के लिए ग्रन्थ नहीं लिखे। इनका अन्वेषण तपःपूतसाधना से उद्घाटित और ईश्वर कृपा से संवलित रहा है।

यद्यपि ऋषिचर्या शब्द से जिस प्रकार की साधना अभिव्यंजित होती है, रिसर्च शब्द से उस प्रकार का अर्थावबोध नहीं होता, तथापि अधिकतम ध्वनिसाम्य के कारण इसे निकट अर्थ में प्रयोग किया जा सकता है। ऋषिचर्या शब्द केवल नूतन तत्त्वान्वेषण से ही सम्बद्ध है, अतः इसमें अतिव्याप्ति आदि दोष नहीं हैं। जैसे ऋषि सांसारिक अन्य प्रपंच को छोड़कर एकाग्रचित्त होकर सत्तत्त्व के अन्वेषण में संलग्न रहता है, उसी प्रकार शोधकर्ता की भी जीवनचर्या होती है, तभी वह श्रेष्ठ शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करता है।

आचार्य राजशेखर ने शास्त्रकवि के स्वरूप प्रतिपादन में शोधकर्त्ता की प्रवृत्ति भी आरेखित की है- *शास्त्रकवि* अर्थात् विद्वान, *लीनमर्थ प्रययन्* अर्थात् छिपे अर्थ को विस्तारित करता है, *समभिलुप्तम्* अर्थात् अदृश्य अज्ञात अर्थ को, *स्फुटीकुर्वन्* अर्थात् स्फुरित करता है, *अल्पम्* अर्थात् थोड़े को, *अनल्पम्* अर्थात् विस्तृत करता है या विस्तृत रूप में प्रतिपादित करता है।

उपर्युक्त विवरण में शोधकर्त्ता का करणीय प्रतिपादित है। सभी शास्त्रकार सूत्ररूप में कथित का विस्तार करते हैं। उदाहरण के लिए संज्ञाप्रकरण का सूत्र सवर्ण संज्ञा करता है- *तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्,* अर्थात् जिन वर्णों का वागिन्द्रिय (मुख के उच्चारण स्थान) समान तथा उनका प्रयत्न भी समान होता है, उनकी सवर्ण संज्ञा होती है। इसी प्रकार तर्कभाषाकार प्रारंभ में न्याय के सूत्र 'प्रमाणप्रमेयादि' को प्रथमतः उद्धृत कर सभी तत्त्वों का विस्तृत निरूपण करते हैं। तर्कसंग्रह में प्रथमतः सात पदार्थों का उल्लेख कर उनके भेदों और स्वरूपों का प्रतिपादन करते हैं।

साहित्यशास्त्र के ग्रन्थों में प्रायः काव्यस्वरूप का प्रतिपादन कर उसी के प्रत्येक घटक का निरूपण किया जाता है, जैसे 'साहित्यदर्पणम्' में आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि-

वाक्यं रसात्मकं काव्यं दोषास्तस्यापकर्षकाः।
उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्कारारीतयः।। (साहित्यदर्पणम्, 1/ 3)

इन्हीं का पूरे ग्रन्थ में पहले वाक्य में उपलब्ध शब्द, अर्थ, शक्ति आदि का निरूपण कर फिर रसादि का निरूपण करते हैं। यदि गम्भीरता से ध्यान दिया जाए तो शास्त्रकारों के प्रारंभिक कथन उनके ग्रन्थ की रूपरेखा ही होते हैं। आधुनिक शोधप्रबन्ध लेखन में इसी प्रकार विषय निर्धारित कर उसकी रूपरेखा तैयार की जाती है। यह प्रबन्ध लेखन की पद्धति प्राक्तन है, जिसकी ओर शोध-प्रविधि लेखकों ने भी ध्यान नहीं दिया है।

संस्कृत साहित्य में प्राचीन भारतीय विज्ञान शास्त्रों से संबंधित सहस्त्रों ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें से एक दर्जन से अधिक हमें यह जानकारी प्रदान करते हैं कि किसी शास्त्र की वैज्ञानिक या विधिवत संरचना किस प्रकार बनाई जाती है। प्रत्येक शास्त्र, चाहे उसका विषय कुछ भी हो, उन शास्त्र रचनाओं की कार्यप्रणाली के सिद्धांतों का उपयोग करके बनाया गया है, जिनसे शिक्षकों और छात्रों तथा विषयों पर सैद्धांतिक कार्यों की व्याख्या करने वाले आलोचकों को परिचित होना आवश्यक है।

भारत में अनुसंधान वैदिक काल से चला आ रहा है, जहाँ यह प्रकृति, स्वयं और ब्रह्मांड के बारे में जाँच करने की शिक्षा का एक मूलभूत पहलू रहा। ऋग्वेद, जैसे ग्रंथों में ब्रह्मांड संबंधी गहरे प्रश्नों को दर्शाने वाले सूक्त हैं, जबकि न्याय सूत्र तार्किकता को औपचारिक रूप देते हैं। उपनिषद, जिन्हें अक्सर दार्शनिक ग्रंथ माना जाता है, अस्तित्व और चेतना के बारे में मौलिक प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जो बाद की वैज्ञानिक और तार्किक परंपराओं की नींव बनाते हैं। तक्षशिला और नालंदा के प्राचीन विद्यापीठ गहन अध्ययन और प्रवचन के केंद्र थे, जहाँ चिकित्सा, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, भाषा, विज्ञान और गणित, जैसे विषयों का व्यवस्थित रूप से पता लगाया गया था। आर्यभट्ट, चरक और पाणिनि, जैसे भारतीय विद्वानों ने स्वदेशी अनुसंधान पद्धतियों का उपयोग करके अपने-अपने क्षेत्रों में गहरा योगदान दिया, जिसमें अवलोकन, तर्क और अनुमान का मिश्रण था। भारतीय अनुसंधान परंपराओं में अनुभवात्मक पक्ष पर जोर, पश्चिमी दृष्टिकोण में अनुभवजन्य डेटा संग्रह पर भारी निर्भरता से भिन्न है।

भारतीय अनुसंधान पद्धत्तियाँ आत्म-अनुभव (अनुभव), नैतिक मूल्यों (धर्म) और उपयोगिता (अर्थ) पर जोर देती हैं। ये विधियां समग्र अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं, जो अनुभवजन्य अवलोकन से परे जाती हैं, जिससे वे समकालीन अंतःविषयक अनुसंधान के लिए प्रासंगिक बन जाती हैं। पश्चिमी अनुसंधान में आम कटौतीवादी दृष्टिकोण के विपरीत, भारतीय विधियां अंतर्संबंधिता की तलाश करती हैं तथा यह पहचानती हैं कि ज्ञान एक व्यापक दार्शनिक और नैतिक ढांचे के भीतर मौजूद है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू अनुसंधान भाषा के रूप में संस्कृत का उपयोग है। कई प्राचीन अनुसंधान ग्रंथ संस्कृत में रचित हैं, जो एक वैज्ञानिक और सटीक भाषा है। पाणिनि द्वारा व्यवस्थित इसका संरचित व्याकरण, जटिल विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति की अनुमति देता है। इसके अलावा, भारतीय अनुसंधान परंपराएं स्थिरता और दीर्घकालिक प्रयोज्यता पर जोर देती हैं। चाहे वह आयुर्वेद हो, वास्तुकला (वास्तु शास्त्र) हो या धातु विज्ञान हो, ज्ञान प्रणालियों को मनुष्यों और प्रकृति के बीच सद्भाव की समझ के साथ विकसित किया गया था, जिससे आधुनिक समय में भी उनकी निरंतर प्रासंगिकता सुनिश्चित होती है।

संदर्भ सूची

श्रीमद्भगवद्गीता (सम्वत् 2060) गोरखपुर: गीताप्रेस

श्रीहर्षरचितं नैषधीयचरितम् (शक सम्वत् 1816) बम्बई: निर्णय सागर प्रेस

पांडेय, जी. डी. (सं.) (2012) *वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- बालमनोरमा 'दीपिका-संस्कृत-हिंदीव्याख्योपेतम्* वाराणसी: चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन

नृसिंहतापिनी उपनिषद् (2020) स्पिरिचुअल बुक्स

श्रीसायणाचार्यविरचिता ऋग्वेदभाष्यभूमिका हिन्दी व्याख्योपेता (1976) वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन

बक्सी, एम. जे. (सं.) (2016) *यास्कमुनिप्रणीतं निरुक्तम्.* वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

विश्वेश्वर, ए. (व्याख्याकार) (2023) *श्रीमम्मटाचार्यविरचित: काव्यप्रकाश:.* वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

शास्त्री, पी. आर. (व्याख्याकार) (2021) *ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्* वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान

त्रिपाठी, एस. के. एम. (व्याख्याकार) (2015) *अभिज्ञानशाकुन्तलम्* वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

कौंडिन्य, एस. ए. (व्याख्याकार) (2013) *मनुस्मृति* वाराणसी: चौखम्बा विद्या भवन

प्रद्युम्नपांडेय (व्याख्याकार) (2013) *महाकविकालिदासविरचितम् कुमारसम्भवम्* वाराणसी: चौखम्बा विद्या भवन

शर्मा, पी. एम. (व्याख्याकार) (2021) *नादबिंदु उपनिषद् (हिंदी व्याख्या)* नई दिल्ली: संजय प्रकाशन

शिवदत्त, एम. एम. एंड दादीमाथा (सं.) (2002) नामलिंगानुशासन एलियास अमरकोश ऑफ़ अमरसिंह विथ द कमेंट्री व्याख्यासुधा ऑर रामाश्रमी बाय भानुजी दीक्षित. दिल्ली: चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान

भगवानसिंह, एस. (टीकाकार) (विक्रम सं. 2001) *तेजोबिंदु उपनिषद् (भाषा टीका सहित)* ऋषिकेश: साधु भगवानसिंह

त्रिपाठी, एस. के. एम. (सं). (2010) *महाकविकालिदासविरचितम् रघुवंशम्* वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

राजाराधाकान्तदेव (सं.) (1967) *शब्दकल्पद्रुम: तृतीयो भागः* वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस

कविराज राजशेखरविरचिता काव्यमीमांसा (1991) वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफ़िस.

द्विवेदी, डी. पी. (सं) (1998) *साहित्यदर्पणम्* वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन

अन्य सहायक ग्रन्थ

दत्त, डी. एम. (2017) द *सिक्स वेज़ ऑफ़ नोइंग: अ क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ द अद्वैत थियरी ऑफ़ नॉलेज* न्यू दिल्ली: डी. के. प्रिंट वर्ल्ड

पॉटर, के. एच. (2011) इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ इंडियन फ़िलॉसफीज़: वॉल्यूम 2 न्यू दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास प्राइवेट लिमिटेड

यादवजीत्रिकमजीआचार्य (सं.) (2016) *चरक संहिता* वाराणसीः चौखम्बा आयुर्वेद अकादमी

अभयंकर, वी. एस. (सं.) (1951) *सर्व-दर्शन-संग्रह ऑफ सायण-माधव* पूना: द भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट

हरिशास्त्री, पी. (सं.) (2016) *श्रीमद्वाग्भट्टविरचित अष्टांग हृदय* वाराणसीः चौखम्बा आयुर्वेद अकादमी

लेले, डब्ल्यू. के. (2006) *प्राचीन भारतीय विज्ञान की पद्धति* वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

मुथुस्वामी, एन. ई., (1974) *तंत्रयुक्तिविचार* त्रिवेंद्रम: प्रकाशन विभाग, सरकारी आयुर्वेद कॉलेज

यादवजीत्रिकमजीआचार्य (सं.) (2017) *सुश्रुत संहिता* वाराणसीः चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

ग्लकलिख, ए. (2008) द *स्ट्राइड्स ऑफ विष्णुः हिंदू कल्चर इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

जार्विस, डी., और नास्टेड, आई. (2012) *एक्सप्लोरिंग* द *कनेक्शन बिटवीन मैथेमेटिक्स एंड आर्ट: टीचिंग एंड लर्निंग इन हिडन मीनिंग्स* ब्रश एजुकेशन इंक

जोसेफ, जी. जी. (2001) द क्रेस्ट ऑफ़ द पीकॉक: नॉन-यूरोपियन रूट्स ऑफ़ मैथमेटिक्स *नेक्सस नेटवर्क जर्नल, 3/2*

कैप्प्राफ, जे (2002) *कनेक्शनः द ज्योमेट्रिक ब्रिज बिटविन आर्ट एंड साइंस (वॉल्यूम 25)* वर्ल्ड साइंटिफिक पब्लिशिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड

भाषा, बहुभाषिकता और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक आलोचनात्मक विश्लेषण

प्रोफेसर धनंजय जोशी
विश्वविद्यालय शिक्षा संकाय, गुरु गोबिंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, नई दिल्ली एवं पूर्व संस्थापक कुलपति, दिल्ली शिक्षक विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
djoshi@ipu.ac.in

अनिता शर्मा
शोधार्थी, विश्वविद्यालय शिक्षा संकाय, गुरु गोबिंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
anitaphdsharma@gmail.com

सारांश

भाषा सभी शैक्षिक प्रक्रियाओं की रीढ़ है। भाषा के माध्यम से ही ज्ञान का निर्माण, संचरण, बातचीत और मूल्यांकन किया जाता है। भारत जैसे भाषाई रूप से विविध राष्ट्र में, शैक्षिक भाषा नीति ने ऐतिहासिक रूप से संज्ञानात्मक प्रभावशीलता, सांस्कृतिक बहुलता, सामाजिक समानता और राष्ट्रीय एकता को संतुलित करने का प्रयास किया है। यह शोध लेख भारत के बहुभाषी संदर्भ, शिक्षा में भाषा नीति के ऐतिहासिक विकास और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 में व्यक्त बहुभाषी ढांचे की आलोचनात्मक जांच करता है। यह शोध लेख मातृभाषा-आधारित निर्देश के पीछे के शैक्षणिक तर्क का विश्लेषण करता है, त्रि-भाषा सूत्र पर फिर से विचार करता है और भारत की जटिल भाषाई वास्तविकताओं को संबोधित करने में एनईपी 2020 की शक्ति और सीमाओं का मूल्यांकन करता है। आधिकारिक नीति दस्तावेजों, शिक्षा आयोग की रिपोर्टों, जनगणना के आंकड़ों और विद्वतापूर्ण साहित्य को ध्यान में रखते हुए, अध्ययन बहुभाषी शिक्षा को लागू करने में प्रमुख चुनौतियों की पहचान करता है और नीति व व्यवहार के लिए भविष्य के प्रभावों पर चर्चा करता है। लेख में स्पष्ट किया गया है कि एनईपी 2020, बहुभाषावाद की एक प्रगतिशील और समावेशी दृष्टि प्रस्तुत करता है, लेकिन इसकी सफलता व्यवस्थित कार्यान्वयन, निरंतर शिक्षक तैयारी, संसाधन विकास और भाषाई विविधता के प्रति सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण पर निर्भर करती है।

मुख्य शब्द: *भाषा नीति, बहुभाषावाद, एनईपी 2020, मातृभाषा शिक्षा, भारतीय शिक्षा प्रणाली*

पृष्ठभूमि

भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं है; यह शिक्षा का भी प्राथमिक उपकरण है, जो इस बात को आकार देता है कि शिक्षार्थी ज्ञान तक कैसे पहुँचते हैं, प्रक्रिया करते हैं और निर्माण करते हैं। शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाएँ भाषा द्वारा गहराई से मध्यस्थता करती हैं, जो अनुभूति, समझ, कक्षा की बातचीत और मूल्यांकन को प्रभावित करती हैं। प्रभावी निर्देश काफी हद तक शिक्षण के माध्यम के साथ शिक्षार्थी के भाषाई परिचय पर निर्भर करता है। नतीजतन, शिक्षा में पहुंच, समानता और गुणवत्ता निर्धारित करने में भाषा निर्णायक भूमिका निभाती है। बहुभाषी समाजों में, शिक्षा में भाषा नीति एक महत्त्वपूर्ण चिंता का विषय बन जाती है। शिक्षा के माध्यम, पाठ्यक्रम में भाषाओं के चयन और भाषा परिवर्तन रणनीतियों के बारे में निर्णयों का सीखने के परिणामों और सामाजिक समावेश के लिए दूरगामी प्रभाव पड़ता है। भारत, अपनी असाधारण भाषाई विविधता के साथ, भाषा, शिक्षा और नीति के बीच संबंधों की जांच करने के लिए एक अनूठा संदर्भ प्रदान करता है। स्वतंत्रता के बाद से, भारत की शिक्षा प्रणाली

भाषाई बहुलता का सम्मान करते हुए राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने की चुनौती से जूझ रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 इन चुनौतियों से निपटने के सबसे हालिया और व्यापक प्रयास का प्रतिनिधित्व करती है। यह शोध लेख एनईपी 2020 पर महत्त्वपूर्ण ध्यान देने के साथ भारत में बहुभाषी शिक्षा की वैचारिक नींव, ऐतिहासिक विकास और समकालीन नीतिगत ढांचे की जांच करता है।

1. शिक्षा के साधन के रूप में भाषा

भाषा संज्ञानात्मक विकास और सीखने के लिए मूल तंत्र बनाती है। यह शिक्षार्थियों को अवधारणाओं को प्राप्त करने, तर्क में संलग्न होने, विचारों को व्यक्त करने और कक्षा के भीतर सामाजिक रूप से बातचीत करने में सक्षम बनाती है। शैक्षिक सिद्धांतकारों ने लंबे समय से विचार प्रक्रियाओं और अर्थ-निर्माण को आकार देने में भाषा की भूमिका पर जोर दिया है। उदाहरण के लिए, वायगोत्स्कियन दृष्टिकोण, संज्ञानात्मक विकास में भाषा को एक मध्यस्थ उपकरण के रूप में उजागर करते हैं, जबकि रचनात्मक दृष्टिकोण सीखने को भाषाई बातचीत पर आधारित एक सामाजिक रूप से बातचीत की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं।

शैक्षणिक अनुसंधान लगातार दर्शाते हैं कि जब शिक्षार्थियों को परिचित भाषाओं में पढ़ाया जाता है तो वे अच्छी तरह से समझते हैं, विशेष रूप से शुरुआती वर्षों के दौरान उनकी समझ, भागीदारी और ज्ञान के प्रतिधारण में काफी सुधार होता है। मातृभाषा-आधारित निर्देश मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक कौशल के विकास की सुविधा प्रदान करता है, जो बाद में सभी विषयों में सीखने के लिए आवश्यक है। इसके विपरीत, निर्देश के माध्यम के रूप में अपरिचित भाषाओं के शुरुआती संपर्क में आने से व उस भाषा में अक्सर रटना सीखने से उत्पन्न सीमित समझ शिक्षार्थी को बोध से अलग दिशा की ओर ले जाता है। भाषा शिक्षार्थियों के सामाजिक और भावनात्मक विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कक्षा में परिचित भाषाओं का उपयोग आत्मविश्वास को बढ़ावा देता है, भागीदारी को प्रोत्साहित करता है और शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को मान्य करता है। इसके विपरीत, भाषाई अलगाव अपर्याप्तता और बहिष्कार की भावना पैदा कर सकता है, विशेष रूप से पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के बच्चों के बीच। इस प्रकार, भाषा एक तटस्थ साधन नहीं है, बल्कि शैक्षिक सफलता और सामाजिक न्याय का एक शक्तिशाली निर्धारक है।

2. भारत एक बहुभाषी समाज के रूप में

भारत को व्यापक रूप से दुनिया के सबसे अधिक भाषाई रूप से विविध देशों में से एक के रूप में पहचाना जाता है, जिसमें बहुभाषावाद इसके सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन की एक केंद्रीय विशेषता है। भारत की जनगणना (2011) के अनुसार देश-भर में 1,600 से अधिक मातृभाषाओं की सूचना मिली थी, जो सदियों के प्रवास, सांस्कृतिक संपर्क और ऐतिहासिक स्तर को दर्शाती है। जबकि इनमें से कई मातृभाषाएँ अपेक्षाकृत कम आबादी द्वारा बोली जाती हैं, वे सामूहिक रूप से एक जटिल भाषाई पारिस्थितिकी का निर्माण करती हैं। इनमें से 22 भाषाओं को भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची के तहत मान्यता दी गई है, जो उन्हें आधिकारिक दर्जा, संस्थागत समर्थन और शिक्षा, शासन और मीडिया, जैसे क्षेत्रों में दृश्यता प्रदान करती है।

इन अनुसूचित भाषाओं को ग्रियर्सन ने 1903 से 1928 तक विविध खण्डों में प्रकाशित अपने 'भारतीय भाषा सर्वेक्षण (Linguistic Survey of India)' में चार प्रमुख भाषा परिवारों से संबंधित माना है- इंडो-आर्यन, द्रविड़,

ऑस्ट्रोएशियाटिक और तिब्बती-बर्मन। प्रत्येक अलग-अलग ऐतिहासिक यात्रा-पथ से और क्षेत्रीय संस्कृतियों से जुड़ी हैं। इन परिवारों का सह-अस्तित्व दर्शाता है कि हौगेन (1972) ने 'भाषा पारिस्थितिकी' के रूप में क्या अवधारणा की है, जहाँ भाषाएँ विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक वातावरण के भीतर परस्पर क्रिया करती हैं। अनुसूचित भाषाओं से परे, भारत कई जनजातीय और अल्पसंख्यक भाषाओं का घर है, जो मुख्य रूप से मौखिक डोमेन और स्थानीय ज्ञान प्रणालियों में कार्य करती हैं, जिनमें से कई कम प्रलेखित और लुप्तप्राय हैं (मोहंती, 2010)। भारत में बहुभाषावाद कोई अपवाद नहीं है, बल्कि आदर्श है, जो रोजमर्रा के सामाजिक अभ्यास में अंतर्निहित है। व्यक्ति अक्सर घर, सामुदायिक जीवन, शिक्षा, प्रशासन और कार्यस्थल, जैसे क्षेत्रों में विभिन्न भाषाओं का उपयोग करते हैं। यह घटना क्षेत्र-आधारित भाषा उपयोग की फिशमैन (1967) की धारणा के साथ संरेखित होती है, जहाँ भाषा की पसंद को केवल व्यक्तिगत पसंद की बजाय सामाजिक संदर्भ द्वारा आकार दिया जाता है। इस तरह का कार्यात्मक बहुभाषावाद अंतर-सांस्कृतिक संचार और सामाजिक गतिशीलता को सक्षम बनाता है; हालाँकि, यह भाषाओं के बीच असमान शक्ति संबंध भी पैदा करता है। बोर्दियू (1991) की भाषाई पूंजी की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए, अंग्रेजी और कुछ प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं, जैसी भाषाएँ उच्च प्रतीकात्मक और आर्थिक मूल्य प्राप्त करती हैं, जो शिक्षा, रोजगार और सामाजिक प्रतिष्ठा तक पहुंच प्रदान करती हैं। इसके विपरीत, जनजातीय और अल्पसंख्यक भाषाओं को अक्सर निम्न-स्थिति के रूप में रखा जाता है, जिससे उनके बोलने वालों के ऊपर की ओर गतिशीलता के अवसर सीमित हो जाते हैं।

ये भाषाई पदानुक्रम शिक्षा प्रणाली में विशेष रूप से स्पष्ट है, जहाँ भाषा एक संसाधन और एक बाधा दोनों के रूप में कार्य करती है। शिक्षा के माध्यम के बारे में निर्णय अक्सर प्रमुख भाषाओं को विशेषाधिकार देते हैं, उन शिक्षार्थियों को हाशिए पर डालते हैं, जिनकी घरेलू भाषाएँ स्कूली भाषा से अलग होती हैं। यह तर्क देते हुए कि बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा से वंचित करने से शैक्षिक नुकसान और भाषा में बदलाव हो सकता है, स्कुटनाब्ब-कंगास (2000) भाषाई साम्राज्यवाद के विविध रूपों के संबंध में ऐसी प्रथाओं की चर्चा करते हैं। मोहंती (2006, 2019), जैसे भारतीय विद्वान ने इसी तरह इस बात पर जोर दिया है कि घटाव वाली भाषा नीतियाँ स्वदेशी भाषाओं के क्षरण में योगदान करती हैं और पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं। भारत में बहुभाषी शिक्षा की चुनौतियां आंतरिक प्रवास, शहरी बहुभाषी कक्षाओं के विस्तार और छात्रों के बीच भाषाई विविधता में वृद्धि से और तेज हो गई हैं। जैसा कि कमिंस (2000) का तर्क है, शैक्षिक प्रणालियाँ, जो शिक्षार्थियों के मौजूदा भाषाई प्रदर्शनों पर निर्माण करने में विफल रहती हैं, वे संज्ञानात्मक विकास और विकास दोनों को कम करने का जोखिम उठाती हैं।

3. भारतीय शिक्षा में भाषा नीति का ऐतिहासिक विकास

भारतीय शिक्षा में भाषा नीति का विकास उपमहाद्वीप के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास में गहराई से अंतर्निहित है। वैदिक और मध्ययुगीन बहुभाषी शैक्षिक परंपराओं से लेकर औपनिवेशिक राज्य की केंद्रीकृत और पदानुक्रमित नीतियों और स्वतंत्रता के बाद की राष्ट्र-निर्माण परियोजना तक, भाषा ने लगातार ज्ञान संचरण के माध्यम और शक्ति-संपन्न वार्ता की आधारभूमि, दोनों के रूप में कार्य किया है। भारत में भाषा, पहचान और शिक्षा पर समकालीन बहसों को प्रासंगिक बनाने के लिए इन ऐतिहासिक परतों को समझना आवश्यक है।

वैदिक और प्रारंभिक शास्त्रीय काल

वैदिक काल में, शिक्षा 'गुरु-शिष्य' परंपरा पर आधारित थी, जिसमें संस्कृत पवित्र ज्ञान और विद्वतापूर्ण प्रवचन

की प्रमुख भाषा के रूप में कार्य करती थी। वेदों का प्रसारण, अत्यधिक परिष्कृत स्मृति और ध्वन्यात्मक प्रणालियों पर निर्भर था, जो भाषा की सटीकता और संरक्षण की केंद्रीयता को रेखांकित करता है (पोलॉक, 2011)। संस्कृत को प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त था। इसके अतिरिक्त, रोजमर्रा के संचार में उपयोग की जाने वाली स्थानीय भाषा और प्राकृत भाषाओं की एक विस्तृत श्रृंखला के साथ संस्कृत भी सह-अस्तित्व में था। यह द्विगुणित व्यवस्था दर्शाती है कि आधुनिक समाज भाषा-विज्ञान 'उच्च' और 'निम्न' किस्मों के बीच एक कार्यात्मक अंतर के रूप में क्या वर्णित करेगा (फर्ग्यूसन, 1959) महत्त्वपूर्ण रूप से, निगममूलक व निगमागममूलक परम्परा में शिक्षण मुख्यतः संस्कृत भाषा में होती थी, जबकि बौद्ध और जैन परंपराओं ने प्राकृत और पाली में शिक्षा और दार्शनिक प्रवचन को बढ़ावा दिया। भारत में शास्त्रीय और स्थानीय भाषाओं के बीच एक साहचर्य दिखता है, जो इस बात से सिद्ध होता है कि शास्त्रीय भाषाओं में जो ज्ञान है, वही ज्ञान स्थानीय भाषाओं में भी स्पष्टतः दिखता है।

मध्यकाल

मध्यकाल में साहित्यिक, धार्मिक और शैक्षिक क्षेत्रों में स्थानीय भाषाओं के स्वरूप का महत्त्वपूर्ण विस्तार हुआ। भक्ति और सूफी आंदोलनों के उदय ने अवधी, ब्रज, मराठी, तमिल, असमिया और बंगाली, जैसी क्षेत्रीय भाषाओं को भी बड़े स्तर पर आध्यात्मिक और दार्शनिक अभिव्यक्ति के वाहक के रूप में स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। रामानुजन (1999) का मानना है कि इन आंदोलनों ने भाषाई पहुंच और लोकप्रिय भागीदारी पर जोर देते हुए संस्कृत और फारसी की विशिष्टता को जानबूझकर खारिज कर दिया। यद्यपि यह तर्क सही प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि भक्ति आंदोलन के प्रमुख संतों ने शास्त्रीय ग्रंथों की अनेकों बार प्रशंसा की है। मध्यकाल में फारसी विभिन्न सल्तनतों और मुगल साम्राज्य के तहत प्रशासन, दरबारी संस्कृति और उच्च शिक्षा की भाषा के रूप में उभरी। मदरसे प्रमुख शैक्षणिक संस्थानों के रूप में कार्य करते थे, जहाँ फारसी और अरबी का उपयोग धार्मिक, कानूनी और अन्य ज्ञान के प्रसारण के लिए किया जाता था। इस अवधि ने इस प्रकार एक बहुभाषी शैक्षिक पारिस्थितिकी को बनाए रखा, जिसकी विशेषता संस्कृत, फारसी, अरबी और कई स्थानीय भाषाओं का सह-अस्तित्व था, जिनमें से प्रत्येक शक्ति और ज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़ा था (आलम, 2004)। भाषाई एकरूपता को लागू करने की बजाय, पूर्व-औपनिवेशिक शिक्षा प्रणालियों ने कार्यात्मक विशेषज्ञता के माध्यम से बहुलवाद को समायोजित किया।

औपनिवेशिक काल

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान भाषा नीति में एक निर्णायक बदलाव आया, जब शिक्षा, प्रशासनिक दक्षता और वैचारिक नियंत्रण का एक साधन बन गई। उच्च शिक्षा और शासन के प्राथमिक माध्यम के रूप में अंग्रेजी की शुरुआत, जो मैकाले के मिनट ऑन एजुकेशन (1835) में सबसे स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई थी, ने पहले की बहुभाषी परंपराओं के टूटने का संकेत दिया। मैकाले द्वारा स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों और भाषाओं को खारिज करने के विचार ने अंग्रेजी को आधुनिकता, तर्कसंगतता और प्रगति की भाषा के रूप में अतिश्योक्तिपूर्ण ढंग से दुष्प्रचारित कर भारतीय भाषाओं के स्थान पर इसे संस्थागत बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। औपनिवेशिक भाषा नीति ने शास्त्रीय और स्थानीय भाषाओं को हाशिए पर डाल दिया, शैक्षिक पदानुक्रम का पुनर्गठन किया और जिसे बाद में बौर्द्यू (1991) ने भाषाई पूंजी के असमान वितरण के रूप में अवधारणा दी। अंग्रेजी एक द्वारपाल भाषा बन गई, जो रोजगार और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता तक पहुंच प्रदान करती थी, जबकि भारतीय भाषाओं को स्कूली शिक्षा के निचले स्तर तक या पूरी तरह से बाहर कर दिया गया था। क्लर्क (1998) जैसे

विद्वानों ने इस प्रक्रिया को भाषाई साम्राज्यवाद के रूप में वर्णित किया है, जिसके प्रभाव भारत में उत्तर औपनिवेशिक शैक्षिक आकांक्षाओं और भाषा विचारधाराओं को आकार देना जारी रखते हैं।

स्वातंत्रोत्तर काल एवं त्रि-भाषा सूत्र

1947 में स्वतंत्रता के बाद, भारतीय नीति-निर्माताओं को इस तरह से शिक्षा प्रणाली के पुनर्निर्माण की चुनौती का सामना करना पड़ा, जो भाषाई विविधता को मिटाए बिना राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देगा। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49), जैसे प्रारंभिक नीतिगत हस्तक्षेपों ने शिक्षा के माध्यम के रूप में क्षेत्रीय भाषाओं के विकास पर जोर दिया, उन्हें शिक्षा के लोकतंत्रीकरण के लिए आवश्यक माना। कोठारी आयोग (1964-66) ने भाषा शिक्षा के लिए सबसे व्यापक ढांचा प्रदान किया, जिसमें स्पष्ट रूप से बहुभाषावाद को भारतीय समाज की एक परिभाषित विशेषता के रूप में मान्यता दी गई। स्वतंत्रता के बाद के विचार-विमर्श के सबसे महत्त्वपूर्ण परिणामों में से एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) में औपचारिक रूप से व्यक्त त्रि-भाषा सूत्र को अपनाना था। इस सूत्र में (i) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा, (ii) हिंदी या अंग्रेजी, और (iii) एक आधुनिक भारतीय या विदेशी भाषा के अध्ययन का प्रस्ताव था। घोषित उद्देश्य बहुभाषी क्षमता को बढ़ावा देना, अंतर-क्षेत्रीय संचार को बढ़ावा देना और सांस्कृतिक बहुलता के साथ राष्ट्रीय एकता को संतुलित करना था।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और कार्यक्रम की कार्ययोजना (1992) में इसकी पुष्टि के बावजूद त्रि-भाषा सूत्र का कार्यान्वयन असमान और विवादित रहा है। गैर-हिंदी भाषी राज्यों में राजनीतिक प्रतिरोध, अपर्याप्त शिक्षक तैयारी और वैश्वीकृत श्रम बाजारों में अंग्रेजी के बढ़ते प्रभुत्व ने इसकी प्रभावशीलता को सीमित कर दिया है। जैसा कि मोहंती (2010) का तर्क है, नीतिगत इरादे और कक्षा अभ्यास के बीच की खाई के परिणामस्वरूप भाषा शिक्षा के परिणाम अत्यधिक स्तरीकृत हुए हैं, जो मौजूदा सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को मजबूत करते हैं। संक्षेप में, शिक्षा के क्षेत्र में भारत की भाषा नीति एक लंबे ऐतिहासिक यात्रा-पथ को दर्शाती है, जो सत्ता संबंधों को पूर्व-औपनिवेशिक काल में पवित्र विशिष्टता और स्थानीय प्रतिरोध से औपनिवेशिक अधिरोपण और स्वतंत्रता के बाद की बातचीत में बदलकर आकार देती है। समकालीन भाषा की बहसों को इस स्तरित अतीत से अलग करके नहीं समझा जा सकता है, जो भाषा-पदानुक्रम, शैक्षिक-पहुंच और नीति-कार्यान्वयन को प्रभावित करते हैं।

4. एनईपी 2020 और बहुभाषावाद

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020, शिक्षा में भाषा के प्रति भारत के दृष्टिकोण के महत्त्वपूर्ण पुनर्निर्धारण का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें बहुभाषावाद को एक तार्किक चुनौती की बजाय एक शैक्षणिक संसाधन के रूप में सामने रखा गया है। भाषाई विविधता के पहले के घाटा-उन्मुख विचारों से दूर, एनईपी 2020 एक शिक्षार्थी-केंद्रित और समावेश-उन्मुख ढांचे को अपनाता है, जो संज्ञानात्मक-विज्ञान, समाज भाषा-विज्ञान और भाषा-शिक्षा के साथ-साथ भारत की अपनी बहुभाषी परंपराओं में वैश्विक अनुसंधान पर आधारित है। नीति स्पष्ट रूप से स्वीकार करती है कि भाषाई परिचय, संज्ञानात्मक विकास, वैचारिक समझ और शैक्षिक समानता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

एनईपी 2020 बहुभाषावाद को शैक्षिक सुधार के मूल में स्थापित करता है, जो भाषा नीति को पहुंच, गुणवत्ता और सामाजिक न्याय के व्यापक लक्ष्यों से जोड़ता है। मातृभाषा आधारित शिक्षा, भाषा चयन में लचीलापन और भारतीय भाषाओं के पुनरुद्धार पर जोर देकर, यह नीति स्कूली शिक्षा में भाषा पदानुक्रम द्वारा उत्पन्न लंबे समय से चली आ रही असमानताओं को दूर करने का प्रयास करती है।

मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा निर्देश

एनईपी 2020 की सबसे प्रमुख सिफारिशों में से एक यह है कि, जहाँ भी संभव हो, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, घरेलू भाषा या क्षेत्रीय भाषा कम से कम ग्रेड 5 तक और अधिमानतः ग्रेड 8 तक होनी चाहिए। यह सिफारिश व्यापक शोध पर आधारित है, जो दर्शाता है कि बच्चे मूलभूत साक्षरता, संख्यात्मकता और वैचारिक समझ को अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त करते हैं, जब निर्देश एक परिचित भाषा में दिया जाता है (कमिंस, 2000; यूनेस्को, 2003)। घरेलू भाषा में प्रारंभिक शिक्षा को संज्ञानात्मक विकास का समर्थन करने, पढ़ाई छोड़ने की दर को कम करने और बाद के चरणों में अतिरिक्त भाषाओं के अधिग्रहण की सुविधा के लिए प्रस्तावित किया गया है। यह नीति भारतीय अनुसंधान के साथ निकटता से संरेखित होती है, जो पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों के सामने आने वाले नुकसानों को उजागर करती है, जब स्कूली शिक्षा एक अपरिचित या सामाजिक रूप से प्रमुख भाषा में शुरू होती है (मोहंती, 2006)। औपचारिक शिक्षा के भीतर बच्चों की घरेलू भाषाओं को स्वीकार्य बनाकर, एनईपी 2020 का उद्देश्य भाषाई अलगाव को कम करना और कक्षायी भागीदारी में सुधार करना है, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले और जनजाति समुदायों के छात्रों के बीच। हालांकि, यह नीति शिक्षकों की तैयारी, सीखने की सामग्री की उपलब्धता और विशेष रूप से शहरी और प्रवासी संदर्भों में कक्षाओं की भाषाई विविधता, जैसी व्यावहारिक चुनौतियों को भी स्वीकार करती है।

पुनरीक्षित त्रि-भाषा सूत्र

एनईपी 2020 त्रि-भाषा सूत्र को एक मार्गदर्शक ढांचे के रूप में बरकरार रखता है, लेकिन अधिक लचीलापन और विकल्प पेश करके इसके कार्यान्वयन को महत्त्वपूर्ण रूप से संशोधित भी करता है। पहले के सूत्रीकरणों के विपरीत, जिन्हें अक्सर निर्देशात्मक या राजनीतिक रूप से विवादास्पद माना जाता था, नई नीति, राज्यों, स्कूलों और शिक्षार्थियों को तीन भाषाओं का चयन करने की अनुमति देती है। इस शर्त के साथ कि उनमें से कम से कम दो भारतीय भाषाएँ हों। महत्त्वपूर्ण रूप से, नीति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि किसी भी राज्य या शिक्षार्थी पर कोई भी भाषा थोपी नहीं जाएगी, जो लंबे समय से चली आ रही चिंताओं को सीधे संबोधित करती है, विशेष रूप से गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों में।

यह लचीला दृष्टिकोण देश-भर में समान होने की बजाय गतिशील और संदर्भ-निर्भरता के रूप में बहुभाषावाद की समझ को दर्शाता है। यह समकालीन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के साथ प्रतिध्वनित होता है, जो योगात्मक बहुभाषावाद पर जोर देता है, जहाँ नई भाषाओं का अधिग्रहण मौजूदा भाषाई प्रदर्शनों को विस्थापित किए बिना बनाता है (कमिंस, 2000)। साथ ही, उच्च शिक्षा और वैश्विक गतिशीलता की भाषा के रूप में अंग्रेजी की निरंतर प्रमुखता इस बारे में सवाल उठाती है कि गुणवत्तापूर्ण अंग्रेजी शिक्षा तक पहुंच में लगातार सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को देखते हुए व्यवहार में समान बहुभाषी परिणामों को कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है।

भारतीय भाषाओं और मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता को बढ़ावा देना (एफएलएन)

एनईपी 2020 शास्त्रीय, क्षेत्रीय और जनजातीय भाषाओं सहित भारतीय भाषाओं के प्रचार, संरक्षण और आधुनिकीकरण पर नए सिरे से जोर देता है। यह नीति भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकों, बाल साहित्य, द्विभाषी शब्दकोशों और डिजिटल शिक्षण संसाधनों के विकास का आह्वान करती है। यह सामग्री की उपलब्धता और शिक्षक समर्थन में अंतराल को पाटने के लिए

प्रौद्योगिकी, अनुवाद उपकरणों और खुले शैक्षिक संसाधनों के उपयोग को भी प्रोत्साहित करता है। एनईपी 2020 का एक प्रमुख नवाचार मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता पर राष्ट्रीय मिशन (एफएलएन) के साथ भाषा नीति का एकीकरण है, यह स्वीकार करते हुए कि प्रारंभिक साक्षरता और संख्यात्मक कौशल भाषा के परिचय से अविभाज्य हैं, नीति घरेलू या क्षेत्रीय भाषा को उस नींव के रूप में स्थापित करती है, जिस पर पढ़ने की समझ, गणितीय तर्क और आलोचनात्मक सोच का निर्माण किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण वैश्विक साक्ष्य के साथ संरेखित करता है कि मजबूत प्रथम-भाषा साक्षरता, अंग्रेजी (यूनेस्को, 2019) सहित अतिरिक्त भाषाओं में कौशल के हस्तांतरण की सुविधा प्रदान करती है।

साथ ही, विद्वानों ने आगाह किया है कि सफल कार्यान्वयन, शिक्षक-शिक्षा, पाठ्यक्रम-डिजाइन और सामुदायिक-भागीदारी (मोहंती, 2019) में निरंतर निवेश पर निर्भर करेगा प्रणालीगत समर्थन के बिना, एक जोखिम है कि नीति की बहुभाषी दृष्टि परिवर्तनकारी की बजाय आकांक्षी रह सकती है।

संक्षेप में, एनईपी 2020 बहुभाषी शिक्षा के लिए एक प्रगतिशील और अनुसंधान-सूचित दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है, जो स्कूली शिक्षा में गुणवत्ता और समानता की मांगों के साथ भारत की भाषाई विविधता को मिलाने का प्रयास करती है। हालाँकि, इसकी सफलता अंततः इस बात पर निर्भर करेगी कि इसके सिद्धांतों को विविध भाषाई और सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में व कक्षा प्रथाओं में कितने प्रभावी ढंग से अनुवादित किया जाता है।

5. बहुभाषावाद पर एनईपी 2020 का विश्लेषण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बहुभाषी शिक्षा के एक उल्लेखनीय प्रगतिशील और समावेशी दृष्टिकोण को व्यक्त करती है, जिसमें भाषाई विविधता को शैक्षणिक बाधा के बजाय एक राष्ट्रीय संपत्ति के रूप में स्थापित किया गया है। मातृभाषा आधारित निर्देश को आगे बढ़ाते हुए और एक मुख्य शैक्षिक लक्ष्य के रूप में बहुभाषी क्षमता की पुष्टि करते हुए, एनईपी 2020 खुद को वैश्विक सर्वोत्तम प्रथाओं और भाषा अधिग्रहण, संज्ञानात्मक विकास और समावेशी शिक्षा में अनुसंधान के एक पर्याप्त निकाय के साथ संरेखित करता है (कमिंस, 2000; यूनेस्को, 2003)। परिचित भाषाओं में प्रारंभिक शिक्षा पर नीति का जोर पहले के घाटे-उन्मुख दृष्टिकोण से एक स्पष्ट प्रस्थान का प्रतिनिधित्व करता है, जो भाषाई विविधता को शैक्षिक दक्षता के लिए एक बाधा के रूप में देखते थे। एक वैचारिक स्तर पर, एनईपी 2020 एक योगात्मक बहुभाषी ढांचे को दर्शाता है, यह मानते हुए कि अतिरिक्त भाषाओं का अधिग्रहण एक मजबूत प्रथम भाषा की नींव पर आधारित होने पर सबसे प्रभावी है। यह दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों के साथ प्रतिध्वनित होता है, जो भाषा को सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक पूंजी के रूप में देखते हैं (बॉर्डियू, 1991) और अधिकार-आधारित तर्कों के साथ, जो भाषाई और सामाजिक न्याय के मामले में किसी की घरेलू भाषा में शिक्षा तक पहुंच को फ्रेम करते हैं (स्कुटनाब्ब-कंगास, 2000)। इस मायने में, यह नीति भारत में भाषा शिक्षा की एक महत्त्वाकांक्षी पुनर्कल्पना प्रदान करती है। इन ताकतों के बावजूद, कई सीमाएं और चिंताएं एनईपी 2020 की बहुभाषी दृष्टि की प्राप्ति को जटिल बनाती हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण चुनौतियों में से एक नीति की अभिव्यक्ति और कार्यान्वयन के बीच का अंतर है। जबकि नीति मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा के निर्देश का पुरजोर पक्षपोषण करती है, परन्तु भाषाई रूप से विषम कक्षाओं में इस बदलाव को कैसे प्राप्त किया जाए, इस पर सीमित मार्गदर्शन प्रदान करती है। शिक्षक तैयारी, बहुभाषी-शिक्षाशास्त्र, पाठ्यक्रम-डिजाइन और मूल्यांकन-प्रथाओं से संबंधित मुद्दे कम निर्दिष्ट हैं। कई शिक्षकों के पास द्विभाषी या बहुभाषी शिक्षा में औपचारिक प्रशिक्षण की कमी है, जो विशेष रूप से मूलभूत स्तर पर निर्देशात्मक गुणवत्ता और निरंतरता

के बारे में चिंता पैदा करती है।

अंग्रेजी का निरंतर सामाजिक-आर्थिक प्रभुत्व नीति के प्रभाव को और बाधित करता है। एनईपी 2020 में भारतीय भाषाओं पर जोर दिए जाने के बावजूद, अंग्रेजी उच्च शिक्षा, रोजगार और वैश्विक गतिशीलता में असमान प्रतीकात्मक और भौतिक मूल्य को बरकरार रखती है। माता-पिता की आकांक्षाएं, विशेष रूप से शहरी और मध्यम वर्ग के परिवारों के बीच, अक्सर प्रारंभिक अंग्रेजी-माध्यम शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं, इसे सामाजिक-आर्थिक उन्नति के लिए आवश्यक मानते हैं। यह उस बात को मजबूत करता है, जिसे बॉर्ड्यू (1991) भाषाई पूंजी के असमान वितरण के रूप में वर्णित करता है, जहाँ अंग्रेजी तक पहुंच एक द्वारपाल तंत्र के रूप में कार्य करती है। नतीजतन, एक जोखिम है कि मातृभाषा-आधारित शिक्षा को 'दूसरे-सर्वश्रेष्ठ' विकल्प के रूप में माना जा सकता है, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए, जिससे इसे कम करने की बजाय शैक्षिक स्तरीकरण को पुनः उत्पन्न किया जा सकता है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण चिंता जनजातीय और अल्पसंख्यक भाषाओं की स्थिति से संबंधित है। हालाँकि एनईपी 2020 इन भाषाओं को संरक्षित करने और बढ़ावा देने के महत्त्व को स्वीकार करता है, लेकिन उनमें से कई में मानकीकृत लिपियों, संहिताबद्ध व्याकरण, प्रशिक्षित शिक्षकों और आयु-उपयुक्त शिक्षण सामग्री की कमी है। ऐसी भाषाओं के लिए शैक्षिक बुनियादी ढांचे के विकास के लिए निरंतर निवेश, सामुदायिक भागीदारी और दीर्घकालिक योजना की आवश्यकता होती है। इन समर्थनों के बिना, गैर-प्रमुख भाषाओं को बोलने वालों के लिए मातृभाषा निर्देश ठोस के बजाय प्रतीकात्मक रह सकते हैं, जिससे नीति की समावेशिता सीमित हो सकती है। राजनीतिक और वैचारिक कारक भी एनईपी 2020 के बहुभाषी ढांचे के स्वागत और कार्यान्वयन को आकार देते हैं। भारत में भाषा लंबे समय से पहचान, क्षेत्रीय स्वायत्तता और शक्ति के सवालों से जुड़ी हुई है। भाषा नीति के पहलुओं के प्रति व विशेष रूप से उन क्षेत्रों के प्रति, जहाँ हिंदी विशेष रूप बरती जाती है, कुछ राज्यों में प्रतिरोध है। यह भाषाई एकरूपता के बारे में स्थायी चिंताओं को दर्शाता है। हालांकि एनईपी 2020 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि किसी भी राज्य पर कोई भाषा नहीं थोपी जाएगी, परन्तु व्याख्या की अस्पष्टता से अविश्वास का वातावरण बनता है। इसीलिए इस मुद्दे को ऐसे व्यक्त किया जा रहा है कि इस नीति से शिक्षा में सहकारी संघवाद प्रभावित होता है, परंतु इसका वास्तविक पक्ष शैक्षिक नहीं वरन् राजनीतिक अधिक लगता है। संक्षेप में, जबकि एनईपी 2020 बहुभाषी शिक्षा के लिए एक दूरदर्शी और अनुसंधान-सूचित ढांचा प्रदान करता है, इसकी परिवर्तनकारी क्षमता गहरी जड़ों वाली संरचनात्मक, संस्थागत और दृष्टिकोण संबंधी बाधाओं को दूर करने पर निर्भर है। शिक्षक-शिक्षा, पाठ्यचर्या-विकास, सामग्री-उत्पादन और जन-जागरूकता के क्षेत्र में पर्याप्त निवेश के बिना, नीति परिवर्तनकारी की बजाय आकांक्षी बने रहने का जोखिम उठाती है। इसलिए एनईपी 2020 के बहुभाषी आदर्शों को सार्थक शैक्षिक अभ्यास में बदलने के लिए भाषाई पदानुक्रम, राजनीतिक बातचीत और सामाजिक-आर्थिक असमानता के मुद्दों के साथ एक महत्त्वपूर्ण जुड़ाव आवश्यक है।

6. चुनौतियाँ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत बहुभाषी शिक्षा के प्रभावी कार्यान्वयन के सामने परस्पर संबंधित चुनौतियों का एक जटिल समूह है, जो नीतिगत उद्देश्य से परे संस्थागत क्षमता, सामाजिक दृष्टिकोण और भौतिक संसाधनों तक फैली हुई है। जबकि एनईपी 2020 बहुभाषी और समावेशी शिक्षा के लिए एक मजबूत वैचारिक ढांचा प्रदान करता है, इस दृष्टिकोण को भारत के अत्यधिक विविध भाषाई परिदृश्य में कक्षा अभ्यास में बदलना एक दुर्जेय कार्य है। सबसे अधिक दबाव वाली चुनौतियों में से एक शिक्षक-शिक्षा और व्यावसायिक तैयारी से संबंधित है। अधिकांश

सेवा-पूर्व और सेवारत शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों को ऐतिहासिक रूप से एकभाषी या एकल-माध्यम निर्देश के लिए डिज़ाइन किया गया है, जो द्विभाषी या बहुभाषी शिक्षाशास्त्र में सीमित प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। शिक्षकों से अक्सर अपेक्षा की जाती है कि वे भाषा परिवर्तन प्रतिमान या भाषा परिवर्तन मॉडल, जैसी रणनीतियों में पर्याप्त समर्थन के बिना भाषाई रूप से विविध कक्षाओं का प्रबंधन करें। शिक्षकों को कई भाषाओं में और उनके माध्यम से प्रभावी ढंग से पढ़ाने के लिए तैयार करने के लिए शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में प्रणालीगत सुधार की आवश्यकता है, जिसमें पाठ्यक्रम का नया स्वरूप, निरंतर व्यावसायिक विकास और स्थानीय भाषाओं में निपुण शिक्षकों की भर्ती शामिल है। पाठ्यक्रम डिजाइन और संसाधन विकास एक और महत्त्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करते हैं। कई भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकें, पूरक पठन सामग्री, मूल्यांकन उपकरण और डिजिटल सामग्री विकसित करने के लिए निरंतर वित्तीय निवेश, संस्थागत समन्वय और शैक्षणिक विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। यह चुनौती विशेष रूप से उन जनजातीय और अल्पसंख्यक भाषाओं के लिए अधिक है, जिनमें मानकीकृत लिपियों, वर्तनी या संहिताबद्ध शैक्षणिक सामग्री की कमी है। विशेष रूप से दूरदराज के और हाशिए के क्षेत्रों में निरंतर और संदर्भ-संवेदनशील पाठ्यक्रम समर्थन के बिना, बहुभाषी शिक्षा गुणवत्ता में असमान और पहुंच में सीमित होने का जोखिम उठाती है। भारत के बहुभाषी शिक्षा परिदृश्य में भाषा की प्रतिष्ठा और भाषाई समानता को संतुलित करना एक केंद्रीय दुविधा बनी हुई है। अंग्रेजी सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता, वैश्विक प्रतिस्पर्धा और आधुनिक पूंजी, माता-पिता की आकांक्षाओं और स्कूली शिक्षा के विकल्पों को आकार देने के साथ दृढ़ता से जुड़ी हुई है। जबकि एनईपी 2020 भारतीय भाषाओं पर जोर देती है, अंग्रेजी पर अत्यधिक जोर, विशेष रूप से शुरुआती चरणों में मातृभाषा शिक्षा के संज्ञानात्मक और शैक्षिक लाभों को कम करने और गैर-प्रमुख भाषाओं को और हाशिए पर डालने का जोखिम बढ़ाती है। इसके विपरीत, गुणवत्तापूर्ण अंग्रेजी शिक्षा तक अपर्याप्त पहुंच सरकारी और ग्रामीण स्कूलों के छात्रों को नुकसान पहुँचा सकती है, जो मौजूदा असमानताओं को मजबूत करती है। बहुभाषी क्षमता को बढ़ावा देने और अंग्रेजी तक समान पहुंच सुनिश्चित करने के बीच संतुलन हासिल करना एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत चुनौती बनी हुई है। तकनीकी एकीकरण इनमें से कुछ चुनौतियों से निपटने के लिए आशाजनक अवसर प्रदान करता है। डिजिटल प्लेटफॉर्म, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस-आधारित अनुवाद उपकरण और मुक्त शैक्षिक संसाधन, बहुभाषी सामग्री निर्माण, शिक्षक-प्रशिक्षण और छात्रों को उन भाषाओं में सीखने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। प्रौद्योगिकी डिजिटल अभिलेखागार और समुदाय द्वारा उत्पन्न सामग्री के माध्यम से लुप्तप्राय भाषाओं के प्रलेखन और पुनरुद्धार की सुविधा प्रदान की जा सकती है। हालांकि, प्रौद्योगिकी की क्षमता असमान रूप से वितरित है, डिजिटल बुनियादी ढांचे, इंटरनेट कनेक्टिविटी और उपकरणों की पहुंच में निरंतर असमानता-विशेष रूप से ग्रामीण और आर्थिक रूप से वंचित क्षेत्रों में, इस तरह के नवाचारों की पहुंच को सीमित करती है। डिजिटल विभाजन को दूर किए बिना, प्रौद्योगिकी-संचालित बहुभाषी शिक्षा पहल शैक्षिक असमानताओं को कम करने की बजाय उन्हें बढ़ाने का जोखिम उठाती है। दृष्टिकोण और वैचारिक बाधाएँ कम दिखाई देती हैं, लेकिन समान रूप से परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ पेश करती हैं। भाषा-पदानुक्रम, बुद्धिमत्ता और आधुनिकता के बारे में गहरी मान्यताएं शैक्षिक विकल्पों और नीतिगत स्वागत को आकार देना जारी रखती हैं। विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों के बीच जो ऊपर की ओर गतिशीलता चाहते हैं, मातृभाषा शिक्षा की धारणा उनके लिए निम्न या कम 'आकांक्षी' के रूप में बनी हुई है। इन दृष्टिकोण को संबोधित करने के लिए, एक संज्ञानात्मक, सांस्कृतिक और आर्थिक संसाधन के रूप में बहुभाषावाद को फिर से स्थापित करने के लिए, निरंतर सार्वजनिक भागीदारी, सामुदायिक भागीदारी और जागरूकता-निर्माण की आवश्यकता होती है। एनईपी 2020 के तहत बहुभाषी शिक्षा के सामने आने वाली चुनौतियां संरचनात्मक, शैक्षणिक, तकनीकी और वैचारिक प्रकृति की हैं। इन पर काबू पाने के लिए दीर्घकालिक प्रतिबद्धता, अंतर-क्षेत्रीय सहयोग और भाषा व शिक्षा

में व्याप्त असमानताओं का सामना करने के धैर्य की आवश्यकता होगी। इस तरह के व्यापक प्रयासों के माध्यम से ही एनईपी 2020 के समावेशी और समान बहुभाषी शिक्षा के दृष्टिकोण को सार्थक रूप से साकार किया जा सकता है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन ने भारतीय शिक्षा में बहुभाषावाद की ऐतिहासिक रूप से निहित, सामाजिक रूप से अंतर्निहित और राजनीतिक रूप से बातचीत की घटना के रूप में जांच की है। भारत की लंबे समय से चली आ रही बहुभाषी परंपराओं और विकसित शैक्षिक ढांचे के भीतर समकालीन भाषा नीति को स्थापित करके, उपर्युक्त विश्लेषण इस बात पर प्रकाश डालता है कि शिक्षा में भाषा केवल माध्यम का तकनीकी विकल्प नहीं है, बल्कि पहुंच, समानता और पहचान का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। भारत की भाषाई विविधता, एक विसंगति होने की बजाय, इसकी सामाजिक वास्तविकता की एक परिभाषित विशेषता और शैक्षिक और सांस्कृतिक संवर्धन के लिए एक स्थायी संसाधन है। ऐतिहासिक अवलोकन से पता चलता है कि पूर्व-औपनिवेशिक भारत ने भाषाओं के बीच कार्यात्मक साहचर्य के माध्यम से जटिल बहुभाषी शैक्षिक पारिस्थितिकी को बनाए रखा। संस्कृत, फारसी, अरबी और स्थानीय भाषाएँ ज्ञान और शक्ति के विशिष्ट लेकिन परस्पर व्याप्त क्षेत्रों में सह-अस्तित्व में थीं। औपनिवेशिक हस्तक्षेप ने अंग्रेजी को उच्च शिक्षा और प्रशासन की भाषा के रूप में संस्थागत बनाकर इस संतुलन को बाधित कर दिया, जिससे भाषाई पदानुक्रम का पुनर्गठन हुआ और अंग्रेजी प्रवीणता को सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता से जोड़ा गया। स्वतंत्रता के बाद की भाषा नीतियों ने भाषाई विविधता के साथ राष्ट्रीय एकीकरण का मिलान करने की मांग की, विशेष रूप से त्रि-भाषा सूत्र के माध्यम से, लेकिन असमान कार्यान्वयन और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा ने उनकी प्रभावशीलता को सीमित कर दिया। इस ऐतिहासिक निरंतरता के भीतर, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत हस्तक्षेप के रूप में उभरी है, जो बहुभाषावाद को एक शैक्षणिक और संज्ञानात्मक संसाधन के रूप में फिर से केंद्रित करती है। मूलभूत वर्षों में मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा के निर्देश की वकालत करके, अधिक लचीलेपन के साथ त्रि-भाषा फॉर्मूले पर फिर से विचार करके, और मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता मिशन के साथ भाषा सीखने को एकीकृत करके, एनईपी 2020, भाषा अधिग्रहण और समावेशी शिक्षा पर वैश्विक अनुसंधान के साथ संरेखित होता है। यह नीति एक योगात्मक बहुभाषी अभिविन्यास को दर्शाती है, जो अतिरिक्त भाषाओं को प्राप्त करने की नींव के रूप में शिक्षार्थियों के मौजूदा भाषाई प्रदर्शनों को मजबूत करने पर जोर देती है। हालांकि, महत्त्वपूर्ण विश्लेषण से पता चलता है कि एनईपी 2020 की परिवर्तनकारी क्षमता लगातार संरचनात्मक, संस्थागत और दृष्टिकोण संबंधी बाधाओं से बाधित है। शिक्षक-तैयारी में कमी, पाठ्यक्रम और संसाधन विकास की सीमाएं, जनजातीय और अल्पसंख्यक भाषाओं का हाशिए पर जाना और अंग्रेजी का स्थायी सामाजिक-आर्थिक प्रभुत्व, समान बहुभाषी शिक्षा की प्राप्ति को जटिल बनाता है। भाषा और पहचान के आसपास की राजनीतिक संवेदनशीलता, सहकारी और संदर्भ-संवेदनशील नीति-कार्यान्वयन की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इन चुनौतियों का समाधान किए बिना, जोखिम बना रहता है कि बहुभाषावाद को सिद्धांत रूप में पुष्ट किया जा सकता है लेकिन व्यवहार में असमान रूप से लागू किया जा सकता है। आगे की चुनौतियों की चर्चा इस बात को रेखांकित करती है कि सफल बहुभाषी शिक्षा के लिए नीतिगत समर्थन से अधिक की आवश्यकता होती है; यह निरंतर निवेश, प्रणालीगत सुधार और सामाजिक सहमति की मांग करती है। शिक्षकों को बहुभाषी शिक्षा से सज्जित करने के लिए शिक्षक-शिक्षा की फिर से कल्पना की जानी चाहिए, पाठ्यक्रम ढांचे को व भाषाई विविधता को समायोजित करना चाहिए और तकनीकी नवाचारों को उन तरीकों से तैनात किया जाना चाहिए, जो मौजूदा असमानताओं को गहरा करने की बजाय कम करें। एकभाषी अंग्रेजी शिक्षा को तथा उसके साथ शैक्षिक गुणवत्ता की

बराबरी करने वाली मजबूत भाषा शिक्षा संबंधी विचारधाराओं को चुनौती देने की आवश्यकता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। अंत में, इस अध्ययन का निष्कर्ष है कि भारतीय शिक्षा में बहुभाषावाद को प्रबंधित की जाने वाली समस्या के रूप में नहीं, बल्कि पोषित की जाने वाली एक मूलभूत स्थिति के रूप में समझा जाना चाहिए। एनईपी 2020 संज्ञानात्मक-विकास, सांस्कृतिक-निरंतरता और सामाजिक-न्याय को बढ़ावा देने वाले तरीकों से भाषा-शिक्षा को पुनः सामर्थ्यवान करने का एक मूल्यवान अवसर प्रदान करता है। हालाँकि, इस दृष्टि को साकार करने के लिए, ऐतिहासिक-जागरूकता, अनुभवजन्य-अनुसंधान और समावेशी-नीति-अभ्यास द्वारा सूचित भाषाई समानता के लिए निरंतर प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। तभी भारत की बहुभाषी विरासत को तेजी से परस्पर जुड़े हुए विश्व में एक स्थायी शैक्षिक लाभ में बदला जा सकता है।

संदर्भ सूची

भारत की जनगणना (2011). *भाषा डेटा.* भारत सरकार.

भारत सरकार (1968) *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* शिक्षा मंत्रालय

भारत सरकार (1986) *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* मानव संसाधन विकास मंत्रालय

भारत सरकार (1992) *कार्यक्रम की कार्ययोजना* मानव संसाधन विकास मंत्रालय

भारत सरकार (2020) *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* शिक्षा मंत्रालय

कोठारी आयोग (1966) *शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964-66)* भारत सरकार.

यूनेस्को (2003) *एजुकेशन इन अ मल्टिलिंगुअल वर्ल्ड* यूनेस्को पब्लिशिंग

व्यागोट्स्की, एल. एस. (1978) *माइंड इन सोसाइटी : द डेवलपमेंट ऑफ़ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेसेस (वॉल्यूम 86)* हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

बॉर्डियू, पी. (1991) *लैंग्वेज एंड सिम्बॉलिक पावर*. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

कमिंस, जे. (2000) *लैंग्वेज,पावर, एंड पेडागोगी: बिलिंगुअल चिल्ड्रन इन द क्रॉसफायर* (वॉल्यूम 2) मल्टिलिंगुअल मैटर्स

फिशमैन, जे. (1967) बिलिन्गुइलिस्म विथ एंड विथाउट डिगलोसिआ विथ एंड विथाउट बिलिन्गुइलिसम *जर्नल ऑफ़ सोशल इशू*. nº 32

हौगेन, ई. (2001) द इकोलॉजी ऑफ़ लैंग्वेज, द इकोलिंगविस्टिक रीडर लैंग्वेज, *इकोलोजी एंड एनवायरनमेंट* 57-66

मोहंती, ए. के. (2010) *लैंग्वेज पालिसी एंड प्रैक्टिस इन एजुकेशन: नेगोशिएटिंग द डबल डिवाइड इन मल्टीलिंगुअल सोसाइटीज* मल्टीलिंगुअल एजुकेशन वर्क्स, 164-175

मोहंती, ए. के. (2010) लैंग्वेजेज, इनइक्वलिटी एंड मार्जिनलिज़शन: इम्प्लिकेशन्स ऑफ़ द डबल डिवाइड इन मल्टी लिंगुअलिस्म *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ द सोशियोलॉजी ऑफ लैंग्वेज* 2010 (205)

स्कुटनाब्ब-कंगास, टी. (2006) लैंग्वेज पॉलिसी एंड लिंगविस्टिक ह्यूमन राइट्स *ऐन इंट्रोडक्शन टू लैंग्वेज पॉलिसी:*

थ्योरी एंड मेथड 273-291

चेस्टीन, एस.वी., पर्किन्स, के.के., बील, पी.डी., पोलॉक, एस.जे., और विमन, सी.ई. (2011. अ थॉटफुल अप्रोच टु इन्स्ट्रशन : कोर्स ट्रांसफॉर्मेशन फॉर द रेस्ट ऑफ़ अ. *जर्नल ऑफ़ कॉलेज साइंस टीचिंग,* 40(4), 24-30

फर्ग्यूसन, सी.ए. (1959) डिग्लोसिआ. *वर्ड*, 15(2) 325-340

रामानुजन, ए.के. (1999) हु नीड्स फोकलोर? द *कलेक्टेड एसेज ऑफ़ ए के रामानुजन,* 532-552

काज़ी, डब्ल्यू. एम., अहमद, आई.एम., और बैस-ए-आलम, एस. एम. (2004) *स्टडी ऑफ़ प्रोसोडिक क्यूज़ ऑफ़ इमोशंस फॉर सेकंड लैंग्वेज स्पीकर्स यूसिंग कम्प्युटशनल मेथड्स* इन इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑन कम्प्युटशनल इंटेलिजेंस. 161-164

क्लर्क, डी. पी. पी. (1998) लैंग्वेज एज़ अ कनफोउनडिंग वेरिएबल *एन एक्सप्लोरेशन इनटू द लिंक बिटवीन लैंग्वेज एंड मिसकन्सेप्शन* विटवाटरसैंड विश्वविद्यालय, जोहान्सबर्ग (दक्षिण अफ्रीका)

पुस्तक समीक्षा द *एन्क्शस जेनरेशन* - जॉनथन हाइट

_प्रो. पतंजलि मिश्र_
आचार्य, शिक्षा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
patanjali8@gmail.com

जॉनथन हाइट की पुस्तक द *एन्क्शस जेनरेशन* हमारे समय के सबसे गहरे और परेशान करने वाले सवालों में से एक को केंद्र में रखती है। वे सवाल हैं कि आख़िर क्यों आज के बच्चे और किशोर पहले की पीढ़ियों की तुलना में ज़्यादा चिंतित, उदास, असुरक्षित और मानसिक रूप से अस्थिर दिखाई देते हैं? यह पुस्तक केवल मनोविज्ञान की पुस्तक नहीं है, न ही यह सिर्फ़ तकनीक-विरोधी तर्कों का संग्रह है। यह आधुनिक बचपन के बदलते स्वरूप, सामाजिक संरचनाओं के क्षरण, माता-पिता की आशंकाओं, बाज़ार-प्रेरित डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों और सामूहिक नीतिगत विफलताओं की एक गहरी, बहुस्तरीय पड़ताल है। हाइट एक ऐसे लेखक हैं, जो आँकड़ों और कहानियों, शोध और अनुभव, इतिहास और वर्तमान, सबको एक साथ पिरोना जानते हैं। द *एन्क्शस जेनरेशन* में सामाजिक मनोवैज्ञानिक जॉनथन हाइट उन तथ्यों को सामने रखते हैं, जो दिखाते हैं कि यह मानसिक स्वास्थ्य संकट कई देशों में लगभग एक ही समय पर क्यों फूटा। द *एन्क्शस जेनरेशन* में वे पाठक को सीधे निष्कर्ष थमाने की बजाय एक समय-रेखा पर चलाते हैं, जहाँ धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगता है कि लगभग 2010 के आसपास कुछ ऐसा घटित हुआ, जो इससे पहले कभी नहीं हुआ था।

'द *एन्क्शस जेनरेशन*: हाउ द ग्रेट रीवायरिंग ऑफ चाइल्डहुड इज़ कॉज़िंग एन एपिडेमिक ऑफ मेंटल इलनेस' लेखक जॉनथन हाइट द्वारा लिखित एक महत्त्वपूर्ण समकालीन पुस्तक है, जिसे पेंग्विन प्रेस ने 2024 में प्रकाशित किया। लगभग 400 पृष्ठों की यह पुस्तक चार मुख्य भागों, बारह अध्यायों, एक परिचय और एक निष्कर्ष में विभाजित है। इस पुस्तक में हाइट यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि आधुनिक बचपन में आए गहरे बदलाव, विशेष रूप से स्मार्टफोन और सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने बच्चों और किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर डाला है। पहले भाग - ए टाइडल वेव (*A Tidal Wave)* में मानसिक समस्याओं की बढ़ती लहर का वर्णन है, जबकि दूसरे भाग- द बैकस्टोरी: द डिक्लाइन ऑफ़ प्ले बेस्ड चाइल्डहुड (The Backstory: The Decline of Play-Based Childhood) में खेल-आधारित बचपन के पतन की पृष्ठभूमि समझाई गई है। तीसरे भाग- द ग्रेट रीवायरिंग (*The Great Rewiring)* में डिजिटल तकनीक द्वारा बचपन के "री-वायरिंग" की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है और चौथे भाग में समाज, माता-पिता, स्कूल और नीति-निर्माताओं के लिए सामूहिक समाधान सुझाए गए हैं। निष्कर्ष 'ब्रिंग चाइल्डहुड बैक टू अर्थ (*Bring Childhood Back to Earth)'* में लेखक एक संतुलित, वास्तविक और स्वस्थ बचपन की आवश्यकता पर जोर देते हैं, जिससे अगली पीढ़ी को मानसिक रूप से अधिक सक्षम और लचीला बनाया जा सके।

पुस्तक का शुरुआती सवाल यही है कि क्या आज के बच्चे सचमुच ज़्यादा परेशान हैं या हम बस ज़्यादा सोच रहे हैं? हाइट इस संदेह को गंभीरता से लेते हैं और सबसे पहले आँकड़ों की ओर जाते हैं। अमेरिका के रोग नियंत्रण केंद्र (CDC), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), OECD देशों और कई दीर्घकालिक सर्वेक्षणों के आँकड़े एक समान कहानी कहते हैं। 2010 के बाद किशोरों में चिंता, विकार, अवसाद, आत्म-क्षति और आत्महत्या से जुड़े मामलों में तेज़ और अचानक उछाल दिखाई देता है। यह उछाल सिर्फ़ अमेरिका तक सीमित नहीं है। कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और स्कैंडिनेवियाई देशों, जैसे अलग-अलग सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भों में भी यही

पैटर्न दिखता है। हाइट के लिए यह समानता बहुत अहम है, क्योंकि यह किसी स्थानीय नीति या एक देश-विशेष की समस्या से आगे बढ़कर एक वैश्विक बदलाव की ओर इशारा करती है।

हाइट यह भी स्पष्ट करते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ पहले नहीं थीं, ऐसा कहना न केवल गलत है, बल्कि खतरनाक भी है। बस फर्क यह है कि पहले बदलाव धीरे-धीरे होते थे। यहाँ हमें एक 'खड़ी चढ़ाई' (sharp uptick) दिखती है, जैसे किसी ने अचानक कोई स्विच ऑन कर दिया हो। कई लोग 2008 की वैश्विक आर्थिक मंदी को इसका कारण मानते हैं। हाइट इस तर्क की जाँच करते हैं और उसे पर्याप्त नहीं पाते। इतिहास में आर्थिक संकट पहले भी आए हैं। महामंदी, तेल संकट, एशियाई वित्तीय संकट लेकिन उनमें से किसी के बाद बच्चों और किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में ऐसा तीव्र और व्यापक बदलाव नहीं देखा गया। इसके अलावा, आर्थिक मंदी का असर सभी आयु-समूहों पर पड़ता है, जबकि यहाँ सबसे बड़ा असर किशोरों और युवाओं पर दिखाई देता है, न कि बुज़ुर्गों या मध्य आयु वर्ग पर। यह असंतुलन हाइट को किसी और अधिक विशिष्ट कारण की तलाश की ओर ले जाता है।

हाइट का केंद्रीय तर्क यहीं से आकार लेता है। उनके अनुसार, 2010 के आसपास बच्चों का बचपन 'खेल-आधारित' (play-based) से 'फोन-आधारित' हो गया। स्मार्टफोन, सोशल मीडिया ऐप्स और हाई-स्पीड मोबाइल इंटरनेट ने बच्चों की दुनिया को जड़ से बदल दिया है। स्मार्टफोन सिर्फ़ एक स्क्रीन नहीं है। यह एक 'ऑल-इन-वन' उपकरण है- मनोरंजन, सामाजिक जीवन, पहचान, मान्यता और आत्म-मूल्यांकन का स्रोत। पहले जहाँ बच्चे ऊबने पर बाहर निकलते थे, दोस्तों को ढूँढते थे या कल्पना की दुनिया में चले जाते थे, अब हर खाली पल स्क्रीन से भर जाता है। हाइट इसे 'ग्रेट रीवायरिंग' कहते हैं अर्थात दिमाग और आदतों का पुनर्गठन। यह बदलाव सिर्फ़ व्यवहार में नहीं, बल्कि न्यूरोलॉजिकल स्तर पर भी असर डालता है।

कहानी का दूसरा सिरा बचपन की बदलती प्रकृति से जुड़ता है। हाइट पाठक को 1970 और 1980 के दशक में ले जाते हैं, जब बच्चे बिना निगरानी के खेलते थे। समाजशास्त्री रॉबर्ट पुटनम, जिनकी पुस्तक *Bowling Alone* सामाजिक पूँजी के क्षरण की बात करती है, यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से प्रासंगिक हो जाते हैं। समुदाय, पड़ोस और साझा गतिविधियाँ कम होती चली गईं। माता-पिता के मन में डर बढ़ा- अपराध, दुर्घटना, अपहरण। मीडिया रिपोर्ट्स और 24×7 न्यूज़ चैनलों ने इस डर को और हवा दी। नतीजा यह हुआ कि बच्चों की आज़ादी सिमटती चली गई।

पुस्तक का एक बेहद महत्त्वपूर्ण हिस्सा बचपन की प्रकृति पर हाइट का पुनर्विचार है। नसीम निकोलस तालेब के *एंटीफ्रैजाइल* विचार से प्रेरित होकर हाइट कहते हैं कि बच्चे नाज़ुक नहीं होते। वे ऐसे जीव हैं जो तनाव, चुनौती और जोखिम से मज़बूत होते हैं। पेड़ों पर चढ़ना, गिरकर घुटने छीलना, दोस्तों से झगड़ना, खेल में हारना, यह सब उनके जीवन का हिस्सा होना चाहिए। *'द एन्क्शस जेनरेशन'* में सामाजिक मनोवैज्ञानिक जॉनथन हाइट उन तथ्यों को सामने रखते हैं, जो दिखाते हैं कि यह मानसिक स्वास्थ्य संकट कई देशों में लगभग एक ही समय पर क्यों फूटा। ये सब बचपन की समस्याएँ नहीं, बल्कि जीवन की तैयारी हैं। लेकिन बीते कुछ दशकों में माता-पिता, स्कूल और संस्थाएँ 'सुरक्षा' को सर्वोच्च नैतिक मूल्य मानने लगीं। हर जोखिम को हटाना ज़िम्मेदारी समझी जाने लगी। स्कूलों में भी यही हुआ। पढ़ाई का दबाव बढ़ा, अवकाश घटा और शहरों की बनावट ऐसी हो गई कि बच्चे खुद चलकर कहीं जा ही न सकें। नतीजा यह हुआ कि बच्चे घर के अंदर सिमटते चले गए। पहले टीवी था, फिर कंप्यूटर और अंततः स्मार्टफोन, एक ऐसा उपकरण, जो हर खाली पल को भर देता है। हाइट इसे 'फोन-आधारित बचपन' कहते हैं। नतीजा यह हुआ कि खेल के मैदान सुरक्षित तो हुए, लेकिन उबाऊ भी। नुकीले कोने हटा दिए गए, ऊँचाई कम कर दी गई

और बच्चों की स्वतंत्रता सिमटती चली गई। हाइट इस प्रवृत्ति को 'सेफ्टीइज़्म' कहते हैं, यह एक ऐसी मान्यता है, जिसमें असुविधा को भी खतरे की तरह देखा जाने लगा।

हाइट फोन-आधारित बचपन के चार प्रमुख नुकसानों की पहचान करते हैं:

(क) **सामाजिक वंचना:** ऑनलाइन बातचीत आमने-सामने की बातचीत का विकल्प नहीं बन पाती। चेहरे के हाव-भाव, आवाज़ का उतार-चढ़ाव, शारीरिक उपस्थिति- ये सब सहानुभूति और सामाजिक समझ के लिए ज़रूरी हैं। स्क्रीन यह सब छीन लेती है।

(ख) **नींद की कमी:** देर रात तक स्क्रॉलिंग, नोटिफिकेशन और नीली रोशनी किशोरों की नींद को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। नींद की कमी का सीधा संबंध चिंता, अवसाद और चिड़चिड़ेपन से है।

(ग) **ध्यान का बिखराव:** निरंतर नोटिफिकेशन और मल्टीटास्किंग से गहरी एकाग्रता की क्षमता कम होती है। बच्चे लंबे समय तक किसी एक काम में डूब नहीं पाते।

(घ) **लत:** हाइट इसे नैतिक कमजोरी नहीं, बल्कि डिज़ाइन की समस्या मानते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म 'वेरिएबल रिवॉर्ड' सिस्टम पर चलते हैं, कभी लाइक मिलेगा, कभी नहीं, जो दिमाग में डोपामिन चक्र को सक्रिय करता है।

पुस्तक का एक संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण हिस्सा किशोर लड़कियों पर सोशल मीडिया के प्रभाव से जुड़ा है। हाइट बताते हैं कि इंस्टाग्राम और अन्य दृश्य-आधारित प्लेटफ़ॉर्म लगातार तुलना को बढ़ावा देते हैं। यह तुलना शरीर, सुंदरता, लोकप्रियता, सफलता आदि के इर्द-गिर्द घूमती है। 2021 के फेसबुक (मेटा) लीक के आंतरिक दस्तावेज़ दिखाते हैं कि कंपनियाँ खुद जानती थीं कि उनके प्लेटफ़ॉर्म किशोर लड़कियों के आत्म-सम्मान पर नकारात्मक असर डाल सकते हैं। इसके बावजूद, उपयोग बढ़ाने के तरीकों पर काम जारी रहा। आँकड़े बताते हैं कि 2010 के बाद दोस्तों के साथ बिताया गया समय घटा, नींद कम हुई और 'मेरे कुछ क़रीबी दोस्त हैं' कहने वाले किशोरों की संख्या कम होती चली गई।

पुस्तक की सबसे गहरी और अपेक्षाकृत अनपेक्षित परत 'आध्यात्मिक क्षरण' की है। स्वयं नास्तिक होने के बावजूद हाइट मानते हैं कि इंसान को कुछ बुनियादी अनुभव चाहिए। ये बुनियादी अनुभव हैं, सामूहिकता, मौन, प्रकृति में विस्मय, क्षमा और अपने अहं से परे कुछ महसूस करना। समाजशास्त्री एमिल दुर्खीम के 'अनॉमी' के विचार को हाइट आधुनिक संदर्भ में लाते हैं। जब साझा अनुष्ठान, समुदाय और अर्थ देने वाली संरचनाएँ कमजोर पड़ती हैं, तो व्यक्ति भीतर से खाली महसूस करता है। सोशल मीडिया इस खालीपन को भरने का दावा करती है, लेकिन वास्तव में यह इसे और गहरा करती है।

हाइट की पुस्तक पर आलोचनाएँ भी हुई हैं और वे उन्हें ईमानदारी से जगह देते हैं। कैंडिस ओजर्स और एमी ऑर्बेन, जैसे शोधकर्ता तर्क देते हैं कि सोशल मीडिया और मानसिक स्वास्थ्य के बीच संबंध अक्सर छोटे और संदर्भ-सापेक्ष होते हैं। वे चेतावनी देते हैं कि तकनीक को 'एकमात्र खलनायक' बनाना सरलीकरण हो सकता है। हाइट इन तर्कों को खारिज नहीं करते। वे मानते हैं कि गरीबी, असमानता, जलवायु चिंता, राजनीतिक अस्थिरता और

शैक्षिक दबाव भी अहम कारक हैं। लेकिन उनका कहना है कि स्मार्टफोन और सोशल मीडिया इन सबके लिए एक 'एम्प्लीफायर' बन गए हैं, यानी उन्होंने पहले से मौजूद समस्याओं को कई गुना बढ़ा दिया है।

पुस्तक का अंतिम हिस्सा समाधान पर केंद्रित है और यहीं यह सबसे व्यावहारिक और आशावादी बन जाती है। हाइट साफ़ कहते हैं कि यह समस्या सिर्फ़ व्यक्तिगत माता-पिता की नहीं है। अगर एक परिवार फोन सीमित करे और बाकी न करें, तो बच्चा खुद को अलग-थलग महसूस करता है।

इसलिए वे सामूहिक कदमों की बात करते हैं:

· स्कूलों में फोन-मुक्त समय

· ज्यादा अवकाश और जोखिम भरे खेलों की वापसी

· बच्चों के लिए सख़्त आयु-सीमा कानून

· माता-पिता के बीच सामूहिक समझौते

· तकनीकी कंपनियों पर नियामक दबाव

उनका संदेश यह है कि बचपन को बचाने के लिए समाज को मिलकर निर्णय लेने होंगे।

यह किताब गहन शोध पर आधारित, अच्छी तरह प्रलेखित और ठोस तथ्यों से समर्थित है। यह व्यावहारिक, समयोचित और अत्यंत प्रासंगिक है और जितनी गहराई की उम्मीद की जाती है, उससे कहीं अधिक गहरी है। साथ ही यह अच्छी तरह लिखी गई और सहज रूप से पढ़ी जा सकने वाली पुस्तक है। हाइट की लेखन-शैली इस किताब की सबसे बड़ी ताक़तों में से एक है। उनके उदाहरण स्पष्ट और अर्थपूर्ण हैं। अनुच्छेदों की संरचना सुव्यवस्थित है और व्याख्याएँ साफ़-सुथरी व समझने में आसान हैं। केस स्टडीज़ संक्षिप्त हैं, लेकिन मुद्दे को सीधे और प्रभावी ढंग से सामने रखती हैं। यह किताब सरकारों, स्कूलों और माता-पिता, तीनों के लिए उपयोगी सुझाव देती है और हाइट जिन वास्तविक जीवन के उदाहरणों का इस्तेमाल करते हैं, उनसे लगभग हर पाठक खुद को जोड़ पाता है। जिस बात ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह है उस दोहरी समस्या की गहराई से की गई व्याख्या, जिसे हाइट 'दो व्हेल' कहते हैं। स्मार्टफोन का दुरुपयोग और बच्चों के जीवन से सामान्य, स्वतंत्र खेल का गायब हो जाना। इस किताब में फुटनोट्स और संदर्भों की भरमार है और दोनों के लिए लगभग 30-30 पृष्ठ हैं। इसके साथ एक विस्तृत अनुक्रमणिका (इंडेक्स) भी दी गई है, जो इसे एक गंभीर अकादमिक कृति बनाती है।

द *एन्क्शस जेनरेशन* डर फैलाने वाली पुस्तक नहीं है। यह तकनीक को पूरी तरह खारिज भी नहीं करती। यह पुस्तक हमें एक बुनियादी सवाल के सामने खड़ा करती है कि हम किस तरह का बचपन चाहते हैं? केवल सुरक्षित, या सक्षम भी? केवल जुड़े हुए या सच में साथ भी? हाइट हमें याद दिलाते हैं कि शायद समाधान किसी नए ऐप या सेटिंग में नहीं, बल्कि झूले, खेल के मैदान, थोड़े से जोखिम और थोड़े से भरोसे में छिपा है। कुल मिलाकर, '*द एन्क्शस जेनरेशन*' माता-पिता, शिक्षकों, नीति-निर्माताओं और हर उस व्यक्ति के लिए ज़रूरी पुस्तक है, जो अगली पीढ़ी के भविष्य को लेकर चिंतित है। यह पुस्तक हमें सिर्फ़ बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य के बारे में ही नहीं, बल्कि समाज के नैतिक और सांस्कृतिक विकल्पों के बारे में भी सोचने पर मजबूर करती है।

अन्वेषिका

(अध्यापक शिक्षा की समकक्ष व्यक्ति समीक्षित शोध पत्रिका)

खंड 11, अंक 1, जनवरी-अप्रैल, 2025, ISSN: 0974-7702

संपादकीय पत्राचार

सभी प्रकार के संपादकीय पत्राचार के लिए निम्नलिखित पते का प्रयोग करें:
संयोजक, अन्वेषिका, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, जी-7, सेक्टर-10, द्वारका, नई दिल्ली- 110075

ई-पत्राचार तथा शोधपत्र प्रेषण हेतु ईमेल: anweshika@ncte-india.org

वेबसाइट: https://www.ncte.gov.in

स्वामित्व (copyright)

पत्रिका का स्वामित्व व सर्वाधिकार राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एनसीटीई), नई दिल्ली के पास सुरक्षित है।

लेखकों के लिए दिशानिर्देश

अन्वेषिका के लिए विविध श्रेणियों के योगदानकर्ताओं यथा, शिक्षक, शिक्षक-प्रशिक्षक, शोधार्थी, आचार्य, शिक्षाविद, शैक्षिक नीति-निर्माता व प्रशासक, शैक्षिक प्रौद्योगिकी नवप्रवर्तक, समावेशन/पुनर्वास पेशेवर अथवा अन्य से उनके मौलिक, अप्रकाशित, अकादमिक सत्यनिष्ठा युक्त, साहित्यिक चोरी-मुक्त तथा प्रस्तुतीकरण व नैतिक मानकों के अनुरूप शोध-पत्र व लेख आमन्त्रित हैं। लेख प्रस्तुत करते समय लेखक को यह अस्वीकरण (डिस्क्लेमर) देना होगा कि वह लेख किसी भी माध्यम (मुद्रण या इलैक्ट्रॉनिक) से न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसे प्रकाशनार्थ अन्यत्र भेजा गया है।

आमन्त्रित शोध-पत्रों व लेखों हेतु मुख्य विषय

शिक्षणशास्त्रीय नवाचार | राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 | शिक्षक व्यावसायिक विकास | शैक्षिक नीति और सुधार | भारतीय ज्ञान परम्परा व प्रणाली | भारतीय शिक्षण-शास्त्र | भारतीय शोध-शास्त्र (आन्वीक्षिकी) | शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय व मनोवैज्ञानिक आधार | शिक्षा के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिप्रेक्ष्य | भारत बोध | योग शिक्षा | कला शिक्षा | मूल्य शिक्षा | शिक्षकों के लिए वैश्विक माँग | सामाजिक-संवेगात्मक अधिगम (एस.ई.एल.) | आकलन और मूल्यांकन | समता, विविधता और समावेशन | सहयोग और सामुदायिक सहभागिता | बहुभाषिकता | व्यावसायिक शिक्षा तथा कौशल विकास के लिए अध्यापक शिक्षा |

समकक्ष व्यक्ति समीक्षा

प्रकाशन हेतु भेजे गये शोध-पत्रों व लेखों की गुणवत्ता और मौलिकता को सुनिश्चित करने के लिए कठोर डबल-ब्लाइंड समकक्ष व्यक्ति समीक्षा की प्रक्रिया का अनुपालन किया जाएगा। अतः प्रकाशन हेतु विचारार्थ भेजे गए सभी लेख, 'समकक्ष व्यक्ति द्वारा समीक्षा' के अधीन होंगे। निष्पक्ष समीक्षा कार्य के लिए लेखकों से अनुरोध है कि वे अपना वैयक्तिक विवरण, जैसे नाम, ई-मेल आईडी, संस्था का पता आदि प्रकाशन के लिए भेजे जाने वाले लेख के ऊपर न लिखकर एक अलग पृष्ठ पर भेजें।

टंकण हेतु निर्देश

लेख यूनिकोड फ़ॉण्ट कोकिला (Kokila) में टंकित (फॉण्ट का आकार: मुख्य विषयवस्तु- 16, विषयवस्तु का शीर्षक-18 बोल्ड, विषयवस्तु का उप-शीर्षक- 16 बोल्ड, शोध-पत्र शीर्षक- 20 बोल्ड, संदर्भ सूची- 15) तथा वर्ड फाइल में लगभग 4000-6000 शब्दों में ई-मेल (anweshika@ncte-india.org) द्वारा संयोजक, अन्वेषिका (अध्यापक शिक्षा की शोध पत्रिका), एनसीटीई, जी-7, सेक्टर 10, द्वारका, नई दिल्ली-110075, भारत को प्रेषित करें।

अन्वेषिका

(अध्यापक शिक्षा की समकक्ष व्यक्ति समीक्षित शोध पत्रिका)
खंड 11, अंक 2, मई- अगस्त, 2025, ISSN: 0974-7702

शीर्षक	लेखक	पृष्ठ संख्या
भारतीय ज्ञान परंपरा में वाणिज्यिक संप्रत्यय: कौटिलीय अर्थशास्त्र के विशेष संदर्भ में	ओम प्रकाश डॉ. हरीश पांडे डॉ. गणेश दत्त	1-12
औपनिवेशिक काल में भारतीय शिक्षा: तथ्य, भ्रम और इतिहास	प्रो. गौरव सिंह	13-24
प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा: संदर्भ, विमर्श व संभावनाएँ	कुलदीप कुमार पाण्डेय प्रो. आशीष रंजन	25-36
शिक्षक-शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली का एकीकरण: संभावनाएँ, चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ. सुनीता सिंह सर्वेश्वर त्रिपाठी प्रो. सुस्मिता लाख्यानी	37-51
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण-शास्त्र के विविध आयाम	आलोक कुमार	52-62
भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा की अवधारणात्मक समझ का वितान	प्रो. उषा शर्मा	63-71
भारतीय शोध पद्धत्ति: एक परिचय	प्रो. नीरजा गुप्ता	72-81
भाषा, बहुभाषिकता और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक आलोचनात्मक विश्लेषण	प्रो. धनंजय जोशी अनिता शर्मा	82-93
पुस्तक समीक्षा: द एन्क्शस जेनरेशन - जॉनथन हाइट	प्रो. पतंजलि मिश्र	94-97

गुरुर्गुरुतमो धाम
NCTE

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्

जी-7, सेक्टर-10, द्वारका
मेट्रो स्टेशन के पास, नई दिल्ली - 110075
ईमेल : anweshika@ncte-india.org
वेबसाइट : https://ncte.gov.in/